षट्चक्रनिरूपणम्

श्री भारत भूषण

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

॥ श्रीः ॥

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला

५३

श्रीपूर्णानन्दयतिविरचितं

षट्चक्रनिरूपणम्

तच्च

शिवोक्त-पादुकापञ्चकसहितम्

(पण्डितकालीचरणकृत-'श्लोकार्थपरिष्कारिणी'व्याख्यानुसारि-
हिन्दीविमर्शसहितम्)

व्याख्याकार

श्री भारत भूषण

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू. ए., बंगलो रोड, जवाहरनगर

दिल्ली ११०००७

प्रकाशक

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

३८ यू. ए., बंगलो रोड, जवाहरनगर

पो० बा० नं० २११३

दिल्ली ११०००७

दूरभाष : २३६३९१

प्रथम संस्करण १९९१

मूल्य ४०-००

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ५७२१४

*

प्रधान वितरक

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)

पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ६३०७६

मुद्रक

श्रीजी मुद्रणालय

वाराणसी

THE

VRAJAJIVAN PRACHYABHARATI GRANTHAMALA

5३

ṢAṬCAKRANIRŪPAṆA

OF

ŚRĪ PŪRṆĀNANDA YATI

&

ŚIVOKTA-PĀDUKĀPAÑCAKA

Along with

Hindi Commentary based on 'Shlokarthaparishkarini'
of Pandit Kalicharan

By

Shri Bharata Bhushana

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A., Bungalow Road, Jawaharnagar
DELHI 110007

प्राक्कथन

वैष्णव पांचरात्र आगम की सात्वतसंहिता (२।५८) में चार ही चक्रों का उल्लेख है। वहाँ उसके भाष्यकार ने आधार, नाभि, हृदय और कण्ठ नामक चार स्थानों में स्थित चक्रों की चर्चा की है। बौद्धों के वसन्ततिलक आदि ग्रन्थों में भी चार ही चक्र वर्णित हैं। नाभि, हृदय, कण्ठ और मूर्धा में इनका स्थान बतलाया गया है और इनको क्रमशः निर्माण, धर्म, संभोग और महासुख चक्र की संज्ञा दी गई है। बौद्धों के ही कालचक्र तन्त्र में इनकी संख्या छः है। ऊपर के चार चक्रों के अतिरिक्त गुह्यचक्र और उष्णीषचक्र को मिलाकर इन छः चक्रों की विशद व्याख्या कालचक्रतन्त्र की विमलप्रभा नामक प्रसिद्ध टीका में मिलती है। विमलप्रभा (पृ० १६९) में १८ चक्रों का भी उल्लेख है। योगिनीहृदय की दीपिका टीका (पृ० ३४-३७) में स्वच्छन्द-संग्रह के प्रमाण से ३२ चक्रों का उल्लेख मिलता है। सुषुम्ना नाड़ी के नीचे और ऊपर रक्त और श्वेत दो सहस्रदल कमल विद्यमान हैं और इनके बीच में अन्य तीस पंकज हैं। दीपिकाकार ने यहाँ केवल नौ चक्रों का वर्णन किया है। योगिनीहृदय (३।३०) में नौ चक्रों के साथ छः चक्रों का भी उल्लेख मिलता है। यद्यपि नेत्रतन्त्र (७।२८-२९) में भी छः चक्र वर्णित हैं, किन्तु उनकी प्रतिपादन-पद्धति भिन्न है। इस प्रकार चक्रों की संख्या और स्वरूप के विषय में भारतीय योगशास्त्र एवं तन्त्रशास्त्र के ग्रन्थों में विविधता के दर्शन होने पर भी आजकल 'श्रीतत्त्वचिन्तामणि' के षट्चक्रनिरूपण में, सौन्दर्यलहरी और उसकी लक्ष्मीधरा टीका में मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा नामक छः चक्रों को ही मान्यता मिली है। कालचक्र-तन्त्र और उसकी टीका में, योगिनीहृदय और उसकी व्याख्या में तथा नेत्र-तन्त्र में भी चक्रों की इस संख्या को यद्यपि समर्थन मिला है, तो भी इनके स्वरूप, लक्षण आदि के विषय में पर्याप्त मतभेद है। इतना सब होते हुए भी आजकल श्रीपूर्णानन्द परमहंस द्वारा षट्चक्रनिरूपण में प्रदर्शित इनका क्रम और स्वरूप ही प्रायः सर्वत्र मान्य है।

षट्चक्रनिरूपण : स्वरूप और आधार

इन छः चक्रों का जितना सांगोपांग वर्णन श्रीतत्त्वचिन्तामणि के षट्चक्र-निरूपण में हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। यहाँ छः चक्रों के स्वरूप का विशद वर्णन करते समय चक्रों के दलों में स्थित वर्णों (बीजाक्षरों) के अतिरिक्त

छः डाकिनियों, छः अधिष्ठातृ देवताओं, पाँच भूतों के मण्डलों, चार पीठों, चार लिंगों आदि का विवरण देते हुए इनके ध्यान की पद्धति का और उससे उपलब्ध होने वाले फल का भी निरूपण किया गया है। भगवती त्रिपुरा की उपासना कश्मीर, केरल और गौडीय पद्धति से की जाती है। श्रीपूर्णानन्द परमहंस की श्रीतत्त्वचिन्तामणि में उसकी गौडीय पद्धति निरूपित है। प्रस्तुत ग्रन्थ 'षट्चक्रनिरूपण' इसका छठा प्रकाश है, अध्याय नहीं। श्रीतत्त्वचिन्तामणि नामक यह सम्पूर्ण ग्रन्थ संस्कृत टीका के साथ कलकत्ता से प्रकाशित हो चुका है। इसके षट्चक्रनिरूपण नामक छठे प्रकाश को और पादुकापंचक को सर जान वुडरफ ने अपने विस्तृत अध्ययन 'सरपेण्ट पावर' के परिशिष्ट के रूप में दिया था, किन्तु आजकल: यह अनुपलब्ध है।

षट्चक्रनिरूपण के प्रारंभ में ही बतलाया गया है कि इसकी रचना में तन्त्रशास्त्र का अनुसरण किया गया है। कुण्डलिनीयोग, कुण्डलिनीशक्ति, षट्चक्र आदि का पतंजलि के योगसूत्रों में कहीं उल्लेख नहीं है, किन्तु यह निश्चित है कि कुण्डलिनीयोग प्राचीन भारतीय योग की एक विशिष्ट पद्धति है। आगम और तन्त्रशास्त्र की विभिन्न शाखाओं में इसका वर्णन मिलता है। 'तन्त्रानुसारेण' कहकर श्रीपूर्णानन्द इसी तथ्य को स्वीकार करते हैं। कुछ आचार्य 'अष्टा चक्रा नवद्वारा' (१०।२।३१) इत्यादि अथर्ववेदीय मन्त्र में कुण्डलिनी योग का उल्लेख मानते हैं। प्रायः सभी आगमिक और तान्त्रिक आचार्य प्रसुप्तभुजगाकारा, सार्धत्रिवलाकृति, मृणालतन्तुतनीयसी मूलाधार स्थित शक्ति को कुण्डलिनी के नाम से जानते हैं। जिस योगपद्धति की सहायता से इस कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर सुषुम्णा मार्ग द्वारा षट्चक्र का भेदन कर सहस्रारचक्र तक पहुँचाया जाता है और वहाँ उसका अकुल शिव से सामरस्य सम्पादन कराया जाता है, उसी का नाम कुण्डलिनीयोग है। आधारों अथवा चक्रों आदि के विषय में मतभेद होते हुए भी मूलाधार स्थित कुण्डलिनी शक्ति का सहस्रार स्थित अपने इष्टदेव से सामरस्य का सम्पादन सभी मतों में निर्विवाद रूप से मान्य है।

कुण्डलिनीयोग

यहाँ संक्षेप में उसकी विधि इस प्रकार वर्णित है—यम और नियम के नित्य-नियमित आदरपूर्वक निरन्तर अभ्यास में लगा योगी गुरुमुख से मूलाधार से सहस्रार-पर्यन्त कुण्डलिनी के उत्थापन क्रम को ठीक से समझ लेने के उपरान्त पवन और दहन के आक्रमण से प्रतप्त कुण्डलिनीशक्ति को, जो कि स्वयम्भू लिंग को वेष्टित कर सार्धत्रिवलयाकार में अवस्थित है, हूंकार बीज का उच्चारण करते हुए जगाता है और स्वयम्भू लिंग के छिद्र से निकाल कर

उसे ब्रह्मद्वार तक पहुँचा देता है। कुण्डलिनीशक्ति पहले मूलाधार स्थित स्वयम्भू लिंग का, तब अनाहतचक्र स्थित बाण लिंग का और अन्त में आज्ञा-चक्र स्थित इतर लिंग का भेदन करती हुई ब्रह्मनाडी की सहायता से सहस्र-दल चक्र में प्रविष्ट होकर परमानन्दमय शिवपद में प्रतिष्ठित हो जाती है। योगी अपने जीवभाव के साथ इस कुलकुण्डलिनी को मूलाधार से उठाकर सहस्रारचक्र तक ले जाता है और वहाँ उसको परबिन्दु स्थान में स्थित शिव (पर लिंग) के साथ समरस कर देता है। समरसभावापन्न यह कुण्डलिनी-शक्ति सहस्रारचक्र में लाक्षा के वर्ण के समान परमामृत का पान कर तृप्त हो जाती है और इस परमानन्द की अनुभूति को मन में संजोये वह पुनः मूलाधारचक्र में लौट आती है। यही है कुण्डलिनीयोग की इतिकर्तव्यता। इसके सिद्ध हो जाने पर योगी जीवभाव से मुक्त हो जाता है, शिवभावापन्न (जीवन्मुक्त) हो जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के भाषाभाष्यकार ने प्रथम सात प्रकरणों के अन्त में 'महावाक्यार्थनिर्णय' शीर्षक से मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा नामक छः चक्रों का और सहस्रदल कमल का स्वरूप अतिसंक्षेप में समझा दिया है। कुण्डलिनीयोग की प्रक्रिया को सरलता से हृदयंगम कर लेने में इससे बड़ी सहायता मिल सकती है। कुलकुण्डलिनी शक्ति कैसे सहस्रार स्थित अकुलशिव की ओर उन्मुख होती है और वहाँ शिव के साथ सामरस्य भाव का अनुभव कर पुनः कैसे अपने मूल स्थान में आ जाती है, इसकी अति संक्षिप्त प्रक्रिया नित्याषोडशिकार्णव (४।१२-१६) में वर्णित है। इसी प्रकार चार पीठों और चार लिंगों का स्वरूप हमें योगिनी-हृदय (१।४१-४७) में अधिक स्पष्ट रूप में मिलता है।

कुण्डलिनीशक्ति

सहस्रदल कमल के दो भेदों की चर्चा ऊपर आ चुकी है। योगिनीहृदय की अमृतानन्दकृत दीपिका टीका (पृ० ३४-४०) तथा भास्कररायकृत सेतु-बन्ध टीका (पृ० ३८-४३) में उद्धृत स्वच्छन्दसंग्रह नामक अद्यावधि अनुप-लब्ध ग्रन्थ के अनुसार मानव लिंग शरीर में सुषुम्नानाडी के सहारे ३२ पद्मों की स्थिति मानी गई है। सबसे नीचे और सबसे ऊपर दो सहस्रारपद्म स्थित हैं। नीचे कुलकुण्डलिनी में स्थित अरुण वर्ण सहस्रारपद्म ऊर्ध्वमुख तथा ऊपर ब्रह्मरन्ध्र स्थित श्वेत वर्ण सहस्रारपद्म अधोमुख हैं। इनमें से अधः सहस्रार को कुलकुण्डलिनी और ऊर्ध्व सहस्रार को अकुलकुण्डलिनी कहा जाता है। अकुलकुण्डलिनी प्रकाशात्मक अकारस्वरूपा और कुलकुण्डलिनी विमर्शात्मक

हकारस्वरूपा मानी जाती है। इनमें से कुलकुण्डलिनी का ही स्वरूप यहाँ १०-१३ श्लोकों में वर्णित है।

इन दो कुण्डलिनियों के अतिरिक्त तन्त्रशास्त्र के ग्रन्थों में प्राणकुण्डलिनी का भी वर्णन मिलता है। मूलाधार में जैसे कुण्डलिनी का निवास है, उसी तरह से हृदय में भी सार्धत्रिवलया प्राणकुण्डलिनी रहती है। मध्यनाडी सुषुम्ना के भीतर चिदाकाश (बोधमगन) रूप शून्य का निवास है। उससे प्राणशक्ति निकलती है। इसी को अनच्क कला भी कहते हैं। इसमें अनच्क (अच् = स्वर से रहित) हकार का निरन्तर नदन होता रहता है। यह नाद भट्टारक की उन्मेष दशा है, जिससे कि प्राणकुण्डलिनी की गति उर्ध्वोन्मुख होती है, जो श्वास-प्रश्वास, प्राण-अपान को गति प्रदान करती है और जहाँ इनकी एकता का अनुसन्धान किया जा सकता है। मध्यनाडी में स्थित बिना क्रम के स्वाभाविक रूप से उच्चरित होने वाली यह प्राणशक्ति ही अनच्क कला कहलाती है। इस अनच्क कला रूप प्राणशक्ति को कुण्डलिनी इसलिये कहते हैं कि मूलाधार स्थित कुण्डलिनी की तरह इसकी भी आकृति कुटिल होती है। जिस प्राणवायु का अपान अनुवर्तन करता है, उसकी गति हकार की लिखावट की तरह टेढ़ी-मेढ़ी होती है। प्राणशक्ति अपनी इच्छा से ही प्राण के अनुरूप कुटिल (घुमावदार) आकृति धारण कर लेती है। प्राण-शक्ति की यह वक्रता (कुटिलता = घुमावदार आकृति) परमेश्वर की स्वतन्त्र इच्छाशक्ति का खेल है। प्राणशक्ति का एक लपेटा वाम नाडी इडा में और दूसरा दक्षिण नाडी पिंगला में रहता है। इस तरह से इसके दो वलय (घेरे) बनते हैं। सुषुम्ना नाम की मध्य नाडी सार्ध कहलाती है। इस प्रकार यह प्राणशक्ति भी सार्धत्रिवलया है। वस्तुतः मूलाधार स्थित कुण्डलिनी में ही प्राणशक्ति का भी निवास है, किन्तु हृदय में इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति होने से ब्राह्मणवसिष्ठन्याय से उसका यहाँ पृथक् उल्लेख कर दिया गया है। इसका प्रयोजन अजपा (हंसगायत्री) जप को सम्पन्न करना है। हमने इस विषय पर विज्ञान-भैरव के १५१वें श्लोक की हिन्दी व्याख्या में पर्याप्त प्रकाश डाला है।

पाठकों को प्रस्तुत ग्रन्थ की योग-प्रक्रिया को समझने में सुविधा हो, इस अभिप्राय से हम यहाँ नाडियों के अतिरिक्त अमाकला और निर्वाणकला के स्वरूप पर भी कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न करते हैं।

नाडीचक्र

षट्चक्र का निरूपण करते समय यहाँ (१-४ श्लोक) नाडियों के सम्बन्ध में बतलाया गया है कि मेरुदण्ड के बाहर वाम भाग में चन्द्रात्मक इडा नाडी

और दक्षिण भाग में सूर्यात्मक पिंगला नाडी अवस्थित है। मेरुदण्ड के मध्य भाग में वज्रा और चित्रिणी नाडी से मिली हुई त्रिगुणात्मिका सुषुम्ना नाडी का निवास है। इनमें सत्त्वगुणात्मिका चित्रिणी चन्द्ररूपा, रजोगुणात्मिका वज्रा सूर्यरूपा और तमोगुणात्मिका सुषुम्ना नाडी अग्निरूपा है। यह त्रिगुणात्मिका नाडी कन्द के मध्य भाग से सहस्रार-पर्यन्त विस्तृत है। इसका आकार खिले हुए धतूरे के पुष्प के सदृश है। इस सुषुम्ना नाडी के मध्य भाग में लिंग से मस्तक तक विस्तृत दीपशिखा के समान प्रकाशमान वज्रा नाडी स्थित है। उस वज्रा नाडी के मध्य में चित्रिणी नाडी का निवास है। यह प्रणव से विभूषित है और मकड़ी के जाले के समान अत्यन्त सूक्ष्म आकार की है। योगी ही इसको योगज ज्ञान से देख सकते हैं। मेरुदण्ड के मध्य में स्थित सुषुम्ना और ब्रह्मनाडी के बीच में मूलाधार आदि छः चक्रों को भेद कर यह नाडी सहस्रार चक्र में प्रकाशमान होती है। इस चित्रिणी नाडी के मध्य में शुद्ध ज्ञान को प्रकाशित करने वाली ब्रह्मनाडी स्थित है। यह नाडी मूलाधार स्थित स्वयम्भू लिंग के छिद्र से सहस्रार में विलास करने वाले परमशिव पर्यन्त व्याप्त है। यह नाडी विद्युत् के समान प्रकाशमान है। मुनिगण इसके कमल-नाल के तन्तुओं के समान अत्यन्त सूक्ष्म आकार का मानस प्रत्यक्ष ही कर सकते हैं। इस नाडी के मुख में ही ब्रह्मद्वार स्थित है और इसी को योगीगण सुषुम्ना नाडी का भी प्रवेश द्वार मानते हैं।

अमाकला

षट्चक्रनिरूपण के ४६वें श्लोक में अमाकला का स्वरूप वर्णित है। स्कन्दपुराण के प्रभास खण्ड के एक वचन में—जो कि शब्दकल्पद्रुम (भा० १, पृ० ८३) में उद्धृत है—बतलाया गया है कि चन्द्रमा की सोलहवीं कला को अमाकला कहा जाता है। आचार्य रघुनन्दन ने (शब्दकल्पद्रुम, भा० १, पृ० ८३ पर उद्धृत) अमाकला की व्याख्या करते हुए कहा है कि यह कला नित्य है, क्षय और उदय से रहित है। चन्द्रमा की अन्य कलाओं में यह उसी तरह से अनुस्यूत है, जैसे कि पुष्पमाला के प्रत्येक पुष्प में सूत्र अनुस्यूत रहता है। यह आधारशक्ति का भी परमस्वरूप है। श्रद्धेय कविराज जी ने "तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्तदृष्टि" (पृ० ३०९) में कहा है कि तन्त्रशास्त्र में विन्दु को पूर्णिमा कहा जाता है, किन्तु यह ठीक पूर्णिमा नहीं है। यथार्थ पूर्णिमा षोडशी है। विन्दु में १५ कलाएँ हैं, एक कला नहीं है। अर्थात् अमृतकला अथवा षोडशी का वहाँ अभाव है। षोडशकल पुरुष में इस अमृतकला का निवास है। यही वास्तविक अमाकला है। "भारतीय संस्कृति और साधना" (भा० १, पृ० ३१९) में वे कहते हैं कि योग की प्रक्रिया में उन्मना के

उन्मीलन को ही अमाकला कहा गया है। मातृका के क्रम में अमाकला की एक दूसरी ही व्याख्या मिलती है। यहाँ अनुत्तर तत्त्व अकार को सप्तदशी या अमाकला के नाम से जाना जाता है। यह नित्योदित है, अर्थात् इसका कभी तिरोधान नहीं होता। यही अमृतकला है। अन्तःकरण आदि षोडश कलाओं का उद्भव इसी से होता है। यह अन्तरुन्मुख है। प्रस्तुत ग्रन्थ में बतलाया गया है कि सहस्रार चक्र के मध्य विराजमान त्रिकोण स्थान में अमाकला का निवास है, जो कि चन्द्रमा की सोलहवीं नित्यकला मानी जाती है। यह बाल सूर्य के समान प्रकाशमान है। यह कला नित्योदित है, अर्थात् क्षय और उदय से रहित है। सहस्रार के ही समान यह भी अधोमुख है और इससे निरन्तर अमृत की वर्षा होती रहती है। इस अमृतकला के भीतर ही निर्वाण-कला का निवास है।

निर्वाणकला

निर्वाणकला के सम्बन्ध में यहाँ (श्लो० ४७-४९) बतलाया गया है कि अमाकला के भीतर निर्वाणकला स्थित है। यह साधक को मुक्ति प्रदान करने वाली है, अतः इसे निर्वाणकला कहा जाता है। मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण, कैवल्य प्रभृति शब्द पर्यायवाची हैं। यह निर्वाणकला केश के अग्रभाग के हजारवें भाग से भी सूक्ष्म है, इसीलिये दुर्ज्ञेय है। यह प्राणियों की चैतन्य शक्ति है। इसी की सहायता से साधक योगी के चित्त में ब्रह्मज्ञान का उदय होता है। ध्यान में इसका आकार अर्धचन्द्र के समान तिरछा है। इस निर्वाण-कला के भीतर निर्वाणशक्ति का निवास है। बिन्दु-स्वरूपा यह निर्वाणशक्ति जीव को सामरस्यावस्था से उत्पन्न परम प्रेम की धारा से सदा आप्यायित करती रहती है। इस निर्वाणशक्ति के मध्य में स्थित अतिसूक्ष्म स्थान में निर्मल शिवपद, परब्रह्म का स्थान है। योगी ही इसका साक्षात्कार कर सकते हैं। यह पद नित्यानन्दमय है। इसी को ब्रह्मपद, वैष्णव परमपद, हंसपद और मोक्षपद भी कहते हैं। इस प्रकार इस कुण्डलिनीयोग की सहायता से भी व्यक्ति मोक्षमार्ग के प्रति अग्रसर हो सकता है।

गुरुपादुका

स्मरण रखने की बात है कि योगशास्त्र, विशेष कर तन्त्रशास्त्र ने मानव-मात्र को मोक्ष का अधिकारी माना है। कोई भी मनुष्य न केवल गुरु से, किन्तु स्वयं शास्त्रों के अभ्यास से और अपनी प्रतिभा से अपनी मुक्ति का मार्ग खोज सकता है। बौद्ध-तन्त्रों में यह भी बतलाया गया है कि व्यक्ति अपनी ही नहीं, दूसरे की प्रतिभा से भी लाभान्वित हो सकता है। सिद्धों और सन्तों के

चरितों में हमें ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। शैव और शाक्त तन्त्रों में सतर्क को योग का प्रधान अंग माना गया है। इतना सब होने पर भी आसन और प्राणायाम नामक योग के अंगों का, कुण्डलिनीयोग का एवं आभिचारिक प्रयोगों का अभ्यास विना गुरु की सहायता के नहीं करना चाहिए। थोड़ी सी भी त्रुटि हो जाने पर अभ्यासी शारीरिक अथवा मानसिक रूप से अक्षम हो सकता है। इसलिए इन शास्त्रों में गुरु की अपार महिमा बतलायी गयी है। इस ग्रन्थ के अन्त में जोड़ा गया 'पादुकापंचकस्तोत्र' इसी का एक नमूना है। यहाँ गुरुपादुका, अर्थात् गुरु के चरणों की महिमा के बहाने ब्रह्मरन्ध्र स्थित भगवान् आदिनाथ की स्तुति की गयी है। महार्थमंजरी के रचयिता महेश्वरानन्द ने इसकी स्वोपज्ञ व्याख्या परिमल (पृ० ४-५) में गुरु, चरण (अंघ्रि) और पादुका पदों का 'शिवसूत्र', 'कुब्जिका मत' आदि ग्रन्थों के प्रमाण से सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है। अपने 'पादुकोदय' नामक ग्रन्थ के अनेक वचनों को भी उन्होंने उक्त व्याख्या में स्थान-स्थान पर उद्धृत किया है।

इस पादुकापंचक-स्तोत्र के साथ षट्चक्रनिरूपण नामक ग्रन्थ को योगशास्त्र, विशेष कर तान्त्रिक योगशास्त्र के अनुरागी पाठकों के समक्ष हिन्दी-भाष्य और व्याख्या के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है। इस अतिमहत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को प्रकाशित कर चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी के व्यवस्थापक श्रीवल्लभदास गुप्त ने प्रशंसनीय कार्य किया है। यह इनके वंश की महनीय परम्परा के अनुरूप है। हिन्दी भाष्य और व्याख्या के रचयिता श्री भारत-भूषण ने हिन्दी पाठकों के सामने प्रस्तुत ग्रन्थ को पूरी प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया है। इन्होंने ग्रन्थ के विषयों को संक्षेप और विस्तार से समझाकर जिज्ञासुओं का महान् उपकार किया है। यहाँ श्लोकों के प्रत्येक पद का तथा अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का अन्य तन्त्रशास्त्रीय प्रमाणों के सहारे ही खुलासा वर्णन किया गया है। यह एक अच्छी प्रवृत्ति है। आजकल उपन्यास की शैली में तान्त्रिक सिद्धान्तों को प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति काम करने लगी है और हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ इस प्रवृत्ति को उछाल रही हैं। इससे हमें बचना चाहिए और सतर्कता के साथ आज की मानवता के लिए कल्याणप्रद सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति के सजीव महनीय उपादानों को संसार के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए।

फाल्गुन पूर्णिमा, संवत् २०४७ — विद्वद्विधेय

२८-२-९१ ई०, वाराणसी। — व्रजवल्लभ द्विवेदी

विषयानुक्रमः

॥ श्रीः ॥

षट्चक्रनिरूपणम्

अथ तन्त्रानुसारेण षट्चक्रादिक्रमोद्गतः।
उच्यते परमानन्द-निर्वाह-प्रथमाङ्कुरः॥

भाष्य—अब मैं योग-वृक्ष के प्रथम अंकुर, जो प्रमाणानुसार परमानन्द को प्रदान करनेवाला है तथा तंत्र के अनुसार उसे षट्चक्र आदि के द्वारा कैसे प्राप्त किया जाय, का वर्णन करूँगा।

पूर्णानन्द स्वामी भवसागर में निमग्न तथा दुःख और ताप से पीड़ित प्राणियों की मुक्ति तथा तत्त्वज्ञान प्रदान करने का कार्य अपने ऊपर लेते हैं। उनके इस कार्य का उद्देश्य साधकों अथवा उपासकों को जो योगाभ्यास के प्रति अनुरक्त हैं, तत्त्वज्ञान या ब्रह्मज्ञान, षट्चक्र कुण्डलिनी योग का मार्ग-दर्शन देना है। परम कारुणिक पूर्णानन्द स्वामी ने स्वरचित श्रीतत्त्वचिन्तामणि में 'षट्चक्रनिरूपण' पर विस्तृत रूप से महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला है।

व्याख्या—अथ—इस शब्द का तात्पर्य यह है कि प्रस्तुत अध्याय षट्-चक्रनिरूपण का उनके ग्रन्थ 'श्रीतत्त्वचिन्तामणि' से सम्वन्ध है। इस ग्रन्थ में इसके पूर्व के अध्यायों में षट्चक्रनिरूपण से पूर्व की क्रियाओं तथा प्रारम्भिक नियमों की चर्चा आती है और ऐसा मान लिया गया कि साधक उस स्तर पर पहुँच गया है कि उसे षट्चक्रनिरूपण का अधिकारी समझा जा सकता है और अब उसे यह ज्ञान दिया जा रहा है। यह ज्ञान ही श्रीतत्त्वचिन्तामणि के छठे अध्याय का वस्तु-विषय है। अधिकारी की योग्यता 'तंत्रशास्त्राधिकार' पर गन्धर्वतंत्र में उल्लेख है—'साधक का दक्ष होना आवश्यक है, उसे जितेन्द्रिय भी होना चाहिए तथा वह सभी प्रकार की हिंसा से भी विनिर्मुक्त हो। वह सभी प्राणियों के हित में उद्यत रहता हो (अर्थात् 'सर्वप्राणि-हिते रतः') शुचि और आस्तिक हो, ब्रह्म में निष्ठा और श्रद्धा तथा ब्रह्मिष्ठ, ब्रह्मवादी, ब्राह्मी, ब्रह्मपरायण और द्वैतहीन हो। इस प्रकार का साधक अधिकारी माना गया है। यदि उसमें इन गुणों का अभाव है तो उसे अधिकारी या साधक नहीं माना जा सकता।

परमानन्दनिर्वाहप्रथमाङ्कुरः—परमानन्द का तात्पर्य ब्रह्मन् से है। श्रुति का कथन है—'नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म'।

प्रथमाङ्कुर—उसके कारणभूत प्रथम प्रकाशमान कर्मस्वरूप को पूर्णानन्द कहा जाता है। वह किस प्रकार अंकुरित हुआ। प्रथम अंकुर—प्रथम चरण है जो ब्रह्म की अनुभूति की दिशा में ले जाता है। इस अनुभूति का प्रथम कारण षट्चक्रों—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा तथा तत्सम्बन्धी नाड़ियों, लिङ्ग, व्योमपञ्चक, शिवशक्ति आदि अन्य तथ्यों की जानकारी से ही प्राप्त होता है। इसको जाने विना उस दिशा में अग्रसर होने की प्रेरणा ही नहीं होती है। यही योगसाधना है। षट्चक्र योगसाधना के द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार होता है, अतः षट्चक्र-भेदन कारण तथा कर्म-स्वरूप अंकुर होता है। यहाँ पर नाड़ियों, लिङ्गों तथा व्योमपंचक का उल्लेख किया गया है। नाड़ी का अर्थ है—शक्ति का विवर। इसका मूल 'नद' है, जिसका अर्थ गति या स्पन्दन है। लिङ्ग तीन हैं, जिन्हें स्वयम्भू, वाण और इतर कहा जाता है। व्योमपञ्चक का तात्पर्य पाँच महाभूतों से है।

'निर्वाह' का अर्थ है—पूर्ण करना। यहीं से ब्रह्मसाक्षात्काररूप निष्पत्ति है, क्योंकि ब्रह्मसाक्षात्कार का तात्कालिक अभिनव प्रयोग आरम्भ होता है।

तन्त्रानुसारेण षट्चक्रादिक्रमोद्गतः—तन्त्रानुसारेण इसलिये कहा गया कि यहाँ पर जो चर्चा की जा रही है, वह पूर्णतया तंत्र-ग्रन्थों पर आधारित है। इस विषय में बड़े लोगों ने तंत्र-ग्रन्थों को ही एकमात्र प्रमाण माना है। तंत्र द्वारा निर्दिष्ट प्रक्रिया से ही षट्चक्रों—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा का भेदन होता है। आदि से नाड़ियों, लिङ्गों, पञ्चभूतों तथा शिवशक्ति का तात्पर्य है। इनका चक्र-भेदन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह सब क्रमपूर्वक होता है, अतः इसे क्रम कहा गया है। क्रम में पहले चक्र का ध्यान किया जाता है। इसके पश्चात् कुण्डलिनी का जागरण तथा फिर ब्रह्म पद्म तक आरोह और पुनः मूलाधार में अवरोह तथा शिव-शक्ति मिलन सामरस्य। इस प्रकार यह क्रम कहा गया है। योगाभ्यास क्रम में और इसमें कोई अन्तर नहीं है।

तंत्र के मनीषियों ने अधिकारी को अत्यधिक महत्त्व दिया है, क्योंकि यदि साधक अधिकारी नहीं है तो इस बात की आशंका है कि वह किन्हीं निचले स्तर के चक्रों की साधना करता हो और ऐसे प्रयोग करता हो जिनसे नायिका-सिद्धि मिलती है और स्त्रीलिंग की शक्तियों से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। शुद्ध विद्या में साधक केवल ब्रह्मज्ञान अथवा तत्त्वज्ञान के लिए ही प्रयासरत रहता है। उसका इस प्रकार की अधोवृत्तियों से कोई सम्बन्ध नहीं रहता।

'महायोगज्ञानात् परिचितषडम्भोजविभवः
स एवान्तस्तत्त्वप्रकटनसमर्थो न हि परः ।
बुधश्रेष्ठो ज्येष्ठोऽप्यमिलितकृपानाथकरुणः
षडब्जान्तस्तत्त्वं षसहविभवं प्रस्फुटयितुम् ॥'

भाष्य—केवल वही जो छः पद्मों की सम्पत्ति, परिचित, सदम्भोज तथा विभव से पूर्णतया परिचित या जानकार हो गया है, महायोग के द्वारा वही उसके आन्तर् सिद्धान्तों की व्याख्या करने में समर्थ है। षट्चक्र या षट्पद्म छः केन्द्र हैं, जिन्हें मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञाचक्र कहा जाता है। अन्तस्तत्त्व का अभिप्राय षट्चक्र सम्बन्धी गुह्य सिद्धान्त या गुत्थियों से है। ये छहों चक्र ष–स–ह की महानता और श्रेष्ठता से युक्त माने गये हैं। चाहे कोई कितना भी महान् पण्डित या विद्वान् क्यों न हो और चाहे उसका अनुभव कितना ही हो, किन्तु फिर भी कृपानाथ करुणानिधान गुरु की दया के बिना इनके अन्तस्तत्त्व को समझाने या उनके सिद्धान्तों पर प्रकाश डालने में शक्य नहीं है। ष–स–ह का तात्पर्य निर्वाण (मुक्ति), ज्ञान और परमात्मा से है। इन्हें ही क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी माना जाता है।

प्रथमप्रकरणम्

इडादिनाडीत्रयस्वरूपम्

मेरोर्बाह्यप्रदेशे शशिमिहिरशिरे सव्यदक्षे निषण्णे
मध्ये नाडी सुषुम्णा त्रितयगुणमयी चन्द्रसूर्याग्निरूपा ।
धत्तूरस्मेरपुष्पग्रथिततमवपुः कन्दमध्याच्छिरःस्था
वज्राख्या मेढ्रदेशाच्छिरसि परिगता मध्यमेऽस्या ज्वलन्ती ॥ १ ॥

भाष्य—मेरोः के बाह्य स्थान में वाम तथा दक्षिण दिशा में दो नाड़ियाँ हैं। इनकी संज्ञा शशि और मिहिर है। सिरा की संज्ञा नाड़ी भी है। मिहिर या सूर्य नाड़ी पिंगला है, जिसका स्थान दक्षिण की ओर है। मध्य में सुषुम्णा नाड़ी है, जो त्रिगुणमयी है। इसका तात्पर्य है कि इसमें तीन गुण हैं—सत्त्व, रजस् और तमस्। अथवा सुषुम्णा नाड़ी के अन्दर वज्रानाड़ी तन्तु रूप में है। यह चन्द्र, सूर्य और अग्नि रूपा है अर्थात् चित्रिणी, वज्रिणी और सुषुम्णा। उसकी देह पल्लवित धतूरे के पुष्पों की बेल के समान है। यह कन्द के मध्य से लेकर शिर-पर्यन्त तक गई है और वज्रा अन्दर है जो मेढ्र (शिश्न) से शिर तक अत्यन्त देदीप्यमान है ॥ १ ॥

व्याख्या—इस योग के अभ्यास अथवा इसमें पूर्ण दक्षता प्राप्त करने के लिए यह अनिवार्यतः आवश्यक है कि साधक छः चक्रों, नाड़ियों आदि की सम्पूर्ण जानकारी रखता हो। अतः ग्रन्थकार ने प्रस्तुत श्लोकों में इस पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

मेरोः—मेरुदण्ड। यही वह मेरुदण्ड है, जिसे साधारणतया रीढ़ की हड्डी कहते है। इसका विस्तार मूलाधार से ग्रीवा-पर्यन्त है।

तद्बाह्यदेशे शशिमिहिरशिरः—इसके वाह्य देश में शशि और मिहिर नाड़ियाँ है। शशि चन्द्रनाड़ी और मिहिर सूर्यनाड़ी कही जाती है। दानों नाड़ियों को इडा और पिङ्गला कहते हैं।

सव्यदक्षे—इसका अर्थ है दोनों ओर अर्थात् वाम और दक्षिण।

निषण्णे—स्थित हैं।

भूतशुद्धितंत्र का कथन है—'मेरोर्वामे इडा दक्षे पिङ्गला च स्थिते उभे।' इडा बाँयी ओर और पिङ्गला दक्षिण ओर है।

सम्मोहनतन्त्र का कथन है—

'वामगा या इडा नाडी शुक्ला चन्द्रस्वरूपिणी।
शक्तिरूपा हि सा देवी साक्षादमृतविग्रहा।
दक्षे तु पिङ्गला नाम पुंरूपा सूर्यविग्रहा।
रौद्रात्मिका महादेवी दाडिमीकेसरप्रभा॥'

'इनकी समानता सूर्य और चन्द्र से की जा सकती है। बाँयी ओर जो इडा नाड़ी है, वह पीत है और चन्द्रस्वरूपिणी है। यही शक्तिरूपा देवी है। यह साक्षात् अमृतविग्रहा है। दक्षिण की ओर पिङ्गला है। यह सूर्यस्वरूपा पुंरूपा है। यह महान् देवी है। रौद्रात्मिका है अर्थात् इसकी प्रकृति रुद्र के समान है। इसका वर्ण दाडिमी केसर अर्थात् अनारपुष्प के समान लाल है और अत्यन्त देदीप्यमान है।'

ये दोनों नाड़ियाँ मूलाधार से रस्सी (रज्जू) के सदृश पृथक्-पृथक् स्वरूप में ऊर्ध्व की ओर जाती है तथा आज्ञाचक्र पर पहुँचकर नासिका-रन्ध्रों की ओर अग्रसर होती हैं अथवा बढ़ती हैं। यामलतंत्र में उल्लेख है—

'इडा च पिङ्गला चैव तस्य वामे च दक्षिणे।
ऋज्वीभूते शिरे ते च वामदक्षिणभेदतः।
सर्वपद्मानि संवेष्टय नासारन्ध्रगते शुभे॥'

'मेरु के दोनों ओर वाम और दक्षिण में इडा और पिङ्गला हैं। ये दोनों सीधे ऊर्ध्व की ओर जाती हैं तथा वे दोनों दिशाओं से एक-दूसरे को वेणी-

वन्ध के समान आलिंगनवद्ध किये हुए तथा चक्रों को अपने में संवेष्टित कर नासिकारन्ध्रों की ओर वढ़ती है।'

उपरोक्त कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनों नाड़ियों की स्थिति वदलती रहती है। वे ऊर्ध्वं की ओर जाती हैं तथा वाम से दक्षिण की ओर। पद्मों के चारों ओर चक्कर लगाने से वे एक वेणी रूप में ग्रन्थि भी वनाती हैं और नासिका-रन्ध्रों की ओर वढ़ती हैं।

एक अन्य स्थान पर यह भी कहा गया है—

'विद्धि ते धनुराकारे नाडीडापिङ्गले परे।'

अर्थात् इडा और पिङ्गला को धनुषाकार जानना चाहिए।

'या वाममुष्कसम्वन्धा सा श्लिष्यन्ती सुषुम्णया।
दक्षिणं जत्रुमाश्रित्य धनुर्वक्रा हृदि स्थिता।
वामांशजत्र्वन्तरगा दक्षिणां नासिकामियात्' ॥

'वायें अण्डकोश से सम्वन्धित और सुषुम्णा से संयुक्त तथा दाहिने कन्धे के जोड़ के निकट से जाने वाली धनु के समान हृदय पर झुलती रहती है और वाम स्कन्ध की सन्धि पर पहुँच कर नासिका की ओर जाती है। इसी प्रकार जो दक्षिण अण्डकोश से आती है, वह नासिका के वामरन्ध्र की ओर जाती है।

इस प्रकार ये दोनों नाड़ियाँ जो वाम और दक्षिण अण्डकोश से आती हैं, जव भ्रूमध्य-पर्यन्त पहुँचती हैं, तब सुषुम्णा से मिलकर ये तीनों एक ग्रन्थि वनाती हैं, जिसे त्रिवेणी कहते हैं, और ये नासारन्ध्र की ओर चली जाती हैं। कहा गया है—

'इडायां यमुना देवी पिङ्गलायां सरस्वती।
सुषुम्णायां वसेद् गङ्गा तासां योगस्त्रिधा भवेत् ॥
सङ्गता ध्वजमूले च विमुक्ता भ्रूवियोगतः।
त्रिवेणीयोगः सा प्रोक्तस्तत्र स्नानं महाफलम् ॥'

'इडा यमुना देवी है और पिङ्गला सरस्वती तथा सुषुम्णा में गंगा का निवास है। सम्मोहनतंत्र के अनुसार इडा में देवी जाह्नवी और पिङ्गला में यमुना तथा सुषुम्णा में सरस्वती को वतलाया गया है। इनसे त्रिमुखी ग्रन्थि वनती है और तीनों ध्वज (शिश्न) मूल में संयुक्त हैं तथा भ्रूमध्य में पहुँच कर पृथक् हो जाती हैं, अतः इसे त्रिवेणी योग कहते हैं। यहाँ पर स्नान करने से महाफल प्राप्त होता है। यहाँ पर स्नान शव्द का प्रयोग साधारण रूप में नहीं किया गया है। वैसे यह भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि यहाँ पर स्नान कैसे किया जा सकता है, किन्तु यदि इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो यह संशय या भ्रम दूर हो जाता है।

यमुना, गङ्गा, सरस्वती—इस त्रिवेणी की गणना हमारे देश की महान् नदियों में होती है और इनमें स्नान करने से पुण्यलाभ होता है तथा हमारे पाप नष्ट हो जाते हैं और हम पवित्र हो जाते हैं। अतः यहाँ पर तात्पर्य है कि जब साधक का मानस इस चक्र (पद्म) के ज्ञान से ओतप्रोत हो जाता है तो उसे इस ज्ञान से महान् लाभ की प्राप्ति होती है। अतः स्नान शब्द का प्रयोग विशेष अर्थ का परिचायक है।

मध्ये नाडी सुषुम्णा—सुषुम्णा नाडी मेरु के मध्य में है अर्थात् उसका स्थान मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक है। त्रिपुरासारसमुच्चय का कथन है—'या मुण्डाधारदण्डान्तरविवरगता'। वह जो दण्ड के विवर में है अर्थात् शिर से लेकर मूलाधार पर्यन्त।

तन्त्रचूडामणि में इससे भिन्न मत व्यक्त करते हुए कहा गया है—

'मेरोर्वामे स्थिता नाडी इडा चन्द्रामृता शिवे।
दक्षिणे सूर्यसंयुक्ता पिङ्गला नाम नामतः।
तद्वाह्ये तु तयोर्मध्ये सुषुम्णा वह्निसंयुता॥'

'हे शिवे! मेरु के वाम में इडा नाडी है, जो चन्द्र का सुधा सागर है। दक्षिण ओर सूर्य स्वरूपा पिङ्गला है और तद्वाह्ये अर्थात् उसके बाहर तेजोमयी सुषुम्णा है।'

उक्त कथन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सुषुम्णा की स्थिति मेरु के बाहर है, किन्तु ग्रन्थकार इस मत को स्वीकार नहीं करते हैं। उनका कथन है कि मेरु के अन्दर ही समस्त सरसिज (पद्म) हैं और इनका अवलम्ब (आधार) सुषुम्णा है। अतः सुषुम्णा निर्विवाद रूप से मेरु के मध्य में है।

त्रितयगुणमयी—सुषुम्णा को त्रिगुणमयी बतलाया गया है। इसके अनेक अर्थ किये जा सकते हैं। गुण का अर्थ वीणा तन्तु के सदृश सूक्ष्म से भी किया जाता है। ऐसी दशा में इसका अर्थ होगा कि यह तीन सूक्ष्म तन्तुओं से बनी है—सुषुम्णा, वज्रा और चित्रिणी। अथवा सुषुम्णा नाडी के तीन आवरण हैं। सुषुम्णा बाह्य आवरण, चित्रिणी आभ्यन्तर तथा चित्रिणी के अन्तर् में ब्रह्म नाडी है। यही वह मार्ग है, जिससे कुण्डलिनी का आरोह और अवरोह होता है। यदि गुण का अर्थ विशेषण रूप में किया जाय तो इसका अर्थ होगा 'सत्त्व, रजस् और तमस् गुण जिसमें हैं'। इस प्रकार चित्रिणी सत्त्वगुणमयी, वज्रा रजोगुणमयी और सुषुम्णा तमोगुणमयी है।

चन्द्रसूर्याग्निरूपा—चित्रिणी चन्द्ररूपा है, अतः उसका शुक्ल वर्ण है। वज्रिणी सूर्य रूपा होने से उसका वर्ण दाडिमी केसरप्रभा (पीत) के समान

है। सुषुम्णा अग्निरूपा है, अतः उसका वर्ण रक्त के सदृश लाल और तेजोमय है। भूतशुद्धितंत्र में आलेख मिलता है—

'गुदात् तु द्वयङ्गुलादूर्ध्वं मेढ्रात् तु द्वयङ्गुलादधः।
चतुरङ्गुलविस्तारं कन्दमूलं खगाण्डवत्॥
नाड्यस्तस्मात् समुत्पन्नाः सहस्राणां द्विसप्ततिः'॥

इसके आन्तर् में दो अंगुलियों की चौड़ाई के बराबर ऊर्ध्व में वज्रा है, और इसी प्रकार चित्रिणी की स्थिति है, अतः सुषुम्णा त्रिगुणमयी है। अतः वह कामदग्धा उन्मादिनी नारी के समान है। वही त्रिगुणों को धारण करती है—सत्त्व, रजस् और तमस् तथा चन्द्र, सूर्य और अग्नि स्वरूपा है।'

कन्दमध्याच्छिरःस्था—कन्द सर्वनाड़ियों का मूल है। इस स्थान का विवेचन इस प्रकार किया गया है—गुदा से दो अंगुल ऊपर तथा शिश्न से दो अंगुल नीचे कन्दमूल है। इसका आकार चिड़िया के अंडे के समान है और इसका क्षेत्र चार अंगुल का है। इसी से नाड़ियों का उद्‌गम है। इन नाड़ियों की संख्या जो यहाँ से निकलती हैं, बहत्तर सहस्र (७२,०००) है।

शिरःस्था—शिर में है। इसका तात्पर्य यह बतलाया गया है कि इसकी समाप्ति बारह दल वाले कमल पर होती है, जिसका स्थान शिर में स्थित अधोमुख सहस्रदल कमल की कर्णिकाओं परागकोश के सामीप्य में है। गुरु-पादकास्तोत्र के प्रथम श्लोक में कहा गया है—

'कुण्डलीविवरकाण्डमण्डितं।
द्वादशार्णसरसीरुहं भजे॥'

'मैं द्वि-दश कमलदल की वन्दना करता हूँ, जो नाड़ियों का सिरमौर है और यही ब्रह्मनाड़ी चित्रिणी के आन्तर् में है तथा यहीं कुण्डलिनी का आरोह-अवरोह मार्ग है'।

चित्रिणी यहीं समाप्त हो जाती है, अतः उसकी आवरणा सुषुम्णा भी समाप्त हो जाती है। यदि यह अर्थ लगाया जाय कि सहस्रार के ऊपर भी उसका अस्तित्व है तो ४०वें श्लोक में जो वर्णन आता है, यह उसके सर्वथा प्रतिकूल हो जायेगा। वहाँ पर सहस्रार का वर्णन 'शून्यदेशे प्रकाशम्' के रूप में आता है। यदि सुषुम्णा इसके भी आगे तक़ है तो फिर शून्य देश का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता है।

कुछ लोगों की मान्यता है कि तीनों नाड़ियाँ—इडा, पिङ्गला और सुषुम्णा मेरु के मध्य में हैं। अपने इस विचार का समर्थन निगमतत्त्वसार के इस कथन से करते हैं—'मेरोर्मध्यपृष्ठगतास्तिस्रो नाड्यः प्रकीर्तिताः'। अर्थात् 'तीनों

नाड़ियाँ मेरु के मध्य पीठ की ओर हैं।' किन्तु यह कथन स्वीकार्य नहीं है। समस्त तंत्रों का कथन है कि इडा और पिङ्गला मेरु के बाहर हैं तथा इन ग्रन्थों के आधार पर हमारे ग्रन्थकार का कथन है कि ये मेरु के बाहर हैं। इतना ही नहीं वरन् ये यदि मेरु के अन्दर होतीं तो धनुषाकार नहीं हो सकती थीं तथा हृदय की ओर न झुकतीं तथा कन्धों और कुल्हों के जोड़ों का भी स्पर्श न कर पातीं। निगमतत्त्वसार के इस कथन का तात्पर्य 'तिस्रो नाड्यः' अर्थात् सुषुम्णा, वज्रा और चित्रिणी से है; इडा, पिङ्गला और सुषुम्णा से नहीं।

सुषुम्णा की स्थिति मूलाधार से मस्तक-पर्यन्त इस प्रकार बतलाई गई है—

'सुषुम्णा चव्यवल्लीव मेरुश्लिष्टा पुरोगता।
ग्रीवान्तं प्राप्य गलिता तिर्यग्भूता वरानने।
शङ्खिनीनालमालम्ब्य गता सा ब्रह्मसादनम्॥'

'सुषुम्णा आगे बढ़ती जाती है। वह छायालता के सदृश मेरु को आलिंगनबद्ध किये है और ग्रीवा के अन्त तक जाती है। हे वरानने! वह निकलती है और फिर अदृश्य हो जाती है। फिर परित्याग रूप से पृथक् होकर शङ्खिनी का आलम्बन लेकर रहती है तथा आगे बढ़कर ब्रह्मसदन की ओर जाती है।' शङ्खिनी भी एक नाड़ी का ही नाम है।

एक अन्य स्थान पर ऐसा उल्लेख मिलता है—

'चापाकारे स्थिते चान्ये सुषुम्णा प्रणवाकृतिः।
पृष्ठास्थिघुण्टितो भिन्ना तिर्यग्भूता ललाटगा॥
भ्रूमध्ये कुण्डली लग्ना मुखेन ब्रह्मरन्ध्रगा॥'

'अन्य दो धनुषाकारा हैं। सुषुम्णा प्रणव का ही स्वरूप है, अर्थात् प्रणवाकृति—मंत्र ॐ के सदृश है। वह रीढ़ की हड्डी से निकलती है और मस्तक पर्यन्त जाती हैं। भ्रूओं से निकलती हुई कुण्डली से संलग्न है तथा अपने मुख को ब्रह्मरन्ध्र के आगे किये रहती है।' इसका तात्पर्य है कि उसका मुख ब्रह्मरन्ध्र के समीप में है—'सामीप्ये सप्तमी'। गुरुपादुका के प्रथम श्लोक में भी यही उल्लेख है। वास्तव में सुषुम्णा ब्रह्मरन्ध्र तक नहीं, वरन् सामीप्य तक जाती है। वह द्वि-दश कमल के निकट ही समाप्त हो जाती है।

इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि मेरुदण्ड ग्रीवा के नीचे कमर तक है।

सुषुम्णा अपना आलम्ब शङ्खिनी को भी बनाती है। इसका विवेचन शङ्खिनीनालमालम्ब्य कहकर दिया गया है।

ईश्वर उवाच—

'सरस्वती कुहूश्चैव सुषुम्णापार्श्वयोः स्थिते ।
गान्धारी हस्तिजिह्वा च इडायाः पूर्वपार्श्वयोः ॥'

सरस्वती और कुहू सुषुम्णा के दोनों ओर स्थित हैं । गान्धारी और हस्ति जिह्वा इडा के दक्षिण और वाम में है ।

'गान्धारायाः सरस्वत्या मध्ये प्रोक्ता च शङ्खिनी ।
शङ्खिनी नाम सा नाडी सव्यकर्णान्तिमिष्यते ॥'

'गान्धारी और सरस्वती के बीच में शङ्खिनी है । यह शङ्खिनी नाम की नाड़ी वायें कान के अन्त तक जाती है ।' अन्यत्र कहा गया है—

शङ्खिनी कण्ठविवरात् तिर्यग्भूता ललाटगा ।
चित्रिणीसङ्गताश्लिष्टा यावच्छिरसमम्बिके ॥'

'शङ्खिनी कण्ठ के विवर से निकलती है और इधर-उधर होती हुई वक्र रूप में मस्तक तक जाती है । हे अम्बिके ! इसके बाद चित्रिणी के साथ गुँथ कर संयुक्त होकर शिर तक जाती है ।'

शङ्खिनी कन्दमूल से निकलकर सरस्वती और गान्धारी के बीच से निकलते हुए कण्ठ में पहुँचती है और यहाँ से उसकी एक शाखा वक्ररूप में बाएँ कान तक जाती है और दूसरी शाखा शिर के ऊर्ध्व तक चली जाती है ।

'पादादिब्रह्मरन्ध्रान्तं यदस्थि कीलकोपमम् ।
चतुर्दशानां लोकानां मेरुदण्डः प्रचक्षते ॥'

मेरुदण्ड पैरों से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक जाता है । अपनी इस मान्यता के समर्थन में कुछ लोग निगमतत्त्वसार से उपरोक्त कथन को प्रस्तुत करते हैं । किन्तु यह कथन भी सही नहीं है । यथार्थ में रीढ़ की हड्डी ही मेरुदण्ड है । यह मूलकन्द से प्रारम्भ होकर गले के पिछले भाग तक है । यह एक निर्विवादात्मक सत्य है । इसमें कभी भी कोई परिवर्तन नहीं हो सकता । इसके अतिरिक्त यह असम्भव-सा प्रतीत होता है कि एक ही हड्डी पैरों तक जाये । ऐसी स्थिति में न तो पैरों को फैलाया जा सकता है और न ही मोड़ा जा सकता है । अतः मेरुदण्ड मूलाधार से नीचे नहीं है । यदि निगमतत्त्वसार के कथन में पाद का अर्थ पैर से लगायें तो कोई समस्या नहीं रह जाती । पादादि का तात्पर्य उस स्थान से है जहाँ से पाद प्रारम्भ होते हैं । यह मानने पर इसका अर्थ होगा—वह अस्थि, जो समस्त शरीर पर पैर से लेकर शिर तक नियंत्रण रखती है और यह मेरुदण्ड है । यह एक दण्ड के समान है तथा शिश्न से प्रारम्भ होती है । मूलकन्द से ऊपर यह दो अंगुल चौड़ी है । भूत-

शुद्धितंत्र का कथन है—'तन्मध्येद्व्यङ्गुलोर्ध्वे तु वज्राख्या चित्रिणी तथा।' अर्थात् इसके अन्दर तथा दो अंगुल (चौड़ाई) ऊपर वज्रा और चित्रिणी है।

चित्रिणीनाडीसंस्थिति

तन्मध्ये चित्रिणी सा प्रणवविलसिता योगिनां योगगम्या
लूतातन्तूपमेया सकलसरसिजान् मेरुमध्यान्तरस्थान्।
भित्त्वा देदीप्यते तद्ग्रथनरचनया शुद्धबोधस्वरूपा
तन्मध्ये ब्रह्मनाडी हरमुखकुहरादादिदेवान्तसंस्था॥ २॥

भाष्य—उसके मध्य में अर्थात् वज्रा के मध्य में चित्रिणी नाम की नाड़ी है, जो प्रणव की कान्तिमयी ज्योति से अत्यन्त देदीप्यमान है। योगीजन योगमार्ग का अनुसरण करते हुए प्राप्त कर सकते हैं। यह चित्रिणी नाड़ी अत्यन्त सूक्ष्म है। यह इतनी सूक्ष्म है कि इसकी उपमा मकड़ी के तन्तु से दी गई है। यह उन सकल पद्मों का भेदन करती है जो मेरु के अन्दर मूलाधार आदि नामों से जाने जाते हैं। यह शुद्ध बोध स्वरूपा है। यह शुद्ध ज्ञान है अथवा जो पूर्णतया निष्कलंक हैं, वे इससे ज्ञान प्राप्त करते हैं। चित्रिणी पद्मों से आबद्ध होने और इनका भेदन करने के फलस्वरूप अतीव सुन्दर है। इसी के बीच (मध्य) ब्रह्मनाड़ी है। ब्रह्मनाड़ी चित्रिणी से पृथक् नहीं है, अपितु उसके अन्दर एक मार्ग ही है। यह नाड़ी हरमुखकुहर को भेदती हुई उसी छिद्र से उस स्थान तक गई है, जहाँ परम-शिव आन्तर् में स्थित हैं। ये परमशिव ही आदिदेव हैं।

व्याख्या—तन्मध्ये—वज्रा के मध्य में।

प्रणवविलसिता—आज्ञाचक्र (पद्म) का अवच्छेदन करने पर उसके बीच प्रणव का प्रकाश है तथा इस प्रकाश से अत्यन्त देदीप्यमान है। पद्म के भेदन से यह देदीप्यमान रहती है। अतः ग्रन्थकार ने ३७वें श्लोक में कहा है—'तदनु च नवीनार्कबहुलप्रकाशं ज्योतिर्वा गगनधरणीमध्यमिलितम्।' योगीजन वहाँ ज्योति और प्रकाश को देखते हैं। यह ज्योति दीपशिखा के समान है। ज्योति की प्रखर ज्वाला को देखने के पश्चात् ही प्रकाश दिखलाई देता है। प्रातःकाल के नवोदित सूर्य के समान ही यह जाज्वल्यमान और कान्तिवान् है। यह ज्योति अथवा प्रकाश गगन और पृथ्वी के मध्य अत्यन्त प्रभापूर्ण है।

लूतातन्तूपमेया—इतनी सूक्ष्म है कि उसकी उपमा कर्कट (मकड़ी) के तन्तु से की जाती है। उसका भेदन करने से देदीप्यमान दिखलाई पड़ती है।

सकलसरसिजान् मेरुमध्यान्तरस्थान्—वह सकल पद्मों का भेदन कर इस प्रकार देदीप्यमान रहती है, जैसे मणियों से ग्रथित तन्तु।

इस सन्दर्भ में कल्पसूत्र के चतुर्थ काण्ड में उल्लेख है—

'चित्रिणीशून्यविवरे सञ्जाताम्भोरुहाणि षट् ।
तत्पत्रेषु महादेवी भुजङ्गी विहरन्ति च ॥'

'चित्रिणी के अन्दर जो शून्य विवर या गुहा अथवा सारणि (खोखला मार्ग) है, उसमें ही छः पद्म हैं । इनके पत्रों पर ही महादेवी भुजङ्गी विहार करती हैं ।'

किन्तु इस पाठ में भुजङ्गी के साथ क्रिया बहुवचन की आई है—विहरन्ति । यह ठीक नहीं प्रतीत होता है । किन्तु यदि यह कहा जाय कि यह शिव का शब्द है और बहुवचन को एकवचन के रूप में प्रयुक्त किया गया है तो फिर यह समझना चाहिए कि यह स्थान का संकेत करता है—चित्रिणीरन्ध्रविवरे । इसे करणार्थ प्रयुक्त किया जाय तब इसका सही अर्थ होगा—'भुजङ्गी चित्रिणी के अन्दर के विवर द्वारा जाती है । वह आरोह के समय चक्रों (पद्मों) का भेदन करती है तथा चक्रों के पत्रों पर भी उसकी गति होती है' । अथवा इसका यह अर्थ भी हो सकता है कि भुजङ्गी चित्रिणी के विवर से जाती है तथा सुषुम्णा में स्थित छः पद्मों के पत्रों पर विहार करती हुई अन्त में सहस्रार तक चली जाती है ।

इस तथ्य से यह भी स्पष्ट है कि षट्चक्र चित्रिणी के विवर में नहीं है ।

तन्मध्ये—चित्रिणी के मध्य में । ब्रह्मनाड़ी चित्रिणी के मध्य में है ।

ब्रह्मनाडी—इसका मूल नद है—नड गतौ—नड का अर्थ है गति या स्पन्दन । ब्रह्मनाड़ी का तात्पर्य उस विवर से है, जिससे कुण्डलिनी मूलाधार से उठकर परमशिव के स्थान तक जाती है । कुण्डलिनी शब्द-ब्रह्म का स्वरूप अथवा आकार है । कहा गया है—शब्द-ब्रह्मरूपा कुण्डलिनी । इससे यह सिद्ध होता है कि चित्रिणी के अन्दर शून्य अथवा विवर है और कोई अन्य नाड़ी नहीं है ।

हरमुखकुहरात्—मूलाधार में जो स्वयम्भूलिङ्ग है, उसके ऊपर का छिद्र ।

आदिदेव—यह वह परमबिन्दु है, जो सहस्रार दल कमल की कर्णिकाओं के मध्य है । इस पर बिन्दु भी माना जाता है ।

स्वयम्भूलिङ्ग के सम्बन्ध में एक अन्य स्थान पर उल्लेख है कि यह मूलाधार में चतुर्दल कमल की कर्णिका में एक अत्यन्त सुन्दर त्रिकोण है । इस त्रिकोण के ऊर्ध्व कोण में अनार के पुष्प के सदृश एक लिङ्ग की आकृति बतलाई जाती है । तान्त्रिक ग्रन्थों में इसे स्वयम्भूलिङ्ग कहा गया है । इसके साथ दस इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और पाँच प्राण संयुक्त हैं । उल्लेख है कि इसका

निर्माण शुद्ध पंचभूतों से हुआ है। यही लिङ्ग देह भी कहा जाता है। वास्तव में यह लिङ्ग शरीर ही विभिन्न देह धारण करता है, क्योंकि इसके साथ वासनाएँ भी युक्त हैं। यह भी कहा जाता है कि जीव की वासनाओं का नाश होने पर इस लिङ्ग का भी नाश हो जाता है। यह कथन चक्रकौमुदी (श्लोक १९, २० और २१) में मिलता है।

विद्युन्मालाविलासा मुनिमनसि लसत्तन्तुरूपा सुसूक्ष्मा
शुद्धज्ञानप्रबोधा सकलसुखमयी शुद्धबोधस्वभावा।
ब्रह्मद्वारं तदास्ये प्रविलसति सुधाधारगम्यप्रदेशं
ग्रन्थिस्थानं तदेतद्वदनमिति सुषुम्णाख्यनाड्या लपन्ति ॥ ३ ॥

भाष्य—चित्रिणी अतीव सुन्दरी तथा उसकी आभा विद्युन्माला के समान है। वह अति सूक्ष्म है तथा मुनियों के मानस में तेजोमय प्रकाश रूप में रहती है। यह कमल के तन्तु से भी अधिक सूक्ष्मतर है तथा शुद्ध ज्ञान ही उसका प्रकाश है। अतः वह सम्पूर्ण कलाओं सहित सुखमयी है। शुद्ध भाव रूप में आत्मभावा है। उनके मुख में ब्रह्मद्वार प्रकाशित है। यहीं से कुण्डलिनी का आरोह एवं अवरोह होता है, अतः सुधा का प्रक्षालन होता है। यही ग्रन्थि-स्थान है और सुषुम्णा में यहीं से प्रवेश होता है।

व्याख्या—**लसत् तन्तुरूपा**—देदीप्यमान हैं तथा कमल तन्तु से भी अति सूक्ष्म रूप में हैं। कुण्डलिनी की उपस्थिति से अत्यन्त दीप्तिमान हैं।

सकलसुखमयी—सर्वानन्दमयी।

शुद्धबोधस्वभावा—शुद्धबोध तत्त्वज्ञान को कहते हैं। अपने आत्मभाव की भावना ही जिसका स्वभाव या प्रकृति है।

तदास्ये—ब्रह्मनाड़ी का द्वार। हरमुख में छिद्र। यहीं से कुण्डलिनी शिव-सान्निध्य के लिए प्रवेश करती हैं।

सुधाधारगम्यप्रदेशम्—सुधाधार—परमशिव और शक्ति के सामरस्य (मिलन) स्वरूप अमृतधारा निःसृत होती है। यही मिलन अर्थात् आरोह और अवरोह का पथ है, जो सुधा-धारा से सिंचित रहता है।

तदेतदिति—इस द्वार के समीप ही यह स्थान है।

ग्रन्थिस्थानम्—कन्द और सुषुम्णा का संधिस्थल।

लपन्ति—आगमों के जानकार कहते हैं।

मूलाधारचक्रनिरूपणम्

अथाधारपद्मं सुषुम्णास्यलग्नं ध्वजाधो गुदोर्ध्वं चतुःशोणपत्रम्।
अधोवक्त्रमुद्यत्सुवर्णाभवर्णैर्वकारादिसान्तैर्युतं वेदवर्णैः ॥ ४ ॥

भाष्य—अब हम आधारचक्र पर आते हैं। नाड़ी-प्रस्तावना के पश्चात् छः पद्मों में यथाक्रम मूलाधार प्रथम है। अतः इसे मूलाधार पद्म या मूलाधार चक्र कहते हैं। यह पद्म सुषुम्णा के मुख से संलग्न है। लिङ्ग के नीचे तथा गुदा के ऊपर अपान के स्थान पर इसकी स्थिति है। इसमें सोने के वर्ण के चार रक्तवर्ण पत्र हैं। यह अधोमुखी है। इसके पत्रों पर चार अक्षर वं शं षं सं है। इनकी आभा सुवर्ण के समान है।

व्याख्या—नाड़ी-निरूपण के पश्चात् अङ्ग-प्रत्यङ्ग सहित मूलाधार चक्र का वर्णन किया जा रहा है। इस मूलाधार चक्र का वर्णन नौ श्लोकों में है तथा प्रस्तुत श्लोक प्रथम है।

सुषुम्णास्यलग्नम्—चारों ओर चार पत्र हैं और ये उसी स्थान पर हैं जहाँ कन्द और सुषुम्णा का संधिस्थल है।

ध्वजाधो गुदोर्ध्वम्—लिङ्ग के मूल के नीचे सुषुम्णापर्यन्त।

चतुःशोणपत्रम्—रक्तवर्ण के चार दल (पत्र)।

वकारादिसान्तैः—वं, शं, षं, सं।

वेदवर्णैर्युतम्—वेद चार हैं। बड़े लोग कभी-कभी चार का संकेत देने के लिए वेद का प्रयोग करते हैं।

यहाँ पर छः पद्मों के दलों या पत्रों पर वर्णमाला के अक्षरों का ध्यान करना चाहिए, जो वृताकार में दक्षिण से आवर्तन करते हैं। इस विषय में विश्वसारतंत्र में उल्लेख है—

> 'सर्ववर्णात्मकं पत्रं पद्मानां परिकीर्तितम्।
> दक्षिणावर्तयोगेन लिखनं चिन्तयेद्धिया'॥

धरामण्डलस्वरूपम्

अमुष्मिन् धरायाश्चतुष्कोणचक्रं समुद्भासि-शूलाष्टकैरावृतं तत्।
लसत्पीतवर्णं तडित्कोमलाङ्गं तदन्ते समास्ते धरायाः स्वबीजम्॥५॥

भाष्य—इस पद्म के बीजकोश में चतुष्कोण पृथ्वीमंडल है। यह चारों ओर से आठ शूलों से अत्यन्त प्रदीप्त एवं आवृत है। यह अत्यन्त सुन्दर और पीत वर्ण है। इसी में धरा का बीज है।

व्याख्या—यहाँ पर चतुष्कोण पृथ्वीमण्डल का विस्तार से वर्णन किया गया है। चारों भुजाएँ तथा चार कोण ही इन शूलों का स्थान हैं।

अमुष्मिन् धरायाश्चतुष्कोणचक्रम्—इस पद्म की कर्णिकाओं में चार कोण रूपा पृथ्वीमण्डल स्थित है। मण्डल की विशेषता है—समुद्भासीत्यादीनां—इस मण्डल की आठ दिक् हैं, जो आठ शूलों से प्रकाशमान् हैं। यह क्षेत्र पीत कान्तियुक्त है। कहा गया है—

'मूलाधारे धराचक्रं चतुष्कोणं प्रियंवदे ।
पीतवर्णं परिवृतं चाष्टशूलैः कुलाचलैः ॥'

'मूलाधार में धरा (पृथ्वी) चक्र जिसमें चार कोण हैं; हे प्रिये ! इसका पीत वर्ण है और अष्ट शूल जो कुलाचल के सदृश हैं, इसे घेरे हुए है ।'

शूलाष्ट—आठ शूल कैसे है ? कुलाचल के सदृश । कुलाचल का अर्थ विद्वान् नारी के स्तन से करते हैं । इस मान्यता के अनुसार इस अष्ट शूलों के अग्रभाग की आकृति नारी के स्तन के सदृश है । दूसरे मत में इसका तात्पर्य सात कुलपर्वतों से बतलाया जाता है । निर्वाणतंत्र का कथन है—

'नीलाचलं मन्दरञ्च पर्वतं चन्द्रशेखरम् ।
हिमालयं सुवेलञ्च मलयञ्च सुपर्वतम् ।
चतुष्कोणे वसेद् देवि एतत् सप्तकुलाचलम्' ॥

'हे देवि ! सात कुलपर्वत—नीलाचल, मन्दर, चन्द्रशेखर, हिमालय, सुवेल, मलय और सुपर्वत हैं । ये चारों कोणों मे स्थित हैं ।'

उक्त मान्यता के अनुसार आठ शूल पृथ्वी पर सात कुलपर्वतों के सदृश हैं। शंकर का कथन है कि शूल यहाँ पर इसलिए है कि इस चक्र में डाकिनीशक्ति का निवास है । डाकिनी की गणना महान् भैरवियों में की जाती है ।

तदन्ते—धरामण्डल या पृथ्वीमण्डल के क्षेत्र के अन्तस् में पृथ्वी का बीज 'लं' है । यह बीज भी पीतवर्णा है । लसत् पीतवर्ण से बीज का भी वर्णन किया गया है । कहा गया है—

'बीजं तन्मध्यतश्चैन्द्रं पीतवर्णं चतुर्भुजम् ।
वज्रहस्तं महाबाहुमैरावतगजस्थितम् ॥'

'इसके अन्दर ऐन्द्र-बीज (इन्द्र का बीज) है । उसका वर्ण भी पीत है तथा उसकी चार भुजाएँ हैं तथा एक भुजा में वज्र है । यह भुजा अत्यन्त विशाल है, अतः इसे महाबाहु कहा गया और ऐरावत पर विराजमान है ।'

महाबाहु को अजानबाहु भी कहा जाता है । यह घुटने-पर्यन्त होती है । ऐरावत इन्द्र का हाथी है । यहाँ पर तथा अन्य चक्रों में जिन पशुओं का उल्लेख आता है, वे उस देवता के वाहन तथा तत्त्वों के विशेष गुणों के भी परिचायक हैं ।

धराबीजध्यानम्

चतुर्बाहुभूषं गजेन्द्राधिरुढं तदङ्के नवीनार्कतुल्यप्रकाशः ।
शिशुः सृष्टिकारी लसद्वेदबाहुर्मुखाम्भोजलक्ष्मीश्चतुर्भागभेदः ॥ ६ ॥

भाष्य—चार भुजाओं से विभूषित तथा ऐरावत हाथी पर विराजमान हैं । 'चतुर्बाहुभूषम्' यह बीज का विशेषण है । चारों भुजाएँ उसकी भूषा हैं ।

उसके अङ्क या गोद में सृष्टि की रचना करने वाले शिशु रूप में ब्रह्मा है, जिनकी आभा मध्याह्न के सूर्य के समान है। उनकी चार जाज्वल्यमान भुजाएँ हैं और उनका मुखकमल चतुर्मुखी है।

व्याख्या—यहाँ पर धराबीज का ध्यान है। धराबीज या पृथ्वी बीज इन्द्र के बीज के सदृश है।

तदङ्के—धराबीज के अङ्क में। इस श्लोक का भाव यह है कि सृष्टिकर्ता ब्रह्मा का निवास धराबीज में है। अंक का तात्पर्य बिन्दु या धराबीज के अन्दर के स्थान से है।

सृष्टिकारी—ब्रह्मा। अतः इसका अर्थ हुआ धराबीज के अङ्क में अथवा बिन्दु में। एक स्थान पर कहा भी गया है—

'मूलाधारे धराबीजं तद्बिन्दौ ब्रह्मणः स्थिति।
तदङ्के शिशुरूपस्य गजारूढोऽमराधिपः॥'

यह शिशु रूप में ब्रह्मा की स्थिति है। उसके अङ्क में अर्थात् धराबीज क्रोड में ब्रह्मा जो अमर हैं, निवास करते हैं; यह एक मत है। किन्तु हमारे मतानुसार धराबीज और इन्द्र बीज को जब एक सदृश माना गया है, अतः यहाँ पर उनकी सादृश्यता की चर्चा की गई है, क्योंकि उल्लेख है—'मन्त्राणां देवता प्रोक्ता देवता मन्त्ररूपिणी' अर्थात् मन्त्रों के अक्षर देवता हैं और देवता मन्त्र-स्वरूप हैं। निर्वाणतन्त्र का कथन है—

'ऐन्द्रबीजं वरारोहे लिङ्गस्य वामदेशके।
सुसिद्धं ब्रह्मसदनं नादोपरि सुसुन्दरम्।
तत्रैव निवसेद् ब्रह्मा सृष्टिकर्ता प्रजापतिः॥'

अतः ब्रह्मा का स्थान धराबीज के ऊर्ध्व तथा नाद के ऊपर है। हे वरारोहे! ऐन्द्रबीज लिङ्ग या शिश्न के नीचे है। ब्रह्मा का स्थान या सदन नाद के ऊपर ही है। यहाँ पर 'नादोपरि' कहा गया है। हमें इसका आशय यह समझना चाहिए कि ब्रह्मा का निवास बिन्दु में है, जो नाद के ऊपर है। 'लिङ्गस्य वामदेशके' का भी प्रयोग है। इसका अर्थ है—'लिङ्ग के बाएँ भाग में' और इसी से मतभेद पैदा हो जाता है। अतएव शारदातिलक में कहा गया है—'आधारांश्च विदुस्तत्र मतभेदादनेकधा'। विभिन्न विचारों के अनुसार विभिन्न आधार हैं।

लसद्वेदबाहुः—चार तेजोमय भुजाएँ। कुछ लोग इसका अर्थ इस प्रकार भी करते हैं—'जिनकी भुजाओं में साम आदि चार वेद हैं'। इस प्रकार ब्रह्मा की दो भुजाएँ बतलाते हैं। किन्तु कहीं भी ब्रह्मा की चार भुजाओं का उल्लेख नहीं मिलता है और न यही कहा गया है कि उनके हाथों में वेद है। ब्रह्मा

का ध्यान निश्चित रूप से इसी प्रकार करना चाहिए कि उनकी चार भुजाएँ हैं। भूतशुद्धितंत्र में स्पष्ट कहा गया है—

'तदङ्के च चतुर्बाहुं रक्तवर्णं शिशुं शिवे।
चतुर्वक्त्रं हंसपृष्ठे ब्रह्माणं विद्धि पार्वति ॥'

'हे शिव! उसके अङ्क में चतुर्बाहु रक्तवर्णीय शिशु ब्रह्मा हैं। उनके चार मुख हैं तथा हंस की पीठ पर विराजमान हैं।'

मुखाम्भोजलक्ष्मीश्चतुर्भागभेदः—उनका मुखकमल चतुर्मुखी है, अर्थात् चार मुख हैं। कुछ लोग इस अंश को 'चतुर्भागवेदः' भी पढ़ते हैं, किन्तु इसके तात्पर्य में कोई परिवर्तन नहीं आता है। यदि 'मुखाम्भोजलक्ष्मीश्चतुर्भागवेदः' भी पढ़ा जाय तो अर्थ होगा कि 'उनके मुखकमल की शोभा में चार वेद वृद्धि कर रहे हैं'।

ब्रह्मा के करों में क्या है? इस सम्बन्ध में विश्वसारतंत्र में ब्रह्मा के ध्यान की चर्चा करते हुए कहा गया है—

'दण्डकमण्डलुधरामक्षसूत्राभयं तथा।
ध्यायेत् तां रक्तवर्णाञ्च ब्राह्मीं कृष्णाजिनोज्ज्वलाम् ॥'

ब्राह्मी शक्ति का ध्यान—'ब्रह्म शक्ति के हाथों में दण्ड, कमण्डल, अक्ष-सूत्र (रुद्राक्ष की माला), गदा और चौथा हाथ अभयमुद्रा में है, जो वर प्रदान करने की भी मुद्रा है।

सप्तशतीस्तोत्र में कहा गया है—यस्य देवस्य यद्रूपम्—शिव और शक्ति के ध्यान में दोनो के हाथों में एक ही प्रकार का आयुध है।

यामलतंत्र का कथन है—

'अभयवरदहस्तं कुण्डिकामक्षमालाम्।
दधतममलभूषं चिन्तयेदादिमूर्तिम् ॥'

आदि मूर्ति का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए कि वरद हस्त से अभय और वर प्रदान कर रही है तथा कुण्डिका और रुद्राक्ष की माला लिये हुए हैं तथा सुन्दर आभूषणों से शोभित हैं। शेष स्पष्ट है।

आधारपद्मस्थ-डाकिनीशक्तिस्वरूपम्

वसेदत्र देवी च डाकिन्यभिख्या लसद्वेदबाहूज्ज्वला रक्तनेत्रा।
समानोदितानेकसूर्यप्रकाशा प्रकाशं वहन्ती सदा शुद्धबुद्धेः ॥ ७ ॥

भाष्य—इस चक्र में डाकिनी देवी का निवास है। वे चार सुन्दर भुजाओं से शोभित हैं और उनके नेत्र रक्तवर्ण हैं। वे अनेक सूर्यों के एक साथ

उदित होते हुए प्रकाश के समान तेजोमय हैं। वे सदैव शुद्ध बुद्धि अथवा तत्त्वज्ञान को प्रकाशित करती हैं।

व्याख्या—आधार पद्म में डाकिनी शक्ति है। इसका भाव यह है कि इस पद्म में डाकिनी नाम की देवी रहती हैं।

सदा—सब समय।

शुद्धबुद्धेः—तत्त्वज्ञान।

प्रकाशं वहन्ति—डाकिनी शक्ति योगी को तत्त्वज्ञान प्राप्त करने के योग्य बनाती हैं। योगपद्धति के अनुसार उनका ध्यान करने से तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है, यह भाव है। ये देवी ही इस चक्र की अधिष्ठात्री हैं। यहाँ जो पद्म है, उसमें व श ष स अक्षर हैं। इनकी अधिष्ठात्री डाकिनी देवी हैं।

एक स्थान पर उल्लेख आता है—

'डाकिनी राकिणी चैव लाकिनी काकिनी तथा।
शाकिनी हाकिनी चैव क्रमात् षट्पङ्कजाधिपाः॥'

'डाकिनी, राकिणी, लाकिनी, काकिनी, शाकिनी और हाकिनी ये क्रमशः ६ पद्मों की अधिष्ठात्री अथवा स्वामिनी हैं।'

डाकिनी के ध्यान का उल्लेख एक स्थान पर इस प्रकार है—

'रक्ताक्षीं रक्तवर्णां पशुजनभयकृच्छूलखट्वाङ्गहस्तां
वामे खड्गं दधानां चषकमपि सुधापूरितं चैकवक्त्राम्।'
'अत्युग्रामुग्रदंष्ट्रामरिकुलमथनीं पायसान्ने प्रसक्तां
मूलाधारेऽमृतार्थे परिवृतवपुषं डाकिनीं चिन्तयेत् ताम्॥'

'डाकिनी का विग्रह ध्यान में इस प्रकार है—वे रक्तनेत्रा और रक्तवर्णा हैं तथा उनका स्थान मूलाधार में है। वे पशुओं (अज्ञानी जीवों) में भय और त्रास उत्पन्न करती हैं। उनके दाहिने दोनों हाथों में शूल और खट्वांग (एक प्रकार की गदा जिसके ऊपरी भाग में कपाल) है। दोनों वाम करों—एक में खड्ग और दूसरे में खप्पर है। खप्पर मधु से परिपूर्ण है। वे भयानक और क्रूर स्वभावा हैं। बड़े-बड़े पैने दाँत बाहर की ओर निकले हुए हैं, जिसके कारण देखने में वे और अधिक भयानक प्रतीत होती हैं। शत्रुओं के पूर्ण समूहों का विनाश पलक मारते ही कर देती हैं। शरीर से भारी हैं और भोजन में उन्हें खीर रुचिकर है। जो साधक अमर जीवन की कामना करते हैं, उन्हें डाकिनी का ध्यान करना चाहिए।'

एक अन्य स्थान पर ध्यान को इस प्रकार भी बतलाया गया है—

'सिन्दूरतिलकोद्दीप्तामञ्जनाञ्चितलोचनाम्।
कृष्णाम्बरपरीधानां नानाभरणभूषिताम्॥'

'उनके मस्तक पर सिन्दूर का तिलक है तथा नेत्रों में अञ्जन है, जिससे बड़ी दीप्तिमान हैं। शरीर पर काले मृग का चर्म है तथा अनेक आभूषण जो रत्न और मड़ियों से जड़ित हैं, उनके अंगों पर शोभित हैं।'

इस प्रकार डाकिनी का ध्यान कृष्णाम्वर में ही करना चाहिए। यहाँ पर षट्चक्र के ब्रह्मा आदि सकल देवताओं का ध्यान करते हुए यह भान रखना चाहिए कि उनके मुख झुके हुए हैं, अर्थात् वे अधोमुखी हैं।

शाक्तानन्दतरंगिणी में मायातंत्र को उद्धृत करते हुए यह उल्लेख है कि पार्वती ने महादेव से पूछा—'अधोवक्रस्थितिस्तत्र अधो भागे कथं भवेत्।' अर्थात् जब वहाँ कमल ही अधोमुखी है तो वे अधोमुखी कैसे हो सकते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में महादेव ने कहा—

'तत्सर्वं पङ्कजं देवि ! सर्वतोमुखमेव च।
प्रवृत्तिभावचिन्तायामधोवक्त्राणि चिन्तयेत्।
निवृत्तिभावमार्गेषु सदैवोर्ध्वमुखानि च॥'

हे देवि ! पद्मों के शिर विभिन्न दिशाओं में हैं। प्रवृत्ति मार्ग में उनका विचार अधोमुख रूप में करना चाहिए, किन्तु निवृत्ति मार्ग में यह मानकर ध्यान किया जाता है कि वे ऊर्ध्वमुखी हैं। शेष स्पष्ट है।

मूलचक्रकर्णिकास्थ-त्रिकोणस्वरूपम्

वज्राख्या-वक्त्रदेशे विलसति सततं कर्णिकामध्यसंस्थं
कोणं तत् त्रैपुराख्यं तडिदिव विलसत्कोमलं कामरूपम्।
कन्दर्पो नाम वायुर्निवसति सततं तस्य मध्ये समन्ता-
ज्जीवेशो बन्धुजीवप्रकरमभिहसन् कोटिसूर्यप्रकाशः॥ ८॥

भाष्य—इस आधारकमल की कर्णिकाओं के मध्य में त्रैपुर है, जो त्रिपुरा से सम्वन्धित होने के कारण इस नाम से जाना जाता है। चतुष्कोण में वज्रानाड़ी प्रकाशित होती है। यह सदैव विद्युत् की भाँति प्रकाशमान रहती है। यहाँ का प्रकाश अत्यन्त कोमल है और यही कामपीठ है। यह आकार में त्रिकोण के समान है। यहाँ पर निरन्तर तथा सर्वत्र वायु है, जिसे कन्दर्पवायु कहते हैं। इसका वर्ण गहरा लाल बन्धुजीव पुष्प के वर्ण से भी अधिक गहरा है। काम की दूसरी संज्ञा कन्दर्प है। यही जीवों का स्वामी है तथा इसे जीवेश कहते हैं। यह कैसा है? इसकी प्रभा या प्रकाश करोड़ों सूर्यों के प्रकाश के समान दीप्तिमान है।

व्याख्या—मूलचक्र (आधारचक्र) की कर्णिकाओं में त्रिकोण का निरूपण किया गया है।

वज्राख्या-वक्त्रदेशे---सुषुम्णा के दो अंगुल ऊपर तथा जननेन्द्रियों (लिङ्गों) के मूल के नीचे वज्रा का मुख है। मूलाधार की कणिकाओं के मध्य में गह्वर के अन्तस् में त्रिकोण है। यह त्रिकोण कैसा है ? **त्रिकोणं त्रैपुराख्यम्**---त्रिकोण इसलिए कहा जाता है, क्योंकि यहाँ पर देवी त्रिपुरा त्रिकोण के अन्दर 'क' अक्षर में हैं। अर्थात् त्रिकोण के गर्भ में कामवीज का मुख्य घटक 'क' है। यह देवी त्रिपुरसुन्दरी का अधिष्ठान है, अतः इसे त्रैपुर कहते हैं। शक्तानन्दतरङ्गणी में ककारतत्त्व की चर्चा करते हुए उल्लेख है—'तेषां मध्ये स्थिता देवी सुन्दरी परदेवता।' अर्थात् इसके मध्य में परदेवता त्रिपुरसुन्दरी का स्थान है।

कोमलम्---सुस्निग्ध।

कामरूपम्---उसे काम कहा जाता है, जिससे उनका अनुभव किया जाय। यह मदनागारात्मक है। एक अन्य स्थान पर शङ्कर ने इसे भक्ताभिलाषा स्वरूप में भी बतलाया है, अर्थात् भक्त की अभिलाषाओं की साकार मूर्ति। त्रिकोण के विषय में सम्मोहनतंत्र का कथन है—'त्रिकोणं तत्तु विज्ञेयं शक्तिपीठं मनोहरम्।' अर्थात् 'त्रिकोण को मनोहर शक्तिपीठ समझना चाहिए।' सम्मोहनतंत्र का यह भी कथन है—'वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री त्रिरेखा तदूर्ध्वतः।' अर्थात् 'त्रिकोण धराबीज के ऊपर है और वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री ये तीनों रेखाएँ उसके ऊपर हैं।' इस त्रिकोण के मध्य कन्दर्पवायु है।

कन्दर्प---त्रिकोण में व्यापक रूप से कन्दर्पवायु है।

समन्तात्---सर्वत्र।

जीवेश---जीवों का ईश। इसे जीवेश इसलिये कहा गया है, क्योंकि जीवों का जीवन काम या कन्दर्प पर ही आधारित है। उल्लेख मिलता है—'कन्ददेशे वसेत् प्राणो ह्यपानो गुदमण्डले।' अर्थात् 'कन्द स्थान (हृदय) में प्राण का निवास है तथा गुदामण्डल में अपान है।' इस कथन से स्पष्ट है कि गुदामण्डल में अपानवायु है तथा कन्दर्प वायु उसका ही एक भाग है, अर्थात् दोनों अभिन्न हैं। अन्यत्र कहा गया है—

> 'अपानः कर्षति प्राणं प्राणोऽपानश्च कर्षति।
> रज्जु बद्धो यथा श्येनो गतोऽप्याकृष्यते पुनः।
> तथा चैतौ विसंवादे संवादे सन्त्यजेदिमम्॥'

अपानवायु प्राणवायु को और प्राणवायु अपानवायु को अपनी ओर खींचता है। यह कार्य ठीक उसी प्रकार से होता है, जैसे रस्सी में बँधा श्येन जब भागना चाहता है तो रस्सी उसे वापिस खींचती है। यह आपसी संघर्ष

आकर्षण और प्रत्याकर्षण रूप में निरन्तर चलता है। इस प्रकार ये दोनों वायु आपसी सामञ्जस्य न होने से एक-दूसरे को शरीर का परित्याग करने से रोके रहते हैं, किन्तु जब इन दोनों में सामञ्जस्य अथवा ऐक्य हो जाता है तो वे शरीर को त्याग देते हैं।

दोनों प्राण और अपानवायु की दिशाएँ भिन्न हैं और ये विरोधी दिशाओं में जाना चाहते हैं और निरन्तर इसी संघर्ष में रत रहते हैं तथा दोनों में से कोई भी शरीर को छोड़ने में समर्थ नहीं हो पाता है। जब इनमें सामञ्जस्य स्थापित हो जाता है तो शरीर को छोड़ने में कोई बाधा नहीं रह जाती। कन्दर्पवायु अपानवायु का ही अंश है, अतः वह भी प्राणवायु को ही खींचता है और प्राणवायु को शरीर छोड़ने से रोकता है। यही कारण है कि कन्दर्प वायु को जीवेश कहा जाता है।

ग्रन्थकर्ता ने ग्यारहवें श्लोक में इसी उद्देश्य से कहा है—

'श्वासोच्छ्वासविभञ्जनेन जगतां जीवो यया धार्यते'।

कुण्डलिनी ही 'श्वास-प्रश्वास से जगत् के प्राणियों को जीवित रखती हैं'। वे स्वयं कहते हैं कि प्राण और अपान ही जीवों का आधार है।

त्रिकोणमध्यस्थ-स्वयम्भुलिङ्गस्वरूपम्

तन्मध्ये लिङ्गरूपी द्रुतकनककलाकोमलः पश्चिमास्यो
ज्ञानध्यानप्रकाशः प्रथमकिसलयाकाररूपः स्वयम्भूः।
विद्युत्पूर्णेन्दुबिम्बप्रकरकरचयस्निग्धसन्तानहासी
काशीवासी विलासी विलसति सरिदावर्तरूपप्रकारः॥ ९॥

भाष्य—इसके मध्य में अर्थात् इस कोण के थोड़ा ऊपर लिङ्ग रूपी स्वयम्भूः लिङ्ग है। यह कैसा है? बतलाते हैं कि यह द्रुत या कनककला के समान है। यह द्रवित स्वर्ण के सदृश कोमल और सुन्दर है तथा कान्तिमान है। यह अधोमुख है। ज्ञान, ध्यान और योगाभ्यास के प्रकाश से इसका उदय होता है। इसका आकार और स्वरूप नव पल्लव अर्थात् नये पत्ते के समान है। इसकी तुलना अधखिली पत्ती से भी की जा सकती है। यह विद्युत् और पूर्ण चन्द्रमा की शीतल एवं स्निग्ध बिम्बों के समान अतीव आकर्षक एवं सौन्दर्यमय है। यहाँ पर जो देव निवास करते हैं, वे ठीक उसी प्रकार आह्लादपूर्ण रूप में है मानों वे काशी में हैं।

व्याख्या—त्रिकोण के मध्य में स्वयम्भूः लिङ्ग स्थित है।

तन्मध्य—त्रिकोण के मध्य में शिवलिङ्ग रूपी स्वयम्भूः लिङ्ग यहाँ पर स्थित है।

द्रुतकनककलाकोमलः—उसका आकार तप्त काञ्चन अर्थात् द्रवित सोने के समान स्निग्ध और सुन्दर है।

पश्चिमास्यः—अधोमुख है। इस सम्बन्ध में कालीकुलामृत का कथन है—

'तत्र स्थितो महालिङ्गः स्वयम्भूः सर्वदा सुखी।
अधोमुखः क्रियावांश्च कामबीजेन चालितः॥'

'वहाँ पर महान् लिङ्ग स्वयम्भूः स्थित है, जो सदैव आनन्दमय है। उसका मुख नीचे की ओर है और जब कामबीज उसे प्रेरित करता है तो क्रियाशील हो जाता है'।

ज्ञानध्यानप्रकाशः—ज्ञान और ध्यान से जिसकी सत्ता या विद्यमान होने की अनुभूति होती है। ज्ञान से निर्गुण रूप का प्रकाश होता है और ध्यान से सगुण रूप भासित या प्रकाशित होता है। यही स्वयम्भूः है।

प्रथमकिसलयाकाररूपः—इससे प्रतीत होता है कि स्वयम्भूः लिङ्ग का आकार नयी अधखिली कली अर्थात् अंकुर के समान है। चम्पक पुष्प की गर्भ केसर के समान स्वयम्भूः लिङ्ग के नीचे का भाग स्थूल है तथा आगे का भाग सूक्ष्म है। इसे शुण्डाकृति कहना अधिक उपयुक्त होगा। यह भी स्पष्ट होता है कि स्वयम्भूः लिङ्ग का वर्ण श्याम है। 'शाक्तानन्दतरङ्गिणी' में इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है—

'स्वयम्भूलिङ्गं तन्मध्ये सरन्ध्रं पश्चिमाननम्।
ध्यायेच्च परमेशानि शिवं श्यामलसुन्दरम्॥'

शिव कहते हैं—'हे परमेशानी! इस त्रिकोण के आन्तर् में स्वयम्भूः लिङ्ग का ध्यान करो जो अधोमुखी है, सुन्दर और श्यामल है—'शिवं श्यामल-सुन्दरम्'।

यामल में उल्लेख है—

'मूलाधारे स्मरेद् दिव्यं त्रिकोणमतिसुन्दरम्।
तस्यास्त्रिरेखामानीय अध-ऊर्ध्वंव्यवस्थिताम्'॥
नीलतोयदमध्यस्थां तडित्कोटिसमप्रभाम्'॥

'मूलाधार में परम सुन्दर, अनुपमेय और दिव्य त्रिकोण का ध्यान करो। इसकी तीन रेखाओं के मध्य कुण्डली का स्थान है, जो ऊर्ध्व में स्थित हैं। नीलमेघों के बीच कोटि विद्युन्मालाओं की प्रभा से भी उनकी दीप्ति की तुलना नहीं की जा सकती'।

यामल के अनुसार कुण्डलिनी की प्रभा गहन नीलमेघों में विद्युन्माला की प्रभा के समान बतलाई गई है। इससे यह प्रकट होता है कि स्वयम्भूः लिङ्ग

का वर्ण नीला है, किन्तु नीलवर्ण और गहरा हरित्-श्यामवर्ण एक ही कोटि में आते हैं। अतः कोई विरोध उत्पन्न नहीं होता है।

विद्युत्पूर्णे दुबिम्बप्रकरकरचयस्निग्धसन्तानहासीति---विद्युत् पूर्ण चन्द्रमा की ज्योति अति प्रकृष्ट होती है, किन्तु फिर भी उसकी किरणें किसी भी प्रकार उत्ताप नहीं देती हैं, वरन् मृदु शीतलता ही प्रदान करती हैं और उसका प्रकाश भी एक विशिष्ट प्रकार का ही होता है। वह विशिष्ट प्रकाश उसी प्रकार का ही है, जो स्वयम्भूः लिङ्ग से निकलता है। इससे जीवों के हृदय आह्लाद, शीतलता और आनन्द में निमज्जित हो जाते हैं।

काशीवासी विलासी---काशी शिव का प्रिय पवित्र स्थान है। यहाँ निवास करना उन्हें अत्यन्त रुचिकर है। इन दो विशेषणों से यह स्पष्ट होता है कि आधारचक्र स्वयम्भूः प्रसन्न और आनन्दित है, जैसे वह विश्वेशर रूप में काशी में और यहाँ पर भी उसे काशी के ही समान आनन्द प्राप्त है।

विलास—उल्लास; काम से प्रफुल्ल भाव। विलासी का अर्थ रसिक भी है क्योंकि पहले यह उल्लेख किया गया है कि 'काम वीज से क्रियाशील' होता है। यह स्वयम्भूः काशीवासी है। यह विश्वेश्वर का भी सूचक है, क्योंकि ब्रह्माण्ड उसका लीला-विलास है।

सरिदावर्तरूपप्रकारः---सरोवर के तटवर्ती प्रदेश में जब भँवर उठते हैं तो मध्य में हलचल नहीं रह जाती, वरन् जल शङ्खाकार रूप ग्रहण कर लेता है। जैसा रूप वैसा ही प्रकार बनता है। स्वयम्भूः कामवीज पर स्थित है। इस सन्दर्भ में कालीकुलामृत का कथन है—

'किञ्जल्कोपरि शृङ्गाटः सरन्ध्रः सुमनोहरः।
तत्र स्थितो महालिङ्गः स्वयम्भूः सर्वदा सुखी।
अधोमुखः क्रियावांश्च कामबीजेन चालितः॥'

'कमल के तन्तुओं से आवृत्त शृंगाट है और इसके ऊपर सुन्दर महालिङ्ग स्वयम्भूः है, जो ऊपर की ओर खुलता है, सदैव सुखी रहता है तथा अधोमुख रहता है और कामबीज से चालित होने पर तुरन्त क्रियाशील हो जाता है।'

अन्यत्र उल्लेख है—

'पूर्वोक्ता डाकिनी तत्र कर्णिकायां त्रिकोणकम्।
यन्मध्ये विवरं सूक्ष्मं रक्ताभं कामबीजकम्।
तत्र स्वयम्भूलिङ्गं चाधोमुखालक्तकप्रभम्॥'

'वहाँ कर्णिकाओ में ऊपर बतलायी गयी डाकिनी और त्रिकोण है, जिसके मध्य में सूक्ष्म विवर है तथा रक्ताभ कामबीज है। वहाँ पर स्वयम्भूः लिङ्ग भी है, जो अधोमुखी और अलक्तक वर्ण का है'।

स्वयम्भुलिङ्गस्थ-कुण्डलिनीशक्तिस्वरूपम्

तस्योर्ध्वे बिसतन्तुसोदरलसत्सूक्ष्मा जगन्मोहिनी
ब्रह्मद्वारमुखं मुखेन मधुरं सञ्छादयन्ती स्वयम्।
शङ्खावर्तनिभा नवीनचपलामालाविलासास्पदा
सुप्ता सर्पसमा शिवोपरि लसत्सार्द्धत्रिवृत्ताकृतिः॥ १०॥
कूजन्ती कुलकुण्डली च मधुरं मत्तालिमालास्फुटं
वाचं कोमलकाव्यबन्धरचनाभेदातिभेदक्रमैः।
श्वासोच्छ्वासविभञ्जनेन जगतां जीवो यया धार्यते
सा मूलाम्बुजगह्वरे विलसति प्रोद्दामदीप्तावलिः॥ ११॥

भाष्य—उसके ऊपर, उस शिव के ऊपर अर्थात् स्वयम्भूः लिङ्ग के ऊपर कमलतन्तु के सदृश सूक्ष्म सुप्ता कुण्डलिनी की छटा देदीप्यमान है। कुण्डलिनी की शरीरकला कमल-तन्तुओं के समान है। वे जगत् की मोहिनी और महा-माया रूपा हैं। वे अपने मुख से ब्रह्मद्वार के मुख को ढँके हुए हैं। अर्थात् सम्यक् रूप से उसको आच्छादित कर रखा है। इस प्रकार अमृत के निर्झर को रोक कर अमृत का पान करती है। अमृत के संयोग से उनका मुख शङ्ख के समान चक्राकार है। वे नवीना चपला विद्युच्छटा की भाँति प्रकाशमान हैं, सुप्ता हैं अर्थात् सर्प के तुल्य हैं। सुप्तावस्था में सर्प कुण्डलाकार में रहता है। उन्होंने शिव को साढ़े तीन वलयों में आवद्ध किया हुआ है॥ १०॥

कुण्डलिनी का मधुर कुंजन मधुमक्षिकाओं के प्रेमातुर रव के समान है। संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं में वे ही गद्य और पद्य को साकार और मोहक रूप देती हैं। वे ही श्वास और उच्छ्वास (प्रश्वास) की प्रक्रिया से प्राणिमात्र को स्थित अथवा जीवित रखती हैं। वे ही मूलाधार कमल के गह्वर में प्रकाश-मान हैं, जिसकी छटा अतुलनीय है॥ ११॥

व्याख्या—यहाँ पर स्वयम्भूः लिङ्ग में कुण्डलिनी की स्थिति बतलाई गई है।

तस्योर्ध्वे—उसके ऊर्ध्व में—स्वयम्भूः लिङ्ग में कुण्डलिनी शक्ति स्थित है। वे इतनी सूक्ष्म हैं जितने कि कमलतन्तु। वे ही कुण्डलिनी देवी जो जीव और जीवात्माओं को जीवित रखती हैं और अलग-अलग पिण्डाण्डों में उन्हें प्रविष्ट करती हैं। वे ही भ्रामरी रूपी नाद को उत्पन्न करती हैं और वाक् की कारणभूता हैं। वे ही मूलाधार कमल के गह्वर की कर्णिकाओं के मध्य त्रिकोण में निवास करती हैं तथा स्वयम्भूः लिङ्ग के ऊर्ध्व भाग में विश्राम करती हैं।

बिसतन्तुसोदरलसत्सूक्ष्मा—कमल-तन्तु से भी अधिक सूक्ष्म।

जगन्मोहिनी—वे इस जगत् में मायारूपिणी हैं, अर्थात् इस ब्रह्माण्ड में वे ही माया हैं।

ब्रह्मद्वारमुखम्—स्वयम्भूः लिङ्ग का छिद्र।

मधुरम्—मृदु।

मुखेन—अपने मुख से आच्छादित किये हुए हैं।

नवीनचपलामालाविलासास्पदा—नव विद्युन्माला के प्रकाश से भी अधिक प्रभावान्। साधारणतः विद्युन्माला अत्यधिक प्रकाशवान् होती है, किन्तु उनके प्रकाश की तुलना में यह प्रकाश भी पीछे रह जाता है।

कोमलकाव्यबन्धरचनाभेदातिभेदक्रमैः—कोमल काव्य जिसमें मृदु शब्दों द्वारा रूप, गुण, रस आदि के वर्णनात्मक वाक्य रहते हैं। बन्ध से यहाँ तात्पर्य चित्रकाव्य से है, जिसकी रचना गद्य और पद्य दोनों में होती है और इस रचना की विशेषता यह मानी गई है कि वह पद्मबन्ध, अश्वबन्ध आदि के समान प्रतीत होती है। अतिभेद से ग्रन्थकार का संकेत संस्कृत, प्राकृत आदि के वाक्यों से है। क्रम का आशय है कि शब्द और वाक्य शास्त्रों में बतलाये गये व्यवहार के अनुरूप ही आते हैं। उन्हीं से अनर्गल पद्यबद्ध और गद्यबद्ध शब्द निःसृत होते हैं और कुण्डलिनी ही उनकी जननी हैं। इसी सन्दर्भ में शारदातिलक में उल्लेख है—

> 'भिद्यमानात् पराद्बिन्दोरव्यक्तात्मा रवोऽभवत्।
> तत्प्राप्य कुण्डलीरूपं प्राणिनां देहमध्यगम्।
> वर्णात्मनाविर्भवति गद्यपद्यादिभेदतः॥'

'पर बिन्दु के विस्फोट से अव्यक्त रव का प्रादुर्भाव होता है। यही अव्यक्त रव जीवित प्राणियों के शरीर से गद्य-पद्य में वर्णाक्षरों के द्वारा वैखरी के रूप में परिस्फुट होता है।' गद्य और पद्य का तात्पर्य वाक्य से है।

कादिमाता में स्पष्ट रूप से कहा गया है—

> स्वात्मेच्छाशक्तिघातेन प्राणवायुस्वरूपतः।
> मूलाधारे समुत्पन्नः पराख्यो नाद उत्तमः॥
> स एव चोर्ध्वतां नीतः स्वाधिष्ठानविजृम्भितः।
> पश्यन्त्याख्यमवाप्नोति तथैवोर्ध्वं शनैः शनैः॥
> अनाहते बुद्धितत्त्वसमेतो मध्यमाभिधः।
> तथा तयोरूर्ध्वगतो विशुद्धौ कण्ठदेशतः॥
> वैखर्याख्यस्ततः कण्ठशीर्षताल्वोष्ठदन्तगः।
> जिह्वामूलाग्रपृष्ठस्थस्तथा नासाग्रतः क्रमात्॥

कण्ठताल्वोष्ठकण्ठस्थः कण्ठौष्ठद्वयतस्तथा।
समुत्पन्नान्यक्षराणि क्रमादादिक्षकावधि ॥'

'आत्मा की इच्छा शक्ति के प्राणवायु पर आघात के परिणामस्वरूप मूलाधार में नाद व्यक्त होता है और यही परा है। आरोह की गति में यह ऊपर की ओर उछलता है और स्वाधिष्ठान में पहुँचकर इसे पश्यन्ती कहा जाता है। इसके पश्चात् पुनः गति लेकर अनाहत में बुद्धितत्त्व से संयोजित होकर इसका स्वरूप मध्यमा हो जाता है। इसके अनन्तर यह शिर की ओर जाता है और तालु, कण्ठ, जिह्वा, ओष्ठ तथा दाँतों तक आता है। यह जिह्वा में चारों ओर फैल जाता है और नासिका के अग्रभाग तक आ जाता है तथा जो कुछ शेष रह जाता है वह कण्ठ, तालु, ओष्ठ आदि में समाया रहता है एवं ओष्ठ और कण्ठ से वर्णाक्षरों का उच्चारण होता है'।

एक अन्य स्थान पर कुण्डलिनी के ध्यान की चर्चा इस प्रकार आती है—

'ध्यायेत् कुण्डलिनीं देवीं स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिनीम्।
श्यामां सूक्ष्मां सृष्टिरूपां सृष्टिस्थितिलयात्मिकाम्।
विश्वातीतां ज्ञानरूपां चिन्तयेदूर्ध्ववाहिनीम् ॥'

'कुण्डलिनी देवी का ध्यान कीजिये। वे स्वयम्भूलिङ्ग को घेरे हुए हैं तथा सूक्ष्म और श्यामा हैं। वे स्वयमेव सृष्टिरूपा हैं तथा उन्हीं में सृष्टि, स्थिति और लय होती है, अथवा संहार रूपा है। वे ही विश्वातीता और ज्ञानरूपा हैं। उनका ध्यान ऊर्ध्ववाहिनी के रूप में किया जाय, क्योंकि सहस्रार तक उन्हीं का आरोह होता है'।

इसी सन्दर्भ में यह भी उल्लेख मिलता है—

'ध्यायेत् कुण्डलिनीं देवीमिष्टदेवस्वरूपिणीम्।
सदा षोडशवर्षीयां पीनोन्नतपयोधराम् ॥
नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम्।
पूर्णचन्द्रप्रभां रक्तां सदा चञ्चललोचनाम् ॥'

'देवी कुण्डलिनी का अपने इष्टदेव के रूप में ध्यान करना चाहिए, क्योंकि वे ही इष्टदेव रूपिणी हैं। वे सदैव षोडश वर्षीया यौवन मद से सम्पन्न वाला हैं तथा उनका वक्षःस्थल विकसित, सुरम्य, दीर्घ, स्थूल एवं उन्नत है। उनके आभूषण सर्व प्रकार की मणियों से भूषित हैं। ये मणियों से जटित आभूषण पूर्णिमा की चन्द्रप्रभा के समान जाज्वल्यमान हैं। उनका अरुण वर्ण है तथा नेत्रों में चाञ्चल्य अथवा कटाक्ष है'।

शाक्तानन्दतरङ्गिणीकार का कथन है कि सुन्दरी का वर्ण रक्ताभ है, जिसे अरुण वर्ण भी कहा गया है। वस्तुतः कुण्डलिनी का ध्यान सदैव रक्तवर्णा के

रूप में ही करना चाहिए। शाक्तानन्दतरङ्गिणी के अनुसार—'जब साधक उनका ध्यान त्रिपुरा स्वरूप में करे तो उनका वर्ण रक्ताभ ही जाने। देवी त्रिपुरसुन्दरी का रक्तवर्ण उनकी एक विशिष्टता मानी जाती है।

श्यामा का आशय साधारणतः वर्ण से लिया जाता है, किन्तु यहाँ पर उसका प्रयोग कुछ और ही बतलाने के लिए आया है। प्रायः सर्व तन्त्रों में कुण्डलिनी का स्वरूप विद्युत् प्रकाश के समान बतलाया गया है। श्यामा के सम्बन्ध में उल्लेख है—

'शीतकाले भवेदुष्णा चोष्णकाले च शीतला।
प्रतप्तकाञ्चनाभा सा श्यामा स्त्री परिकीर्तिता'॥

'श्यामा ऐसी नारी को कहते हैं जो शरद् काल में ऊष्ण तथा ग्रीष्म में शीतल रहती है तथा उसका वर्ण द्रवित सोने के सदृश है'।

यहाँ पर ऐसा ही तात्पर्य प्रतीत होता है तथा वर्ण को लक्ष्य में नहीं रखा गया है। यही सर्व शास्त्रों का सामञ्जस्य है। चक्र-भेदन के पूर्व तथा ब्रह्म द्वार के मध्य स्थित कुण्डलिनी का ध्यान कङ्कालमालिनीतन्त्र में इस प्रकार बतलाया गया है—

'कोटिचन्द्रप्रतीकाशां परंब्रह्मस्वरूपिणीम्।
चतुर्भुजां त्रिनेत्राञ्च वराभयकरां तथा॥
तथा पुस्तकवीणाञ्च धारिणीं सिंहवाहिनीम्।
गच्छन्तीं स्वासनं भीमां नानारूपधरात्मिकाम्॥'

'वे स्वयं परब्रह्मस्वरूपिणी हैं तथा उनका प्रकाश एक साथ उदित होने वाले कोटि चन्द्रों के प्रकाश के सदृश है। उनकी चार भुजाएँ हैं, वे त्रिनेत्रा हैं। हाथ वर और अभय मुद्रा में हैं, अर्थात् वर देने को तत्पर और भय को निर्मूल कर रही हैं। दूसरे हाथों में पुस्तक तथा वीणा है। वे सिंहासनासीन हैं अर्थात् सिंह पर आरूढ़ हैं और वे मूलाधार की ओर जो उनका स्थान है, जा रहीं हैं। भय का संचार करने वाली भीमा के नाना रूप हैं'।

कुण्डलिनीमध्यस्थ-परशक्तिस्वरूपम्

तन्मध्ये परमा कलाऽतिकुशला सूक्ष्मातिसूक्ष्मा परा
नित्यानन्दपरम्परातिविगलत् पीयूषधाराधरा।
ब्रह्माण्डादिकटाहमेव सकलं यद्भासया भासते
सेयं श्रीपरमेश्वरी विजयते नित्यप्रबोधोदया॥ १२॥

भाष्य—इसके मध्य अर्थात् कुण्डलिनी के मध्य में परमाकला है। यही परम परमेश्वरी है, इसी से परमा कहलाती हैं। यह अत्यन्त कुशल हैं। अति सूक्ष्म परा भी यही हैं। सृष्टि करने में इनका कौशल अतुलनीय है। अनादि

आनन्द की धारा से जिस अमृत का प्रवाह होता है, उसे ये ही ग्रहण करती हैं। इसका प्रकाश विद्युन्माला के समान तेजोमय है। इनकी कान्ति अथवा प्रकाश से ब्रह्माण्ड प्रकाशित हो रहा है। उनके शरीर को ब्रह्माण्ड की संज्ञा दी गई है। ब्रह्माण्ड में जो गुण माने जाते हैं वे ही गुण कलेवर में भी हैं। परमा से ही नित्यज्ञान का उदय होता है।

व्याख्या—यहाँ पर दण्ड के सदृश परा शक्ति की चर्चा की गई है। कुण्डलिनी जो स्वयम्भूः लिङ्ग को चारों ओर से घेरे हुए है, के ऊपर एक सूक्ष्म तन्तु सदृश है। वहीं पराशक्ति है। श्रीपरमेश्वरी के तेज से ही यह जगत् भासमान है। यह ब्रह्माण्ड स्वयम्भूः लिङ्ग में है। कुण्डलिनी स्वयम्भूः लिङ्ग को वृत्ताकार रूप में आवृत किये हुए है और यही परमाकला है।

स्वयम्भूः लिङ्ग को कुण्डलिनी ने आवेष्टित किया हुआ है। इसके ऊपर एक सूत्र दण्ड के समान लिङ्ग तक स्थित है। यहीं पर शक्ति है।

परमा—यही माया है जो असम्भव को भी सम्भव बना देती है।

कला—यह नादशक्ति का ही एक स्वरूप है—कला नादशक्ति रूपा। यदि कला को नादशक्ति रूपा कहें तो अधिक उपयुक्त होगा। कला कुण्डलिनी से पृथक् है।

देवी पुराण में परमा शक्ति की चर्चा करते हुए कहा गया है—

'विचित्रा कार्यकारणा चिन्तितातीफलप्रदा।
स्वप्नेन्द्रजालवत् लोके माया तेन प्रकीर्तिता॥'

कलातिकुशला—कला नादशक्ति रूपा तथा यह कुण्डलिनी से भिन्न है। शाक्तानन्दतरङ्गणी में उल्लेख है—

'कला कुण्डलिनी सैव नादशक्तिः शिवोदिता'। अर्थात् 'कला कुण्डलिनी है और शिव ने इसे नादशक्ति बतलाया है'।

एक अन्य स्थान पर उल्लेख है—

'तस्योपरि मनो ध्यायेच्चित्कलामीसमाश्रिताम्।
प्रदीपकलिकाकारां कुण्डल्यभेदरूपिणीम्॥'

'इसके ऊपर अपने मानस में चित्कला का ध्यान करो जो लक्ष्मी से संयुक्त है तथा आकार में दीपशिखा के समान है तथा कुण्डली के साथ उसका ऐक्य है'।

कालिका श्रुति का कथन है—

'तस्याः शिखाया मध्ये तु अध ऊर्ध्वंव्यवस्थिताम्।
स ब्रह्मा स शिवः शूरः स एव परमेश्वरः॥
स एव विष्णुः स प्राणाः स कालाग्निः स चन्द्रमाः।
इति कुण्डलिनीं ध्यात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते'॥

'उसकी शिखा के मध्य तथा त्रिवलय के ऊपर और नीचे परमाकला नाद रूप में है। वही ब्रह्मा है, वही शिव है, वही काम है, वही परमेश्वर है, वही विष्णु है, वही प्राण है, वही कालाग्नि है, वही चन्द्रमा है। इसी कुण्डलिनी का ध्यान करने से सर्व पापों से मुक्ति मिल जाती है।'

अतिकुशला—सृष्टि-सम्पादन करने की योग्यता रूप में उनमें कौशल है।

नित्यानन्दपरम्परातिविगलत् पीयूषधाराधरा—नित्यानन्दपरम्परा—नित्यानन्द की परम्परा अर्थात् परम्परा-क्रम से। नित्यानन्द—आदि आनन्द। नित्यानन्दपरम्पराक्रम—नित्यानन्द से निर्गुण ब्रह्म और इससे सगुण ब्रह्म, सगुण से शक्ति, शक्ति से नाद, नाद से बिन्दु, बिन्दु से कुण्डलिनी, कुण्डलिनी से अवान्तर रूप में चित्कला। इस प्रकार अमृत की सरिता क्रमपूर्वक परमेश्वरी अथवा चित्कला तक पहुँचती है। वे नित्यानन्दपरम्परा हैं। वे नित्यानन्द से उद्भूत होने वाली शृङ्खला के नीचे की कड़ी हैं और वे विगलत्-पीयूषधाराधरा अर्थात् उस सुधाधारा को ग्रहण करती हैं, जो नित्यानन्द से निःसृत है।

नित्यानन्दपरम्परा का एक अर्थ और भी किया जा सकता है कि ब्रह्म के साथ उनका सामरस्य होने के प्रतिफलस्वरूप जो सुधा प्रवाहमान है, उसे वे ही ग्रहण करती हैं। यह सुधा नित्यानन्द से परम्परा के क्रम से परंबिन्दु तक आता है। इसके बाद यह सुधा परंबिन्दु से आज्ञाचक्र, आज्ञाचक्र से विशुद्धचक्र, विशुद्ध से अनाहत, अनाहत से स्वाधिष्ठान तथा स्वाधिष्ठान से मूलाधार में पहुँचती है। यह सुधा मूलाधार तक निरन्तर प्रवाहित रहती और इसे वे ही ग्रहण करती हैं।

मूलाधारे कुण्डलिनीशक्तिचिन्तनफलम्

ध्यात्वैतन्मूलचक्रान्तरविवरलसत् कोटिसूर्यप्रकाशां
वाचामीशो नरेन्द्रः स भवति सहसा सर्वविद्याविनोदी।
आरोग्यं तस्य नित्यं निरवधि च महानन्दचित्तान्तरात्मा
वाक्यैः काव्यप्रबन्धैः सकलसुरगुरून् सेवते शुद्धशीलः॥ १३॥

भाष्य—इस प्रकार मूलाधारचक्र में स्थित उन कुण्डलिनी अर्थात् सर्पिणि जिनकी आभा करोड़ों सूर्यों के प्रकाश की भाँति है, का जो नर ध्यान करता है, वह उन्हीं के समान हो जाता है। क्रम से उसे वाक्सिद्धि प्राप्त होती है। उसकी वाणी माधुर्य और रस से ओत-प्रोत रहती है। मनुष्यों में वह इन्द्र सदृश तथा सहसा सर्व विद्याओं का विनोदी हो जाता है। सदैव निरोगी और स्वस्थ रहता है। उसकी अन्तरात्मा रात-दिन ईश्वर के महानन्द में निमग्न रहती है। यह कैसे होता है? मूलाधार के मध्य जो कोटि सूर्यों का प्रकाश है, उसी प्रकार वह भी तेजोमय हो जाता है। वह व्यक्ति काव्यप्रबन्ध में पटु

माना जाता है। शब्दों का नियामक होने के कारण वह सम्मान पाता है। शुद्ध शील होने से वह देवों का प्रिय बन जाता है।'

व्याख्या—मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी के ध्यान का फल इस श्लोक में बतलाया गया है। मूलचक्र का तात्पर्य मूलाधार से है। छः चक्रों का मूल यही है, अतः इसे मूलाधारचक्र माना जाता है।

मूलचक्रान्तरविवरलसत्कोटिसूर्यप्रकाशाम्—वे करोड़ों नवोदित सूर्यों के प्रकाश के समान मूलाधार के विवर में प्रकाशमान हैं।

वाक्यैः काव्यप्रबन्धैः—उसकी वाणी माधुर्य और रस से ओतप्रोत है।

सेवते—वह अपने शब्दों से स्तुति करता है तथा उन्हें प्रसन्न करता है।

सकलसुरगुरून्—यहाँ पर गुरु का तात्पर्य श्रेष्ठ से है। ग्रन्थकार का सुरगुरून् का आशय ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवों से है। अमर का कथन है—'सिंह, शार्दूल और नाग आदि का प्रयोग यदि पुरुष नाम के साथ किया जाता है तो इससे उसकी श्रेष्ठता प्रतीत होती है॥ १३॥

महावाक्यार्थनिर्णयः

मूलाधारचक्र में चतुर्दल कमल है। ये दल रक्तवर्ण हैं और इन पर व श ष स अक्षर सोने के वर्ण के हैं। इसकी कर्णिकाओं में चतुष्कोण धारा-मण्डल जो आठ शूलों से—जिनका पीत वर्ण है—घिरा हुआ है। इसके मध्य धराबीज है, जिसकी चार भुजाएँ हैं तथा ऐरावत पर आसीन हैं। इसका पीत वर्ण है तथा चारों हाथों में वज्र है। धराबीज के विन्दु के मध्य शिशु रूप में ब्रह्मा हैं। उनका वर्ण रक्ताभ है तथा उनकी भी चार भुजाएँ हैं। इनमें दण्ड, कमण्डल, अक्षसूत्र तथा अभय मुद्रा में है। इनके चार मुख हैं। कर्णिकाओं में एक लाल पद्म है, जिस पर चक्र की अधिष्ठात्री डाकिनी शक्ति आसीन हैं। वे रक्ताभ वर्ण की हैं तथा इनकी चार भुजाएँ हैं। इन चारों हाथों में शूल, खट्वाङ्ग, खड्ग और चषक हैं। कर्णिकाओं में विद्युन्माला के समान प्रभावान् एक त्रिकोण है। इस त्रिकोण के मध्य काम-वायु और कामबीज हैं। ये दोनों भी रक्ताभ वर्ण के हैं। इसके ऊपर श्याम वर्ण का स्वयम्भूः लिङ्ग है। इसके ऊर्ध्व में तथा लिङ्ग को आवृत किये हुए कुण्डलिनी शक्ति है, जो साढ़े तीन वलय मारे हुए हैं तथा इसके भी ऊर्ध्व में लिङ्ग के अग्रचित्कला दण्ड के समान स्थित है।

श्रीपूर्णानन्दयति विरचित श्रीतत्त्वचिन्तामणि में षट्चक्रनिरूपण के छठे अध्याय का प्रथम प्रकरण समाप्त।

द्वितीयप्रकरणम्

स्वाधिष्ठानचक्रस्वरूपम्

सिन्दूरपूररुचिरारुणपद्ममन्यत् सौषुम्णमध्यघटितं ध्वजमूलदेशे ।
अङ्गच्छदैः परिवृतं तडिदाभवर्णैर्वाद्यैः सबिन्दुलसितैश्च पुरन्दरान्तैः ॥१४॥

भाष्य—लिङ्ग के मूलस्थान में स्वाधिष्ठान पद्म है। यह कमल सुषुम्णा के मध्य जननेन्द्रियों के मूलस्थान में है। यह अति सुन्दर सिन्दूरवर्ण का है। इसे अरुणवर्ण का भी कहा जाता है। इस कमल के छः दलों पर ब भ म य र और ल अक्षर हैं। इन अक्षरों पर चन्द्रविन्दु है। ये विद्युत् सदृश वर्ण के हैं। इनकी आभा भी विद्युत् सरीखी है। अक्षरों का अन्तिम अक्षर पुरंदर का ल है। चन्द्रविन्दु के कारण प्रकाशमान है।

व्याख्या—मूलाधारचक्र का निरूपण कर अब स्वाधिष्ठानचक्र का निरूपण किया जा रहा है। यह चर्चा पाँच श्लोकों में की गई है। इनमें प्रस्तुत श्लोक प्रथम है। इस श्लोक में कहा गया है कि जननेन्द्रियों के मूल स्थान पर यह स्थित है तथा मूलाधार से यह सर्वथा भिन्न कमल है। यह सिन्दूरी वर्ण का अत्यन्त सुन्दर कमल है।

सौषुम्णमध्यघटितम्—सुषुम्णा नाड़ी के मध्य में है।

ध्वजमूलदेशे—लिङ्ग अथवा जननेन्द्रिय का मूलस्थान।

सिन्दूरपुररुचिरारुण—यह कमल सिन्दूर अथवा अरुण वर्णीय बड़ा सुन्दर है।

अन्यत्—आधारचक्र से भिन्न।

अङ्गच्छदैः परिवृतम्—छः दल अथवा पत्रों से आवृत है। इन्हीं पर छः अक्षर हैं।

पुरन्दरान्तैरिति—इन छः अक्षरों का अन्तिम अक्षर पुरंदर लकार है। ये अक्षर हैं—वं भं मं यं रं लं।

तडिदाभवर्णैः—जिनकी आभा विद्युत् के समान है, वे वर्ण। ये ही छः दल हैं।

वाद्यैः सबिन्दुलसितैरिति—ये अक्षर विन्दुओं से युक्त हैं। अत्यन्त प्रकाशमान हैं। पुरंदर का तात्पर्य ल अक्षर से है। ल पुरंदर अथवा इन्द्र का वीज है। ये छः अक्षर कमल के छहों दलों पर हैं। इनके ऊपर विन्दु है।

बिन्दु के साथ संयुक्त होने से ये अक्षर अत्यधिक प्रकाशमान हो गये हैं, क्योंकि बिन्दु स्वयं प्रभावान् है।

अम्भोजमण्डलस्थितिवर्णनम्

तस्यान्तरे प्रविलसद्विशदप्रकाशमम्भोजमण्डलमथो वरुणस्य तस्य।
अर्धेन्दुरूपलसितं शरदिन्दुशुभ्रं वङ्कारबीजममलं मकराधिरूढम् ॥१५॥

भाष्य—उसके अन्तर् में अर्थात् उस पद्म के मध्य में वरुण का मण्डल है। वह कैसा है? अति प्रभावान् है और उसका प्रकाश निर्मल है। इस जल प्रदेश का आकार अर्धचन्द्रमा के समान है तथा वड़ा आकर्षक है। यहाँ मकर पर आरूढ़ वं बीज है, जो निष्कलंक और निर्मल है तथा इसका वर्ण चन्द्रमा के सदृश शुभ्र है।

व्याख्या—स्वाधिष्ठान की कर्णिकाओं के मध्य में वरुण का जल-प्रदेश या या मण्डल है। यह अम्भोजमण्डल आकार में अर्धचन्द्र के समान और शुभ्र वर्ण का है।

तस्यान्तरे—इस पद्म के मध्य में।

अम्भोजमण्डलम्—जलप्रदेश, वरुणमण्डल।

प्रविलसत्—प्रकाशमान।

विशदप्रकाशम्—शुल्क वर्ण का प्रकाश।

अर्धेन्दुरूपलसितम्—अर्धचन्द्र के आकार के सदृश। यही जलमण्डल है।

शारदा में उल्लेख है—'अम्भोजमम्भसो भूमेश्चतुरस्रं सवज्रकम्'। अर्थात् 'जलप्रदेश का आकार पृथ्वी के समान चौकोना है तथा वहाँ पर वज्र भी है।'

इस मण्डल के विषय में राघवभट्ट का कथन है—'अर्धचन्द्रं कृत्वा तदुभय-भागे सरोजद्वयं कुर्यात्।' अर्थात् 'अर्धचन्द्र का आकार बना कर उसके दोनों भागों में दो कमल बनाये जायँ।'

आचार्य ने प्रपञ्चसार में उल्लेख किया है—'अब्जोपेतार्द्धेन्दुमद्बिम्ब-माप्यम्।' अर्थात् 'इस जलप्रदेश का आकार उस कमल के प्रकाश-सदृश है, जो अर्धचन्द्र के साथ संयुक्त हो।'

मण्डल के मध्य वरुण बीज स्थित है। यह बीज भी शुभ्र है और मकर पर आरूढ़ है, जो वरुण का वाहन भी है। वरुण के हाथ में पाश है। कहा गया है—

> 'तदन्तर्वारुणं बीजं श्वेतं मकरवाहनम्।
> पाशहस्तं तदङ्के च हरिं श्यामं चतुर्भुजम् ॥'

'पद्म के मध्य स्थित श्वेत वरुण बीज का ध्यान करे। वरुण मकर पर

आरूढ़ है और पाश लिये हुए हैं। उनके ऊपर अर्थात् विन्दु में हरि हैं, जिनकी चार भुजाएँ है और वर्ण श्याम है। उनका भी ध्यान करो।'

वरुण बीज व यवर्ग का है—य र ल व। इन अक्षरों की व्यवस्था कुलाकुल चक्र तथा भूतलिपिमंत्र में जिस प्रकार है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है।

वरुणबीजबिन्दुमध्यस्थ विष्णुस्वरूपम्

तस्याङ्कदेशकलितो हरिरेव पायात् नीलप्रकाशरुचिरश्रियमादधानः।
पीताम्बरः प्रथमयौवनगर्वधारी श्रीवत्सकौस्तुभधरो धृतवेदबाहुः ॥१६॥

भाष्य—उसके अङ्क में अर्थात् बीज वं के अङ्क में हरि अथवा विष्णु हैं। उनका शरीर नीलकान्ति के वर्ण का है। वे अत्यन्त शोभायमान, आकर्षक और अतुलनीय हैं। यौवन उद्दाम रूप में छलक रहा है और पीताम्बर अर्थात् पीले वस्त्र पहिने हुए हैं। चार भुजाएँ हैं तथा श्रीवत्स और कौस्तुभ धारण किये हैं।

व्याख्या—यहाँ पर यह उल्लेख किया गया है कि वरुण बीज के अङ्क में विष्णु हैं।

अङ्के—बीज के मस्तक पर मध्य में विन्दु है। यहाँ पर विष्णु उसी प्रकार स्थित हैं, जैसे धराबीज के विन्दु में ब्रह्मा की स्थिति है। अन्य पद्मों में भी यही आशय समझना चाहिए।

कलितः—स्थित।

नीलप्रकाशरुचिरश्रियमादधानः—उनकी शोभा नील ज्योति के समान आकर्षक दिखलाई पड़ रही है। यह भी कहना उपयुक्त होगा कि उनका शरीर नील तेजपुञ्ज है।

श्रीवत्सकौस्तुभधरः—गौतमीय तंत्र में उनका ध्यान इस प्रकार बतलाया गया है—

'कौस्तुभं हृदये रत्नं सूर्यायुतसमप्रभम्।
तदधो वनमालाञ्च चन्द्रायुतसमप्रभम्।
कौस्तुभोर्ध्वे च श्रीवत्सं चन्द्रायुतसमप्रभम् ॥'

उनके हृदय पर कौस्तुभमणि है, जिसकी प्रभा सूर्य के समान प्रखर है। इसकी तुलना एक साथ प्रकाशित होने वाले सहस्रों सूर्यों की प्रभा से नहीं की जा सकती है। नीचे वनमाला है जो हजारों चन्द्रों की कलाओं से भी अधिक प्रकाशमान है। कौस्तुभ के ऊपर श्रीवत्स है, जो अत्यन्त दीप्तिमान है। यह भी हजारों चन्द्रमाओं की कलाओं से भी अधिक प्रभावान् है।'

श्रीवत्स को श्री या लक्ष्मी का प्रिय माना जाता है। यह विष्णु और उनके अवतार कृष्ण के वक्ष पर घुंघराले बाल हैं। कहा गया है कि ये घुंघराले

बाल प्रकृति के प्रतीक हैं। कौस्तुभमणि विष्णु के कण्ठ में है। यह मणि आत्माओं का प्रतीक है। कहते हैं कि ये भगवान् की कौस्तुभ के साथ संयुक्त हैं। यह कथन विष्णुतिलक (११।१००) का है।

वनमाला—ऐसी माला को कहते हैं जो घुटने तक आती है। इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

'आजानुकुलम्बिनी माला सर्वर्तु कुसमोज्ज्वला।
मध्ये स्थूला कदम्बाढ्या वनमालेति कीर्तिता॥'

वनमाला उसे कहते हैं जो घुटनों तक रहती है। इसमें सभी ऋतुओं के पुष्प तथा कदम्व के बड़े फूल मध्य में रहते हैं। यह दिव्यमाला कहलाती है क्योंकि सभी ऋतुओं के पुष्पों का इसमें समावेश रहता है।

हरि के हाथ में अस्त्र भी हैं। तन्त्रान्तर में उल्लेख है—

'पाशहस्तं तदङ्के च हरिं श्यामं चतुर्भुजम्।
शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं पीतवाससम्॥'

'उनका ध्यान करो जिसके हाथ में पाश (वरुण) है तथा हरि उसके अङ्क में हैं। उनकी चार भुजाएँ है, जिनमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म है। श्यामवर्ण है तथा पीत वस्त्र धारण किये हुए हैं।'

अन्यत्र भी कहा गया है—'पीताम्बरं शान्तमूर्ति वनमाला विभूषितम्'। अर्थात् 'हरि पीतवस्त्रों में है, पूर्णतया शान्तमुद्रा में है तथा वनमाला से सुशोभित हैं।'

पहले यह उल्लेख किया गया कि मूलाधार में ब्रह्मा का वाहन हंस है। अतः यहाँ पर यह जानना चाहिए कि विष्णु गरुड़ पर आसीन हैं।

स्वाधिष्ठानचक्रस्थ-राकिणीशक्तिस्वरूपम्

अत्रैव भाति सततं खलु राकिणी सा नीलाम्बुजोदरसहोदरकान्तिशोभा।
नानायुधोद्यतकरैर्लसिताङ्गलक्ष्मीर्दिव्याम्बराभरणभूषितमत्तचित्ता॥ १७॥

भाष्य—यहीं पर राकिणी सदैव निवास करती हैं। वे श्याम कमल के सदृश श्यामवर्णा हैं। उनके हाथों के ऊपर की ओर उठे होने से जिनमें विविध आयुध हैं, उनका सौन्दर्य और भी निखर उठा है। वे हाथों में शूल, डमरु और टंक लिये हुए हैं। उनके अङ्गों पर दिव्य परिधान हैं और आभूषण हैं। सुधा-पान के फलस्वरूप उनका चित्त आह्लादपूर्ण है।

व्याख्या—इस श्लोक में कहा गया है कि स्वाधिष्ठान में राकिणी है। एक स्थान पर राकिणी का ध्यान इस प्रकार बतलाया गया है—

'श्यामां शूलाब्जहस्तां डमरुकरयुतां तीक्ष्णटङ्कं वहन्ती-
मुग्रां रक्तत्रिनेत्रां कुटिलसविसदृ दन्तदंष्ट्रा प्रभाभिः।

दीप्तां तां देवदेवीं द्वितयकमलगां रक्तधारैकनासां
शुक्लान्ने सक्तचित्तामभिमतफलदां राकिणीं चिन्तयेत्ताम् ॥'

'राकिणी का ध्यान करो। वे श्यामवर्णा हैं। उनके हाथों में शूल, कमल, डमरु और टंक है। उनका स्वभाव अत्यन्त उग्र है। वे तीन नेत्रों वाली हैं जो रक्ताभ वर्ण के हैं। उनके दाँत भी बड़े भयानक और तीखे हैं। अथवा बाहर की ओर निकले हुए हैं। वे देवों की देवी हैं और द्वि-कमल पर उनका आसन है। उनकी नासिका के एक रन्ध्र से रक्त का स्राव हो रहा है। उन्हें श्वेत अन्न अर्थात् दही और चावल प्रिय है तथा मनोवांछित वर प्रदान करती हैं।'

भाति—इसका अर्थ है कि दीप्तिमान है, किन्तु यहाँ पर इसका प्रयोग स्वाधिष्ठान रूप में किया गया है।

नीलाम्बुजोदरसहोदरकान्तिशोभा—उनका दीप्तिमान सौन्दर्य नीले कमल के आन्तरिक भाग के सौन्दर्य के समान है।

मत्तचित्ता—सहस्रार से जो अमृत का स्राव होता है, उसका पान करने के कारण उनका चित्त मत्त है। मधु के मद से ओतप्रोत हैं अर्थात् उनमें दिव्यशक्ति भरी हुई है।

दंष्ट्रा—तीखे और लम्बे दाँत।

रक्तधारैकनासाम्—रक्तधातु की स्वामिनी हैं। राकिणी का स्थान इस पद्म के अन्दर एक दूसरे पद्म में है। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि छहों शक्तियाँ उसी प्रकार से अन्दर के कमलों पर स्थित हैं, जैसे मूलाधार में लाल कमल पर है। प्रत्येक मुख्य पद्म के अन्दर एक छोटा कमल है, जिस पर शक्ति का आसन रहता है।

राकिणी का ध्यान एक अन्य स्थान पर इस प्रकार भी बतलाया गया है—

'हृत्पद्मे भानुपत्रे द्विवदनलसितां दंष्ट्रिणीं श्यामवर्णा-
मक्षं शूलं कपालं डमरुमपि भुजैर्धारयन्तीं त्रिनेत्राम्।
रक्तस्थां कालरात्रिप्रभृति परिवृतां स्निग्धभक्तैकसक्तां
श्रीमद्वीरेन्द्रवन्द्यामभिगतफलदां राकिणीं भावयामः ॥'

स्वाधिष्ठानचक्रचिन्तनफलम्

स्वाधिष्ठानाख्यमेतत् सरसिजममलं चिन्तयेद् यो मनुष्य-
स्तस्याहङ्कारदोषादिकसकलरिपुः क्षीयते तत्क्षणेन।
योगीशः सोऽपि मोहाद्भुततिमिरचये भानुतुल्यप्रकाशो
गद्यैः पद्यैः प्रबन्धैर्विरचयति सुधावाक्यसन्दोहलक्ष्मी ॥ १८ ॥

भाष्य—जो साधक इस स्वाधिष्ठान पद्म का ध्यान करता है उसके अहकार, काम, क्रोध, लोभ, मोह और मात्सर्य रूपी शत्रुओं का नाश हो जाता है। वह योगियों का सिरमौर हो जाता है। उसका प्रकाश सूर्य के समान चारों ओर फैल जाता है। उसके अमृतमय शब्द गद्य और पद्य की रचना करने में समर्थ होते हैं।

व्याख्या—इस श्लोक में स्वाधिष्ठान पद्म पर ध्यान करने का फल बतलाया गया है।

स्वाधिष्ठान—रुद्रयामल में उल्लेख है कि स्व का तात्पर्य पर-लिङ्ग से है। अतः यह पद्म स्वाधिष्ठान कहलाता है।

अहङ्कारदोषादि—इनकी संख्या छः हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य।

मोहाद्भुततिमिरचये—मोहान्धकार समूह का नाश कठिन माना जाता है, किन्तु वह भी क्षीण हो जाता है। माया और मोह रूपी अन्धकार को ज्ञान रूपी सूर्य तत्काल नष्ट कर देता है।

महावाक्यार्थनिर्णयः

स्वाधिष्ठान चक्र का वर्ण सिन्दूरी है। इसके छः दल विद्युन्माला की छटा के समान हैं। इन पर विन्दु सहित छः वर्ण हैं—ब भ म य र ल। इसकी कर्णिकाओं के मध्य में अर्धचन्द्र युक्त अष्टदल कमल है। यही जल-मण्डल है। इसका वर्ण शुक्ल है। इसके मध्य वरुण वीज वं है जो मकर पर आरूढ़ है तथा उसके हाथ में पाश है। उसके अङ्क में गरुड़ पर विष्णु हैं। उनकी चार भुजाएँ हैं। इनमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म हैं। पीत वस्त्र है तथा गले में वनमाला है और वक्षःस्थल पर श्रीवत्स और कौस्तुभमणि है। देखने में नवयौवन-सम्पन्न हैं। पद्म की कर्णिकाओं में लाल कमल के ऊपर राकिणी शक्ति हैं, जो श्यामवर्णा हैं। वे भी चतुर्भुजा हैं और उनमें शूल, कमल, डमरु तथा टंक लिये हुए हैं। वे त्रिनेत्रा और तीखे लम्बे दाँतों वाली हैं तथा देखने में अति भयंकर हैं। उनकी नासिका के एक रन्ध्र से रक्त की धारा वह रही है। श्वेत चावल उन्हें प्रिय है ॥ १८ ॥

श्रीपूर्णानन्दयति विरचित श्रीतत्त्वचिन्तामणि में
षट्चक्रनिरूपण के छठे अध्याय का
द्वितीय प्रकरण समाप्त।

तृतीयप्रकरणम्

मणिपूरचक्रस्वरूपम्

तस्योर्ध्वे नाभिमूले दशदललसिते पूर्णमेघप्रकाशे
नीलाम्भोजप्रकाशैरुपहितजठरे डादिफान्तैः सचन्द्रैः ।
ध्यायेद् वैश्वानरस्यारुणमिहिरसमं मण्डलं तत् त्रिकोणं
तद्बाह्ये स्वस्तिकाख्यैस्त्रिभिरभिलसितं तत्र वह्नेः स्वबीजम् ॥ १९ ॥

भाष्य—इसके अर्थात् पद्म के ऊपर नाभि के मूल में दश कमल प्रकाशमान हैं। इसका प्रकाश जल से भरे भारी मेघों के समान है। यहाँ पर अग्निदेश का ध्यान करना चाहिए। यह अग्निमण्डल आकाश में त्रिकोणात्मक है तथा इसका प्रकाश नवोदित सूर्य के प्रकाश-सदृश है। इसकी तुलना अरुण सूर्य से की जाती है। यह कैसा है ? इसके बाह्य भाग में तीन स्वस्तिक चिह्न हैं, जो अतीव शोभित हैं। यहाँ पर अग्निमण्डल में वह्निबीज स्वयं है। यह रं है। यह कमल कैसा है ? नीलकमल के सदृश प्रकाशमान है। यहाँ पर डकार से लेकर फकार-पर्यन्त वर्ण चन्द्रबिन्दु से युक्त हैं तथा अग्नि के होने के कारण इनका रूप और अधिक शोभायमान हो गया है।

व्याख्या—प्रस्तुत श्लोक में तथा अगले दो श्लोकों में मणिपूरचक्र का वर्णन किया गया है।

तस्य—स्वाधिष्ठान।

दशदललसिते—अपने दस दलों के कारण यह कमल प्रकाशित है। यह कमल कैसा है ?

पूर्णमेघप्रकाशे—कृष्ण वर्ण का है।

डादिफान्तैः—ड ढ ण त थ द ध न प फ।

सचन्द्रैः—यह वर्णों का विशेषण इसका तात्पर्य है कि वर्णों के ऊपर बिन्दु और नाद है। बिन्दु और नाद एक साथ रहते हैं। ये वर्ण इन दोनों से युक्त हैं।

वैश्वानर—अग्नि या वह्नि।

अरुणमिहिरसमम्—बाल सूर्य या नवोदित सूर्य के सदृश।

स्वस्तिकाख्यैरिति—राघवभट्ट का कथन है—स्वस्तिक चिह्न दो सीधी रेखाओं के एक-दूसरे के काटने से बनता है जो चार विभिन्न दिशाओं में

जाती हैं। इस प्रकार जो तीन चिह्न बनते हैं, वे त्रिकोण के तीन ओर हैं। यहाँ पर वह्निमण्डल में वह्नि बीज रं (रम्) है।

मणिपूरचक्रस्थ-वह्निबीजवर्तिरुद्रस्वरूपम्

ध्यायेन्मेषाधिरूढं नवतपननिभं वेदबाहूज्ज्वलाङ्गं
तत्क्रोडे रुद्रमूर्तिर्निवसति सततं शुद्धसिन्दूररागः।
भस्मालिप्ताङ्गभूषाभरणसितवपुर्वृद्धरूपी त्रिनेत्रो
लोकानामिष्टदाताऽभयलसितकरः सृष्टिसंहारकारी ॥ २० ॥

भाष्य—वह्निबीज रं का ध्यान करे। यह किस प्रकार का है ? यह मेष पर अधिरूढ़ है। प्रातःकालीन सूर्य के समान इसकी आभा है। इसकी चार भुजाएँ हैं तथा अत्यन्त उज्ज्वल अङ्ग हैं। इस बीज के अङ्क में सदैव रुद्र विराजमान रहते हैं। वे कैसे है ? उनका वर्ण शुद्ध सिन्दूर के समान लाल (रक्ताभ) है। रुद्र पूर्णतया धवल अर्थात् शुभ्र दिखलाई पड़ते हैं, क्योंकि उनके अङ्गों पर भस्म का लेप है। स्वरूप सर्वथा पुरातन है तथा उनके तीन नेत्र हैं। त्रिलोक्यवासियों को मनोवांछित वर प्रदान करने वाले तथा अभय मुद्रा में हैं। सृष्टि का संहार वे ही करते हैं।

व्याख्या—**भस्मालिप्ताङ्गभूषाभरणसितवपुः**—उनके अङ्गों पर जिस भस्म का लेप है अथवा जिस भस्म से उनके अङ्ग लिप्त हैं तथा जो आभूषण उनके शरीर पर शोभा पा रहे हैं, उनके कारण वे रक्ताभ वर्ण के होते हुए भी श्वेत या धवल वर्ण के दिखलाई पड़ते हैं।

रुद्र का एक ध्यान इस प्रकार भी बतलाया गया है—'मेषस्थं साक्षसूत्रं शक्तिहस्तं स्मरेत् ततः'। अर्थात् 'मेष पर आसीन हैं। उनके एक हाथ में रुद्राक्ष की माला तथा दूसरे हाथ में शक्ति है।'

वह्नि ही शक्ति रूपा है। महाराष्ट्र में भास्करराय के अनुसार इसे सामटी कहते हैं।

लोकानामिष्टदाता—वर प्रदान करने वाला।

अभयलसितकरः—जिससे भय दूर हो जाय अर्थात् अभय मुद्रा।

रुद्र के अन्य दो हाथों में कोई आयुध नहीं है, अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि ये दोनों हाथ वर और अभय मुद्रा में हैं। इसी लिए एक अन्य ध्यान पर कहा गया है—'वृषोपरि रुद्रो ध्येयः।' अर्थात् रुद्र का ध्यान बैल पर बैठे हुए रूप में करना चाहिए।

मणिपूरचक्रस्थ-लाकिनीशक्तिस्वरूपम्

अत्रास्ते लाकिनी सा सकलशुभकरी वेदबाहूज्ज्वलाङ्गी
श्यामा पीताम्बराद्यैर्विविधविरचनालङ्कृता मत्तचित्ता।
ध्यात्वैतन्नाभिपद्मं प्रभवति नितरां संहृतौ पालने वा
वाणी तस्याननाब्जे निवसति सततं ज्ञानसन्दोहलक्ष्मीः ॥ २१ ॥

भाष्य—'इस पद्म में प्रसिद्ध लाकिनी हैं। वे कैसी हैं? सभी का कल्याण एवं शुभ करने वाली हैं। उनकी चार भुजाएँ हैं। शरीर के सम्पूर्ण अङ्ग उज्ज्वल और कान्तिमान हैं। उनके परिधान पीत वर्ण के हैं तथा विविध रत्न-जटित आभूषणों से सुसज्जित एवं अलंकृत हैं। उनका श्यामवर्ण है तथा वे मत्त-चित्त हैं। सुधापान से आह्लादित हो रही हैं। इस मणिपूरपद्म का ध्यान करने से ब्रह्माण्ड का संहार तथा सृष्टि करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। उनके मुखकमल पर सदैव वाणी का प्रकाश रहता है। यह कैसी है? ज्ञान-सूमह ही है। कहने का तात्पर्य यह है कि साधक ब्रह्मा, विष्णु और शिव तुल्य हो जाता है।

व्याख्या—**अत्रास्ते**—यहाँ पर।

विविधविरचनालङ्कृता—मुक्ता आदि विविध मणियों के योग से चित्र-विचित्र आभूषणों से अलंकृत।

यहाँ पर लाकिनी के विशेष ध्यान की भी चर्चा आती है—

'नीलां देवीं त्रिवक्त्रां त्रिनयनलसितां दंष्ट्रिणीमुग्ररूपां
वज्रं शक्तिं दधानामभयवरकरां दक्षवामे क्रमेण।
ध्यात्वा नाभिस्थपद्मे दशदलविलसत्कर्णिके लाकिनीं तां
मांसस्थां गौडभक्तोत्सुकहृदयवतीं चिन्तयेत् साधकेन्द्रः' ॥

साधक उन लाकिनीदेवी का ध्यान करे जो नीलवर्णा हैं तथा तीन मुख वाली हैं। उनके प्रत्येक मुख पर एक नेत्र है। इस प्रकार तीन नेत्रों वाली हैं। देखने में उनका स्वरूप अति भयंकर है तथा दाँत बाहर को निकले हुए हैं। उनके दाहिने हाथ में वज्र और शक्ति है। शक्ति वह्नि का आयुध है। अन्य दो हाथ वर और अभय मुद्रा में हैं। नाभिकमल के बीजकोष में उनका आसन है। इस कमल में दश दल हैं। मांस का भोजन उन्हें प्रिय है; अथवा यह भी माना जाता है मांसधातु में उनका निवास है। उनके स्तन रक्त और मांस के कारण जो उनके मुख से गिर रहा है, रक्ताभ हैं।'

लाकिनी का एक ध्यान मायातन्त्र में भी मिलता है, जिसका विश्वनाथ ने 'षट्चक्रविवृतिः' में उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—

'कृष्णां देवीं त्रिवक्त्रां त्रिनयनसहितां कुब्जिनीमुग्ररूपाम् ।
वज्रं शक्तिं सदण्डामभयवरकरां दक्षवामे दधानाम् ॥'

यहाँ पर लाकिनी को कुब्जा बतलाया गया है और उनके हाथ में दण्ड आयुध रूप में है ।

नाभिकमल को मणिपूर कहा जाता है। गौतमीयतंत्र जो एक वैष्णव तंत्र है, में उल्लेख है कि इस कमल को मणिपूर इसलिए कहते हैं, क्योंकि इसकी दीप्ति मणि के सदृश है।'

महावाक्यार्थं निर्णयः

नाभिकमल का मेघवर्ण है और उसमें दश दल हैं। उसके दल नीलाभ हैं और उन पर बिन्दु और नादसहित ड ढ ण त थ द ध न प फ—ये दश वर्ण हैं। इस कमल की कर्णिकाओं (त्रिकोणाकार त्रिकोण) में वह्निमण्डल है। इसके बाह्य में तीनों ओर स्वस्तिक चिह्न हैं। त्रिकोण अग्नि या बह्नि बीज रं है, जो रक्तवर्णात्मक, मेष पर आरूढ़ तथा चार भुजाओं वाला है। इसकी भुजाओं में वज्र और शक्ति है तथा दो हाथ वर और अभयमुद्रा में हैं। बीज के अङ्क में वृष पर आरूढ़ रुद्र हैं। इनका वर्ण भी रक्ताभ है तथा दो हाथ अभय और वर मुद्रा हैं। शरीर पर भस्म का लेपन है जो श्वेत है तथा शुक्ल वर्ण के आभूषण पहने हुए हैं। भस्म और आभूषणों के कारण इनकी देह का वर्ण शुक्ल प्रतीत होता है तथा इनका स्वरूप पुरातन है। कमल की कर्णिकाओं में लाल या रक्त पद्म पर नीलवर्णा, त्रिमुखी, चतुर्भुजी लाकिनी हैं। ये त्रिनेत्रा हैं, दांत बाहर की ओर निकले हुए हैं तथा हाथों में वज्र और शक्ति है, जो इनके आयुध हैं। दो हाथ वर और अभय मुद्रा में हैं। दही और चावल का भोजन जिसमें रक्त और मांस भी हो, इन्हें विशेष रूप से प्रिय है।

श्रीपूर्णानन्दयति विरचित श्रीतत्त्वचिन्तामणि में
षट्चक्रनिरूपण के छठे अध्याय का
तृतीय प्रकरण समाप्त ।

चतुर्थप्रकरणम्

अनाहतपद्मस्वरूपम्

तस्योर्ध्वे हृदि पङ्कजं सुललितं बन्धूककान्त्युज्ज्वलं
काद्यैर्द्वादश वर्णकैरुपहितं सिन्दूररागान्वितैः ।
नाम्नाऽनाहतसंज्ञकं सुरतरुं वाञ्छातिरिक्तप्रदं
वायोर्मण्डलमत्र धूमसदृशं षट्कोणशोभान्वितम् ॥ २२ ॥

भाष्य—इसके ऊर्ध्व में अर्थात् इस पद्म के ऊपर हृदि-देश में सुललित मनोरम अनाहत नाम का पद्म है। कैसा है ? बन्धूक पुष्प के समान कान्तिमान एवं उज्ज्वल है। इसका रंग सिन्दूरी है। यहाँ पर ककार से आरम्भिक बारह अक्षर हैं। अन्त में टकार है। दल के मध्य ये अति शोभायमान हैं। यह कमल कल्पवृक्ष के सदृश है, अतः समस्त मनोवांछित कामनाओं की पूर्ति करता है। इसके अतिरिक्त मोक्ष भी प्रदान करता है। यहीं पर वायुमण्डल है। यह कैसा है ? धूम्र के समान है तथा षट्कोणीय है। इसका वर्ण भी धूम्र सदृश है।

व्याख्या—हृदि कमल (अनाहत) का यहाँ छः श्लोकों में निरूपण किया जा रहा है। प्रस्तुत श्लोक प्रथम है।

हृदि पङ्कजम्—हृदय में इस कमल का ध्यान करे।

सुललितम्—सुस्निग्ध।

काद्यैरिति—इससे बारह वर्णों का बोध होता है—क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ।

इन वर्णों के सन्दर्भ में दक्षिणामूर्ति का कथन है—

'पिङ्गवर्णे महावह्निकलिकाभानि संस्मरेत् ।
कादिठान्तानि वर्णानि चतुर्थेऽनाहते प्रिये ॥'

नाम्नाऽनाहतसंज्ञकम्—मुनियों ने इसे अनाहत कहा है, क्योंकि यहीं पर शब्दब्रह्म सुनाई पड़ता है—

'शब्दब्रह्ममयः शब्दोऽनाहतस्तत्र दृश्यते ।
अनाहताख्यं पद्मं तन्मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥'

सुरतरुम्—कल्पतरु। कल्पतरु इन्द्र के उद्यान में दिव्य तरु है। शंकर का कथन है कि कल्पतरु मनोवांछित वस्तुएँ ही नहीं प्रदान करता, अपितु उससे भी अधिक देता है और साधक को मोक्ष की ओर ले जाता है।

वायोर्मण्डलम्—इस पद्म की कर्णिकाओं के मध्य में वायुमण्डल है।

षट्कोणशोभान्वितम्—वायुमण्डल षट्कोणीय है और अति सुन्दर है। मायातन्त्र में उल्लेख है—

'अनाहतं द्वादशारं रक्ताभं हृदि सुव्रते।
तन्मध्ये पावनं पद्मं षट्कोणं धूम्रवर्णकम् ॥'

अनाहत के सम्बन्ध में यह कहना आवश्यक है कि जो शब्दब्रह्म या नाद सुनाई पड़ता है, वह किन्हीं दो वस्तुओं के आपसी आघात का परिणाम नहीं है, अपितु स्वभाविक है। नाद का कोई कारण नहीं, अपितु अहैतुक है।

वायुमण्डलमध्यस्थ-वायुबीजस्वरूपम्

तन्मध्ये पवनाक्षरं च मधुरं धूमावलीधूसरं
ध्यायेत् पाणिचतुष्टयेन लसितं कृष्णाधिरूढं परम्।
तन्मध्ये करुणानिधानममलं हंसाभमीशाभिधं
पाणिभ्यामभयं वरं च विदधल्लोकत्रयाणामपि ॥ २३ ॥

भाष्य—इसके मध्य अर्थात् वायुमण्डल के मध्य में जो पवनाक्षर या वायुवीज है, उसका ध्यान करे। अक्षर होने के कारण इसे बीज कहा गया है। जिस मण्डल में जो अक्षर, वह उसका बीज कहा जाता है। यह कैसा है? मधुर और अति उत्कृष्ट है। इसका आकार और वर्ण घनीभूत धूम्र के सदृश है। ऐसा क्यों है? यहाँ पर जीवात्मा दीपकलिका रूप में स्थित है और इसी दीप से धूम्र निकल रहा है। वायुबीज की चार भुजाएँ हैं और यह कृष्णसार मृग पर आसीन है। यहीं वायुमण्डल के मध्य विराट् ईश्वर हैं, जिनका ध्यान किया जाय। ये हंस—सूर्य के समान तेजोमय, निष्कलंक और निर्मल तथा करुणानिधान हैं। इन्हें करुणावारिधि भी बतलाया गया है। इनके दो हाथ वर और अभय मुद्रा में हैं। ये वरदान प्रदाता और तीनों लोक के भय का विमोचन करने वाले है।

व्याख्या—प्रस्तुत श्लोक में ग्रन्थकार का कथन है कि वायुमण्डल अथवा अनाहत के मध्य वायु-बीज है।

पवनाक्षरम्—पवन बीज यं।

मधुरम्—मनोहर।

धूमावलीधूसरम्—इसका घनीभूत धूम के कारण धूम्रवर्ण है।

शंकर की मान्यता है कि धूम्र की जीवात्मा से उत्पत्ति है, जो यहाँ दीप कलिका रूप में है।

कृष्णाधिरूढम्—कृष्णसार मृग पर आरूढ़। इस मृग की यह विशेषता है कि यह अत्यन्त द्रुत गति से दौड़ता है। इसका वर्ण काला होता है। यह वायु

का वाहन है। वायु अपना आयुध अंकुश लेकर ठीक वैसे ही चलता है, जैसे वरुण पाश लेकर चलता है।

वायुबीज के मध्य शिव की स्थिति भी बतलायी गई है। सर्वत्र शिव के तीन नेत्र बतलाये गये हैं, अतः ईश के तीन नेत्र हैं।

एक अन्य स्थान पर शिव के ध्यान का उल्लेख इस प्रकार मिलता है—'ग्रैवेयाङ्गहारनूपुरयुतं क्षौमाम्वरं चिन्तयेत्।' अर्थात् 'रत्न-जटित माला उनके कण्ठ में है तथा पैरों की अँगुलियों में किंकिणी या नूपुर हैं और शरीर पर रेशमी परिधान हैं। शिव का वर्णन एक अन्य स्थान पर इस प्रकार भी किया गया है—'कान्तं कान्तशशाङ्ककोटिकिरणं प्रोद्यत्कपर्दोज्ज्वलम्'। अर्थात् 'उनकी कान्ति करोड़ों चन्द्रमाओं की कलाओं के समान दीप्तिमान और शीतल है। उनके जटाजूट की कान्ति भी इसी प्रकार की है।'

पद्मकर्णिकास्थ-काकिनीशक्तिस्वरूपम्

अत्रास्ते खलु काकिनी नवतडित्पीता त्रिनेत्रा शुभा
सर्वालङ्करणान्विता हितकरी सम्यग्जनानां मुदा।
हस्तैः पाशकपालशोभनवरान् संबिभ्रती चाभयं
मत्ता पूर्णसुधारसार्द्रहृदया कङ्कालमालाधरा ॥ २४ ॥

भाष्य—यहाँ पर अर्थात् इस पद्म में काकिनी का निवास है। नूतन विद्युत् के समान उनका पीत वर्ण है। उनके तीन नेत्र हैं। वे अत्यन्त शुभ और कल्याणकारी हैं। सर्व आभूषणों से अलंकृत हैं। सदैव प्रसन्न हर्षाभिभूत रहने से सभी प्रकार से जनकल्याणकारी और हितकारी कार्य करती रहती हैं। उनकी चार भुजाएँ हैं। दो में पाश और खप्पर हैं तथा अन्य दो वर और अभयमुद्रा में हैं। सुधारस के पान से उन्मत्त हैं तथा रसार्द्र हैं। कङ्काल या अस्थियों की माला पहिने हुए हैं।'

व्याख्या—इस श्लोक में ग्रन्थकार ने काकिनीशक्ति का निवास बतलाया है।

मत्ता—अस्वाभाविक स्थिति—स्खलित भाव।

पूर्णसुधारसार्द्रहृदया—सुधा रस के पान से उनका हृदय द्रवित है तथा वे सर्वजन को तृप्ति प्रदान करती हैं। अथवा इसका एक भाव यह भी है कि अमृत सुधा जिसका स्राव सहस्रार से हो रहा है, उसका पान करने के फलस्वरूप उनका हृदय परमानन्द के अतिरेक से आर्द्र और कोमल हो गया है। यह भी कह सकते हैं कि परमानन्द से हृदय उत्फुल्ल और शिथिल है।

काकिनी का एक ध्यान इस प्रकार बतलाया गया है—

'कृष्णाम्बरपरीधानां　　नानाभरणभूषिताम् ।
ध्यायेच्छशिमुखीं नित्या काकिनीं मन्त्रसिद्धये ॥'

वे मृगसार का चर्म पहने हुए तथा नाना आभूषणों से सुसज्जित हैं। मंत्र की सिद्धि के लिए नित्य काकिनी का ध्यान करे।

तंत्र में उल्लेख है—

'.... ... .काकिनीं मेदसंस्थाम् ।
पाशं शूलं कपालं डमरुमपि करैर्धारिणीं पीतवर्णाम् ।
दध्यन्ने सक्तचित्तां स्ववयवनमितां वारुणीमत्तचित्ताम् ॥'

विश्वनाथ ने 'षट्चक्रविवृति' में उपरोक्त श्लोक को उद्धृत किया है। इसका आशय है कि 'काकिनी का निवास मेद में है। उनके हाथ में पाश, त्रिशूल, कपाल, और डमरु है। वे पीतवर्णा हैं। तन्दुल और दधि उन्हें अत्यन्त प्रिय है। उनका सौन्दर्यशाली कमनीय तन कुछ हलका-सा झुका हुआ है— 'स्ववयवनमिताम्'। उनका हृदय चावल की सुधा से आनन्दित एवं उत्फुल्ल हो रहा है।'

सौभाग्यरत्नाकर में सात शक्तियों या योगिनियों के सात ध्यान बतलाये गये हैं। इन सातों शक्तियों काकिनी आदि का निवास सात धातुओं में बतलाया गया है। सातवीं शक्ति यक्षिणी की इसमें चर्चा नहीं आती है।

एक अन्य स्थान पर काकिनी का उल्लेख इस रूप में मिलता है—

'वरशूलाभयं पाशं बिभ्रती कामरूपिणी ।
इयन्तु काकिनी शक्तिर्भवबन्धविनाशिनी ॥'

'ये काकिनी शक्ति वरदान एवं अभयदान की मुद्रा वाले दो बाहु तथा शेष दो बाहुओं में शूल और पाश धारण किये रहती हैं और यह कामरूपिणी हैं। यह काकिनी शक्ति भव-बन्धनों अर्थात् सांसारिक कष्टों को नष्ट करती हैं।'

काकिनी का एक ध्यान निम्न प्रकार से भी है—

'स्वाधिष्ठानाख्यपद्मे रसदललसिते वेदवक्त्रां त्रिनेत्रां
हस्ताभ्यां धारयन्तीं त्रिशिखगुणकपालाभयान्यात्तगर्वाम् ।
मेदोधातुप्रतिष्ठामलिमदमुदितां बन्धिनीं मुख्ययुक्तां
पीतां दध्योदनेष्टामभिमतफलदां काकिनीं भावयामः ॥'

पद्मकर्णिकास्थ-त्रिकोणस्वरूपम्

एतन्नीरजकर्णिकान्तरलसच्छक्तिस्त्रिकोणाभिधा
विद्युत्कोटिसमानकोमलवपुः सास्ते तदन्तर्गतः ।

बाणाख्यः शिवलिङ्गकोऽपि कनकाकाराङ्गरागोज्वलो
मौलौ सूक्ष्मविभेदयुङ् मणिरिव प्रोल्लासलक्ष्म्यालयः ॥ २५ ॥

भाष्य—इस कमल की कर्णिकाओं के आन्तर् में जो त्रिकोण है, उसमें शक्ति स्थित है। शक्ति का शरीर अत्यन्त मृदु है और उसका प्रकाश करोड़ों विद्युन्मालाओं के एक साथ प्रकाशित होने वाले प्रकाश के समान है। यह शक्ति त्रिकोणात्मक है। त्रिकोण के अन्दर शिवलिङ्ग है, जिसे बाणलिङ्ग कहते हैं। यह लिङ्ग स्वर्ण (सोना) के समान दीप्तिमान है तथा इसके शिर पर एक सूक्ष्म छिद्र है, जैसा कि मणि में होता है। यह लक्ष्मी का निवास स्थान है।

व्याख्या—इस श्लोक में त्रिकोण का वर्णन किया गया है, जो इस कमल की कर्णिकाओं में है।

त्रिकोणाभिदा—त्रिकोण के आकार में।

शक्ति—इसका अर्थ यह हुआ कि अधोमुख है। यह त्रिकोण-शक्ति है, अतः यह निश्चय अधोमुखी है, जैसे—योनि।

यह त्रिकोण, जैसा कि अन्यत्र कहा गया है, वायुवीज के नीचे है। उसके अङ्क में ईश है। इसके नीचे त्रिकोण के आन्तर् में वाणलिङ्ग है।

मौलौ सूक्ष्मविभेदयुङ् मणिः—यह वाणलिङ्ग का वर्णन है। शिवलिङ्ग के मस्तक पर अर्धचन्द्रविन्दु है। इस विन्दु के मध्य में अति सूक्ष्म छिद्र है। इस सम्वन्ध में उल्लेख है—

'त्रिकोणान्तर्बाणलिङ्गं कनकाभरणैर्युतम्।
चन्द्रार्द्धमस्तकं देवं मध्ये रक्ताम्बुजं परम् ॥'

त्रिकोण के अन्दर बाणलिङ्ग स्वर्ण में जटित मणियों से मण्डित है, देव के मस्तक पर अर्धचन्द्र है और मध्य में उत्कृष्ट लाल रंग का कमल है।'

यहाँ पर जो लाल रंग का कमल वतलाया गया है, वह हृदयकमल की कर्णिकाओं के नीचे वाला है। इसका शिर ऊर्ध्वमुखी है तथा इसमें आठ दल हैं। इसमें मानस पूजा करनी चाहिए। इस विषय में यह कथन उल्लेखनीय है—

'तन्मध्येऽष्टदलं रक्तं तत्र कल्पतरुं तथा।
इष्टदेवासनं चारुचन्द्रातपविराजितम् ॥'

इसके मध्य में अष्टदल कमल है, जिसका वर्ण रक्ताभ है। यहाँ पर कल्पतरु है तथा इष्टदेव का आसन एक सुन्दर चँदोवे के नीचे है। इसे चन्द्रातप की संज्ञा दी जाती है। यह चारों ओर से पुष्पों तथा फलों के वृक्षों

से घिरा हुआ है। वृक्ष नाना प्रकार के फलों से बोझिल हो रहे हैं। छोटी-छोटी चिड़ियाँ की रुनझुन की ध्वनि भी सुनाई पड़ती है।' यहाँ पर साधक को अपने इष्टदेव का ध्यान अपने सम्प्रदाय में बतलाये गये ढंग से करना चाहिए।

हृदयकमल की कर्णिकाओं के नीचे जो कमल बतलाया गया है और मानस पूजा का उल्लेख किया गया है, उसके विषय में महानिर्वाणतंत्र में कहा गया है कि—'इसकी गणना चक्रों में नहीं होती है, वरन् इस कमल को आनन्दकन्द कहा जाता है, जहाँ साधक इष्टदेव का ध्यान करते हैं।'

प्रोल्लासलक्ष्म्यालयः—कामोद्गम के कारण लिंग में उल्लास है, अतः वह शोभायमान हो रहा है।

बाणलिंग के सम्बन्ध में एक कथन और भी है—

> 'तन्मध्ये बाणलिङ्गं तु सूर्यायुतसमप्रभम्।
> शब्दब्रह्ममयः शब्दो न हेतुस्तदहेतुकः॥
> अनाहताख्यं तत्पद्मं पुरुषाधिष्ठितं परम्॥'

हृत्पद्मचिन्तनफलम्

> **ध्यायेद् यो हृदि पङ्कजं सुरतरुं शर्वस्य पीठालयं**
> **देवस्याऽनिलहीनदीपकलिकाहंसेन संशोभितम्।**
> **भानोर्मण्डलमण्डितान्तरलसत् किञ्जल्कशोभाधरं**
> **वाचामीश्वर ईश्वरोऽपि जगतां रक्षाविनाशे क्षमः॥ २६॥**

भाष्य—जो साधक इस पद्म-हृदय कमल का ध्यान करता है, वह इसी के तुल्य हो जाता है, क्योंकि यह कल्पवृक्ष के समान है। उसे वाक् सिद्धि प्राप्त होती है तथा वह ईश्वर के तुल्य जगत् की रक्षा और विनाश में समर्थ हो जाता है। देवताओं के गुरु बृहस्पति के समान मान-सम्मान भी उसे प्राप्त होता है। यही कमल शर्व का स्थान है। हंस के कारण यह और भी सौन्दर्यशाली है। हंस या जीवात्मा यहाँ पर दीप की स्थिर शिखा के समान है। यहाँ वायु का भी प्रवेश नहीं है। भानुमण्डल से मण्डित अन्तःकर्णिकाएँ प्रकाशमान हैं।'

व्याख्या—प्रस्तुत श्लोक तथा अगले श्लोक में हृदयकमल पर ध्यान करने से जो विशिष्ट लाभ होता है, उसकी चर्चा की गई है।

ध्यायेदित्यादिद्वाभ्याम्—जो साधक हृदयकमल का ध्यान करते हैं, वे वाक्सिद्ध हो जाते हैं।

वाचामीश्वरः—वृहस्पति के समान हो जाते हैं। वे ईश्वरतुल्य सृष्टि, स्थिति और संहार में सक्षम माने जाते हैं। यहाँ पर कमल की कर्णिकाओं में हंसरूप जीवात्मा की स्थिति है।

अनिलहीनदीपकलिकाहंसेन संशोभितम्—वायु रहित दीपकलिका के समान जीवात्मा हंस रूप में यहाँ है। इससे यह कमल अत्यन्त सुशोभित एवं प्रकाशमान हो उठा है। मायातंत्र का कथन है—'आत्मतत्त्वप्रदीपाभः'।

यहीं पर पद्म की कर्णिकाओं में वायु से रहित स्थिरतर दीपशिखा सदृश हंस रूप में जीवात्मा है। इन्हीं कर्णिकाओं में सूर्यमण्डल भी बतलाया गया है—'भानोर्मण्डलमण्डितान्तरसत्किञ्जल्कशोभाधरम्।'

इन कर्णिकाओं में सूर्यमण्डल है। अन्तः तन्तु सूर्यमण्डल से मण्डित शोभायमान हैं और कर्णिकाओं को घेरे हुए हैं तथा उन्हें सूर्य की किरणें जाज्वल्यमान कर रही हैं। सूर्य की किरणें तन्तुओं के सौन्दर्य में वृद्धि कर रही हैं, कर्णिकाओं के मध्य स्थान की नहीं। अन्य पद्मों के तन्तु इतने जाज्वल्यमान नहीं हैं और यह इस पद्म की ही विशिष्टता है। भानोर्मण्डल से यह आशय समझना चाहिए कि कर्णिकाओं में जो तन्तु हैं, वे ही सूर्य की किरणों से जाज्वल्यमान हैं; उनका कुछ भाग ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण।

कर्णिओं के ऊपर व्यापक वायुमण्डल है तथा इसके ऊपर सूर्यमण्डल है। इनके ऊपर वायुवीज तथा त्रिकोण आदि हैं। इनका भी ध्यान करना आवश्यक है।

मानसार्चनायाम्—इस मानसिक अर्चना का मन्त्र है—'मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः।' इसका तात्पर्य है—'मं वह्निमण्डल (अग्निमण्डल) को उनकी दश कलाओं सहित नमन।' पूजा और उपर्युक्त मन्त्रों आदि से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह्निमण्डल अर्क (सूर्य) और चन्द्रमण्डल एक-दूसरे के ऊपर हैं।

ईश्वर—सृष्टिकर्ता।

रक्षाविनाशे क्षमः—वे ही स्थिति (पालन) और संहार (प्रलय) करते हैं।

भाव यह है कि वह ब्रह्माण्ड की सृष्टि, स्थिति और संहार करने में सक्षम हो जाता है।

योगीशो भवति प्रियात्प्रियतमः कान्ताकुलस्यानिशं
ज्ञानीशोऽपि कृती जितेन्द्रियगणो ध्यानावधानक्षमः।
गद्यैः पद्यपदादिभिश्च सततं काव्याम्बुधारावहो
लक्ष्मीरङ्गणदैवतः परपुरे शक्तः प्रवेष्टुं क्षणात् ॥ २७ ॥

भाष्य—इस पद्म का ध्यान करने वाला साधक योगीश हो जाता है। कान्ताकुल अर्थात् सर्व स्त्रियों का प्रिय से भी अधिक प्रियतम और स्वामी बन जाता है। वह ज्ञानी और सत्कृत्यों का कर्ता समझा जाता है। वह पूर्णतया जितेन्द्रिय होता है। सदैव ब्रह्म-चिन्तन में लवलीन रहता है। ध्यान, अवधान और क्षमा उसकी विशिष्टताएँ हो जाती हैं। गद्य, पद्य तथा श्लोकादि उसके मुख से धाराप्रवाह रूप में निकलते हैं। लक्ष्मी उसकी कुलदेवता बन जाती है, अथवा उसका परिवार सदैव समृद्धशाली और धनधान्य से पूर्ण रहता है। इतना ही नहीं, वरन् वह अपनी इच्छानुसार क्षण मात्र में परपुर (परकाय) में प्रवेश कर सकता है। यही योगी की परकाय-प्रवेश-सिद्धि मानी जाती है। कुमारीतंत्र में इस कमल पर ध्यान करने का फल परपुर में प्रवेश बतलाया गया है।

व्याख्या—**प्रियात् प्रियतमः कान्ताकुलस्य**—वह उनका प्रिय से भी प्रियतम बन जाता है, क्योंकि वह उन्हें प्रसन्न करने की कला में पारंगत है।

जितेन्द्रियगणः—जितेन्द्रियों के मध्य में उसकी गणना ऐसे पुरुषों में होती है, जिन्होंने अपनी इन्द्रियों और वासनाओं को अपना दास बना लिया है।

ध्यानावधानक्षमः—ध्यान का तात्पर्य ब्रह्मचिन्तन और अवधान का तात्पर्य है—मानस की दृढ़ता, स्थिरता और एकाग्रता। क्षमः का आशय है—समर्थ। इस प्रकार दोनों ही में अर्थात् ध्यान और अवधान में समर्थ होता है।

काव्याम्बुधारावहः—उसकी वाणी के प्रवाह की तुलना निरन्तर प्रवाहित सरिता की जलधारा से की गई है।

लक्ष्मीरङ्गणदैवतः—वह उस देव के समान बन जाता है, जो लक्ष्मी का प्रिय है अर्थात् विष्णु के समान। इस शब्द का एक अर्थ और भी निकलता है। वह इस प्रकार है—वह व्यक्ति जिसने समस्त सम्पत्ति और वैभव का इस जगत् में भोग कर लिया हो तथा जो मोक्ष या मुक्ति मार्ग की ओर अग्रसर हो गया है। इस सम्बन्ध में कथन है—'इह भुक्त्वा वरान् भोगानन्ते मुक्तिपदं व्रजेत्।' इस संसार में विशिष्ट ऐश्वर्य को भोग कर, अन्त में परमधाम को जाता है, अर्थात् मोक्ष प्राप्त करता है।

लक्ष्मी का अर्थ सम्पत्ति और रङ्गण का अर्थ आनन्द का अनुभव है, दैवम् का तात्पर्य अदृष्ट से है। इस प्रकार लक्ष्मी तीनों के देवों की वाचक है।

परपुरे शक्तः प्रवेष्टुं क्षणात्—वह शत्रु के दुर्ग में क्षणमात्र में प्रवेश कर सकता है, चाहे उसकी सुरक्षा-पंक्ति कितनी भी दुर्गम हो। उसे वह शक्ति भी प्राप्त हो जाती है कि वह क्षणमात्र में अदृश्य हो जाता है तथा आकाश में भी गमन कर जाता है। इसी प्रकार की अन्य सिद्धियाँ भी उसमें आ जाती हैं।

इसका तात्पर्य परकाया प्रवेश से भी है। कहते हैं कि योगी ऐसी सिद्धियों से दूसरे की देह में भी प्रविष्ट हो जाते हैं। सुना जाता है कि आदिशंकराचार्य ने ऐसा ही किया था।

महावाक्यार्थनिर्णयः

हृदयकमल में बन्धूक पुष्प के समान सिन्दूरी आभा वाला कमल है। इसके बारह दलों में विन्दु सहित क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ—ये बारह वर्ण हैं। ये भी सिन्दूरी आभा के ही हैं। इस कमल की कर्णिकाओं में षट्-कोणीय आकार का वायुमण्डल है, जिसका धूम्रवर्ण है। इसके ऊपर सूर्य-मण्डल है। इसके मध्य करोड़ों विद्युद् आभाओं के सदृश प्रभावान् त्रिकोण हैं। इसके ऊपर वायुबीज है, जो कृष्णसार मृग पर अधिरूढ़ है। इसकी आभा भी धूम्र है। इसकी चार भुजाएँ हैं और अंकुश लिये हुए हैं। इसके अङ्क में तीन नेत्रों वाले ईश हैं। हंसाभ के सदृश उनके दो हाथ वरदान और अभयदान की मुद्रा में हैं। इस कमल की कर्णिकाओं में रक्ताभ पद्म के ऊपर पीतवर्णा काकिनी शक्ति है। उनकी चार भुजाओं में पाश, कपाल तथा वर और अभय मुद्रा में हैं। ये पीत वस्त्र पहिने हैं। सर्व अलंकार इनकी शोभा वढ़ा रहे हैं। सुधा-पान से अत्यन्त आर्द्र हृदय हो रही हैं। इनके गले में कङ्काल और अस्थियों की माला है। त्रिकोण के मध्य वाणलिङ्ग के स्वरूप में शिव हैं। उनके मस्तक पर अर्धचन्द्र और बिन्दु है। उनका स्वर्ण वर्ण है। कामोद्वेग से वे उल्लसित हैं। उनके नीचे स्थिरतर दीप कलिकार जीवात्मा हंस रूप में है। इस कमल की कर्णिकाओं के नीचे रक्ताभ अष्टदल कमल है। यह ऊर्ध्वमुखी है। इसी कमल में कल्पतरु, मणि जटित वेदी है, जिस पर चंदोवा है और जो अनेक पताकाओं से सुशोभित है। यही मानस अर्चना का स्थान है।

श्रीपूर्णानन्दयति विरचित श्रीतत्त्वचिन्तामणि में
षट्चक्रनिरूपण के छठे अध्याय का
चतुर्थ प्रकरण समाप्त ॥

पञ्चमप्रकरणम्

कण्ठस्थ-विशुद्धचक्रस्वरूपम्

विशुद्धाख्यं कण्ठे सरसिजममलं धूम्रधूम्रावभासं
स्वरैः सर्वैः शोणैर्दलपरिलसितैर्दीपितं दीप्तबुद्धेः।
समास्ते पूर्णेन्दुप्रथिततमनभोमण्डलं वृत्तरूपं
हिमच्छायानागोपरि लसिततनोः शुक्लवर्णाम्बरस्य ॥ २८ ॥

भाष्य––यह विशुद्ध कहा जाता है। अत्यन्त निर्मल विशुद्ध पद्म कण्ठ में है। किस प्रकार का है ? इसकी आभा या द्युति धूम्र के समान है। और कैसा है ? सभी सोलह दीप्तिमान स्वर इसके रक्ताभ दलों पर प्रकाशमान हैं। ये उस व्यक्ति को स्पष्ट प्रतीत होते हैं, जिसकी बुद्धि प्रखर प्रकाशयुक्त है अर्थात् जिसे ज्ञान हो गया है। इस कमल में शुक्लवर्ण का अम्बर या आकाश है, जो पूर्णचन्द्र के सदृश प्रकाशित है तथा इसका आकार वृत्त के तुल्य है। अम्बर का बीज जो धवल या श्वेत है, एक गज पर आसीन है।

व्याख्या—विशुद्धचक्र का वर्णन चार श्लोकों में किया गया है, जिनमें यह प्रथम है। इसे विशुद्ध क्यों कहा जाता है ? इस सम्बन्ध में कहा गया है—

'विशुद्धिं तनुते यस्माज्जीवस्य हंसलोकनात्।
विशुद्धं पद्ममाख्यातमाकाशाख्यं महत्परम् ॥'

'इसे विशुद्ध इसलिए कहा गया है, क्योंकि हंस की दृष्टि पड़ने से जीव शुद्ध हो जाता है। इसीलिए इस पद्म को विशुद्ध की संज्ञा दी गई तथा महत् और परम भी बतलाया।'

विशुद्धाख्यं कण्ठे सरसिजममलम्––विशुद्ध नामक कमल कण्ठ में है। यह पद्म कैसा है ? अमलम्, अर्थात् मल रहित और तेजोमय है। इसका मूलतत्त्व तेज है। अतः किसी प्रकार के मल का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

स्वरैः सर्वैः––समस्त वर्ण जो अकार से आरम्भ होकर विसर्ग पर अन्त होते हैं और जिनकी कुल संख्या सोलह है।

दीप्तबुद्धेः––वे साधक जिनकी बुद्धि निरन्तर योगाभ्यास के द्वारा विषयों के अनुराग से हट गयी है। निरन्तर योगाभ्यास का यही परिणाम होता है।

स्वर कैसे हैं ? 'दलपरिलसितैः'—स्वर-वर्णों की संख्या सोलह है। अतः कमल के दलों की संख्या भी सोलह ही है, क्योंकि ये स्वर कमलदलों पर हैं। एक स्थान पर इस सम्बन्ध में उल्लेख है—

'तदूर्ध्वे षोडशदलं पङ्कजं धूम्रवर्णकम् ।
युक्तं शोणैः षोडशभिः स्वरैर्बिन्दुविभूषितैः ।
आरक्तकिञ्जल्कयुतं व्योममण्डलमण्डितम् ।।'

इसके ऊपर (अनाहत) षोडशदल कमल है, जिसका धूम्र वर्ण है। इसके दलों पर सोलह स्वर हैं जो रक्ताभ वर्ण के हैं तथा उनके ऊपर बिन्दु है। इसके तन्तु लाल हैं और यह व्योममण्डल से सुशोभित है।'

पूर्णेन्दुप्रथिततमनभोमण्डलम्—यह नभोमण्डल या आकाशमण्डल के समान शुक्ल या धवल वर्ण का है। यह वृत्ताकार अर्थात् गोल है—वृत्तरूपम्। यह गोलाई पूर्ण चन्द्रमा के समान है। शारदा का कथन है—'तत्तद्भूतसमाभानि मण्डलानि विदुर्बुधाः।' 'बड़े लोग यह अच्छी प्रकार जानते हैं कि मण्डल अपने तत्त्वों के अनुसार ही आभा रखते हैं।' मण्डलों का वर्ण अपने देवता और भूतों के अनुसार ही होता है—आकाश या नभ श्वेत है, अतः उसका मण्डल भी श्वेत या धवल है। यह इसी कमल की कर्णिकाओं में है।

शुक्लवर्णाम्बरस्य—नभोमण्डल के मध्य शुक्लवर्ण अम्बर या आकाश है। इस धवल आकाश के अङ्क में सदाशिव नामक देव सदैव निवास करते हैं। द्वितीय श्लोक में इसका उल्लेख है।

अम्बर किस प्रकार का है?

हिमच्छायानागोपरि लसिततनोः—यह अम्बर का विशेषण है। नाग हिम के समान श्वेत है।

यहाँ पर नाग से सर्प का अर्थ नहीं लगाना चाहिए, वरन् नाग एक विशेष प्रकार का गज अथवा हस्ती होता है। भूतशुद्धि में उल्लेख है—'तदन्तर्व्योमबीजं च शुक्लं हैमगजस्थितम्।' अर्थात् 'इसके अन्दर व्योम (आकाश) का श्वेत या धवल बीज है जो धवल गज पर आसीन है।' स्पष्ट है कि नाग सर्प नहीं है, वरन् हस्ती है। बीज का तनु अर्थात् देह भी धवल वर्ण है। वह प्रकाशमान है, क्योंकि वह उस पर आसीन है।

नभोबीजमध्यस्थ-सदाशिवस्वरूपम्

भुजैः पाशाभीत्यङ्कुशवरलसितैः शोभिताङ्गस्य तस्य
मनोरङ्के नित्यं निवसति गिरिजाभिन्नदेहो हिमाभः ।
त्रिनेत्रः पञ्चास्यो ललितदशभुजो व्याघ्रचर्माम्बराढ्यः
सदापूर्वो देवः शिव इति च समाख्यानसिद्धः प्रसिद्धः ।। २९ ।।

भाष्य—चार भुजाएँ कैसी हैं? चार भुजाओं मे से दो में पाश और अंकुश तथा दो भुजाएँ वरदान और अभयदान मुद्रा में हैं। इनसे शोभा में

और वृद्धि हो रही है। नभो वीज के अङ्क में सदैव हिम-सदृश धवल देव शिव का निवास है। उनके तीन नेत्र, दस सुन्दर हाथ और पाँच मुख हैं। ये सदैव यहाँ निवास करते हैं। शिव कौन हैं ? वे गिरिजा पार्वती के देह से अभिन्न हैं अर्थात् हरगौरी की मूर्ति। वे कैसे हैं ? उनकी शोभा हिम के तुल्य है। उनके तीन नेत्र तथा दस भुजाएँ हैं तथा व्याघ्र का चर्म शरीर पर है। वे ही सदाशिव हैं। उनका यही नित्यस्वरूप प्रसिद्ध है। वे योगियों के मन का प्रकाश हैं।

व्याख्या—भुजैः पाशाभीत्यङ्कुशवरलसितैः शोभिताङ्गस्य—पाश, अङ्कुश, वर और अभय उनके हाथों में है। फिर कहेत हैं कि कैसे हैं ?

तस्य मनोरङ्के—यहाँ पर वे अपने वीज रूप में हैं—हं रूप में, जो आकाशवीज है। इससे यह ज्ञात होता है कि इस कमल की कर्णिकाओं के अन्तर् में आकाशवीज स्थित है। यहाँ पर जो वर्णन आया है, उसी के अनुसार अथवा उसी रूप में इसका ध्यान करना चाहिए।

गिरिजाभिन्नदेहः—अर्धनारीश्वर।

हिमाभः—शुक्ल या धवल वर्ण। अर्ध देह सुवर्ण की आभा लिये हुए तथा दक्षिण का अर्धभाग शुक्लवर्ण है। एक स्थान पर उल्लेख मिलता है—

'शुक्लाम्बरेण संवीतं तत्र देवं सदाशिवम्।
गिरिजाभिन्नदेहार्धं रौप्यहैमशरीरकम्॥'

देव सदाशिव का अर्ध शरीर अर्थात् दक्षिण भाग शुक्ल या धवल वर्ण का है तथा वाम अर्ध भाग गिरिजा से अभिन्न सुवर्ण के वर्ण का है। अर्थात् उनका वर्ण सुवर्ण और रौप्य-सदृश है। उनके विषय में यह भी कहा जाता है कि वे चन्द्रमा की उस अधोमुख कला, जिससे सदैव सुधा निःसृत होती है, के स्वामी हैं। इस कला को अमाकला की संज्ञा दी गई है।

विशुद्धचक्र के सम्बन्ध में निर्वाणतंत्र में उल्लेख है—

'यन्त्रमध्ये च वृषभं महासिंहासनं ततः।
तस्योपरि सदा गौरी दक्षभागे सदाशिवः॥
त्रिनेत्रः पञ्चवक्त्रश्च प्रतिवक्त्रे त्रिलोचनम्।
विभूतिभूषिताङ्गश्च रजताचलसोदरः।
व्याघ्रचर्मधरो देवः फणिमालाविभूषितः॥'

यन्त्र के मध्य नन्दी है और इसके ऊपर सिंहासन है। इस पर अनादि गौरी हैं तथा उनके दक्षिण पार्श्व में सदाशिव हैं। उनके पाँच मुख और तीन नेत्र हैं। प्रत्येक मुख पर एक नेत्र है। उनके अङ्ग विभूति से भूषित हैं

और वे रजत के पर्वत तुल्य हैं। देव के शरीर पर व्याघ्र का चर्म है तथा सर्पों की माला उनका आभूषण है।

[रसिकमोहन चट्टोपाध्याय इसे शुद्ध नहीं मानते हैं। उनके ग्रन्थ में इसका अर्थ इस प्रकार बतलाया गया है—'यन्त्र के अन्दर नन्दी है, जिसका आधा देह सिंह का है।' यह अर्धनारीश्वर से मेल खाता है, क्योंकि नन्दी शिव का वाहन है तथा सिंह देवी का वाहन है।]

इसके ऊपर सदागौरी हैं, जो शिव के अर्धांग में स्थित हैं। कहा गया है—'या गौरी लोकमाता या शम्भोरर्धाङ्गहारिणी'। वे गौरी ही लोकमाता या जगज्जननी हैं और उनके अर्धांग में शम्भू हैं।

ललितदशभुजः—उनके दस सुन्दर हाथ हैं। एक प्रकार से यह उनके लावण्य की प्रशंसा है। उनके हाथों में आयुधों (अस्त्रों) की चर्चा नहीं की गई है। केवल एक ध्यान में आयुधों की चर्चा इस प्रकार आती है—

'शूलं टङ्कक्रपाणवज्रदहनान्नागेन्द्रघण्टाङ्कुशान्।
पाशाभीतिकरं दधानममिताकल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे ॥'

उनके हाथ में त्रिशूल, टंक (परशु), कृपाण, वज्र, दहन (अग्नि), नागेन्द्र (सर्पराज), घंटा, अंकुश और पाश है। एक हाथ अभयमुद्रा में है। यह भी एक प्रकार का अस्त्र ही है, जिसे उक्त अस्त्रों में अभीतिकर बतलाया गया है। यह अस्त्र फेंका जाता है, क्योंकि इसके फेंकने से साधक में सद्वृत्ति आती है। साधक को ध्यान में यह भाव लेना चाहिए कि वे उक्त धातुओं को धारण किये हुए हैं।

पद्मकर्णिकास्थ-शाकिनीशक्तिस्वरूपम्

सुधासिन्धोः शुद्धा निवसति कमले शाकिनी पीतवस्त्रा
शरं चापं पाशं सृणिमपि दधती हस्तपद्मैश्चतुर्भिः।
सुधांशो सम्पूर्णं शशपरिरहितं मण्डलं कर्णिकायां
महामोक्षद्वारं श्रियमभिमतशीलस्य शुद्धेन्द्रियस्य ॥ ३० ॥

भाष्य—इस विशुद्ध कमल में शक्ति शाकिनी निवास करती हैं। उनका परिधान पीतवर्ण का है। वे कैसी हैं? वे शुद्धातिशुद्ध हैं। सुधा-सिन्धु की अमृतधारा से भी शुद्ध। उनके चारों करकमल शर, पाश, चाप और अंकुश से सुशोभित हैं। इस कमल की कर्णिकाओं में चन्द्रमा का सम्पूर्ण मण्डल है। यह पूर्णतया निष्कलंक है अर्थात् शश के चिह्न नहीं हैं। यह कैसा है? यह मोक्ष अथवा निर्वाण और मुक्ति का द्वार है। जो योग की श्री की कामना करते हैं तथा जितेन्द्रिय हैं, उनके लिए यह मुक्तिद्वार है।

व्याख्या—ग्रन्थकार ने उल्लेख किया है कि यहाँ पर कमल की कर्णिकाओं में साकिनी शक्ति की स्थिति है। अव उनकी विशेषता वतलाते है—

सुधासिन्धोः शुद्धा—वे अमृत के सागर के समान शुद्ध हैं तथा सुधा के समुद्र के समान उनका शुक्लवर्ण है। इतना ही नहीं वरन् जैसे सुधासिन्धु अमृतमय, सुशीतल तथा शुक्ल होता है वैसा ही शाकिनी देवी का ज्योतिःस्वरूप उत्ताप रहित शुक्ल किरण है। उनका ध्यान इस प्रकार वतलाया गया है—

'देवीं ज्योतिःस्वरूपां त्रिनयनलसितां पञ्चवक्त्राभिरामां
हस्तैः पद्मैश्च पाशं सृणिमपि दधतीं पुस्तकं ज्ञानमुद्राम्।
ध्यायेत् कण्ठस्थपद्मे निखिलपशुजनोन्मादिनीमस्थिसंस्थां
दुग्धान्ने प्रीतियुक्तां मधुमदमुदितां शाकिनीं साधकेन्द्रः॥'

श्रेष्ठ साधक को उस देवी का कण्ठस्थ कमल में ध्यान करना चाहिये। वे स्वयं ज्योतिःस्वरूपा हैं। उनके पाँच कान्तिमान मुख और तीन नेत्र हैं। उनके कर-कमलों में पाश, अंकुश और पुस्तक है। चौथा हाथ ज्ञानमुद्रा में है। वे पशुओं के समूहों में भ्रान्ति या उन्माद उत्पन्न करती हैं। उनका निवास अस्थिधातु में है। दुग्ध से निर्मित खाद्य पदार्थ उन्हें प्रिय है। उन्होंने मधु का पान किया है, जिससे वे अत्यन्त मुदित या प्रसन्न हैं।

शंकर का कथन है कि सुधासिन्धु चन्द्र है। वे चन्द्रमा की इस सुधा से भी अधिक शुद्ध और श्वेत हैं। यहाँ पर जो भाष्य किया गया है वह शंकर और विश्वनाथ की टीका के ही अनुसार है। वे सुधासिन्धु को अपादानकारक अथवा पञ्चमी विभक्ति में माना है। कालीचरण ने इसे षष्ठी माना है जिससे इसका अर्थ होगा—'सुधासागर के तुल्य शुद्ध।' यह सुधासागर सातवाँ समुद्र है, जो मणिद्वीप को घेरे हुए हैं।

एक और ध्यान का भी इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है—

'मूलाधाराख्य पद्मे श्रुतिदललसिते पञ्चवक्त्रां त्रिनेत्रां
धूम्राभामस्थिसंस्था सृणिमपि कमलं पुस्तकं ज्ञानमुद्राम्।
विभ्राणां वाहुदण्डैः सुललितवरदापूर्वशक्त्या वृतां तां
मुद्गन्नासक्तचित्तां मधुमदमुदितां साकिनीं भावयामः॥'

पहले ध्यान में कहा गया है कि वे ज्योतिःस्वरूपा हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वे शुक्ल हैं, क्योंकि ज्योति का विशिष्ट गुण ही श्वेत माना जाता है। ऊपर के दोनों ध्यान एक-दूसरे से देवी के आयुधों को लेकर भिन्नता रखते हैं। सम्भवतः इसका कारण साधकों के लक्ष्य में मतैक्य का न होना है। लक्ष्य के अनुसार अर्थात् जिस लक्ष्य को रखकर ध्यान किया जाता है, उसी के अनुसार ही ध्यान निश्चित किया जाता है।

यहाँ देवी कर्णिकाओं के मध्य चन्द्रमण्डल में हैं। इस सन्दर्भ में प्रेमयोगतरङ्गिणी का कथन है—'तत्रास्ते साकिनी शक्तिः सुधांशोर्मण्डले शुभे।' अर्थात् 'यहाँ पर शक्ति साकिनी शुभ चन्द्रमण्डल में है।' शशपरिरहितं का अर्थ भी वही है। चन्द्रमा पर जो धब्बे हैं, उन्हें शश कहा जाता है, किन्तु देवी साकिनी निष्कलंक हैं। उनकी तुलना ऐसे चन्द्र से की गई है, जिसमें शश अथवा धब्बे नहीं है।

महामोक्षद्वारम्—यह मण्डल का विशेषण है। यह निर्वाण-मुक्ति का द्वार है। जिन साधकों ने अपने को शुद्ध और जितेन्द्रिय बना लिया है तथा योग की अन्य क्रियाओं में भी पारंगत हो गये हैं तथा इस कमल का भी ध्यान कर चुके हैं, वे मुक्ति प्राप्त करते हैं।

श्रियमभिमतशीलस्य—श्रीयं का तात्पर्य योगलक्ष्मी से है। उस साधक के लिए जो योगलक्ष्मी प्राप्त करना चाहता है, यह मुक्ति का द्वार है। इससे शुद्धेन्द्रिय का अर्थ भी स्पष्ट हो जाता है। शुद्धेन्द्रिय का तात्पर्य ऐसे साधक से है जिसने अपनी वासनाओं पर नियंत्रण कर इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है।

इस कमल की कर्णिकाओं के मध्य नभोमण्डल बतलाया गया है। इसके भी अन्दर त्रिकोण है तथा त्रिकोण के मध्य चन्दमण्डल है और इसके मध्य नभोबीज है। कहा गया है—

'कर्णिकायां त्रिकोणस्थं पूर्णचन्द्रं तु चिन्तयेत्।
हैमाभं गजमारूढमाकाशं तत्र चिन्तयेत्॥
शुक्लाम्बरेण संवीतं तत्र देवं सदाशिवम्॥'

त्रिकोण में स्थित चन्द्रमा कर्णिकाओं में है, उसका ध्यान करे। वहाँ पर गजारूढ़ हिमवद् आकाश का ध्यान करे, जिसके वस्त्र श्वेत हैं। वहीं पर देव सदाशिव हैं। श्वेत वस्त्र आकाश को इंगित करते हैं।

विशुद्धचक्रचिन्तनफलम्

इह स्थाने चित्तं निरवधि विनिधायात्मसम्पूर्णयोगः
कविर्वाग्मी ज्ञानी स भवति नितरां साधकः शान्तचेताः।
त्रिकालानां दर्शी सकलहितकरो रोगशोकप्रमुक्त-
श्चिरञ्जीवी जीवी निरवधिविपदां ध्वंसहंसप्रकाशः॥ ३१॥

भाष्य—इस विशुद्ध पद्म में जो निरन्तर ध्यान करता है, उसे योग के सम्पूर्ण विषयों का ज्ञान हो जाता है। वह एक महान् ऋषि, कवि और वाक् सिद्ध हो जाता है। उसका मानस निरन्तर शान्त रहता है। वह त्रिकालदर्शी

हो जाता है तथा सकल का हित करना ही उसका प्रेय और श्रेय रहता है। रोग-शोक उसे स्पर्श भी नहीं कर पाते तथा वह दीर्घायु हो जाता है। हंस के तुल्य हो जाने से वह सभी विपदाओं और संकटों को नष्ट करने में समर्थ है।

व्याख्या—यहाँ पर विशुद्धचक्र के चिन्तन का फल बतलाया गया है।

आत्मसम्पूर्णयोगः—आत्म का तात्पर्य ब्रह्म से है। आत्मसम्पूर्णयोग का अर्थ है—योग में सम्पूर्णता प्राप्त कर लेना। आत्मा के ज्ञान की सम्पूर्णता का एक अर्थ यह भी है कि उसे बोध हो गया कि आत्मा सर्वव्यापक है। यहाँ पर योग का प्रयोग ज्ञान के रूप में किया गया है, अतः योग का अर्थ ज्ञान से ही करना चाहिए।

एक अन्य मतानुसार इसका अर्थ होगा कि 'जिसने योग में पूर्ण दक्षता प्राप्त कर ली है।' शंकराचार्य का कथन है—'पूर्णबोधात्मना तिष्ठेत् पूर्णाचल-समुद्रवत्' अर्थात् जिसे आत्मा का पूर्ण बोध हो गया है, वह समुद्र के गहरे जल के समान पूर्ण अचल रहता है।'

जो साधक इस स्थान पर निरवधि चित्त रहता है, उसे योग में सम्पूर्णता प्राप्त हो गयी। वही ज्ञानी है। उपदेश के बिना ही वह सर्व शास्त्रों के अर्थ का वेत्ता हो जाता है। शान्ति के गुण उस शान्त चित्त में आश्रय ग्रहण कर लेते हैं। इस सम्बन्ध में उल्लेख है—

'दयाभूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्।
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता॥'

जीव मात्र पर उसकी दया-दृष्टि रहती है और उसे किसी से कोई अपेक्षा नहीं रहती। अभय, अन्तःकरण की स्वच्छता, ज्ञान और योग, दृढ़ निष्ठा, दान, बाह्य इन्द्रियों का संयम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, उपरति, लोभशून्यता आदि छब्बीस दैवी सम्पदा के गुण उसमें आ जाते हैं।

त्रिकालानां दर्शी—योग के द्वारा उसने जो ज्ञान प्राप्त किया है, उससे वह भूत, वर्तमान और भविष्य का द्रष्टा हो जाता है। कुछ लोगों का कथन है कि इसका अर्थ यह है कि योगी ने आत्मन् को ही देख लिया तब फिर रह ही क्या गया, क्योंकि ज्ञान की सर्व वस्तुएँ तो वही हैं।

रोगशोकप्रमुक्तः—अपने मंत्र के सिद्ध हो जाने के फलस्वरूप रोगमुक्त और चिरंजीवि हो गया। माया के पाश कट जाने से शोक रह कहाँ गया?

निरवधिविपदां ध्वंसहंसप्रकाशः—सद् और कर्मों के फलस्वरूप विपत्तियाँ आती हैं। साधक हंस-तुल्य हो जाता है। वही अन्तरात्मा है जो सहस्रार के बीजकोष में निवास करता है। वह इस प्रकार की समस्त आपदाओं को

नष्ट करने में समर्थ है। तथा परिणामस्वरूप मोक्ष का द्वार खोल देता है। अन्तरात्मा का ही स्वरूप हंस है।

हंस द्वादश दल कमल में सहस्रार के नीचे है। शंकर और विश्वनाथ ने हंस को सूर्य कहा है। उनके अनुसार विपदां अन्धकार स्वरूप है और उनका ध्वंस सूर्य का प्रकाश है। यहाँ पर उन्होंने वैखरी शक्ति बतलाई है। भट्टधृत-तंत्र में उल्लेख है—

'सूक्ष्मा कुण्डलिनीमध्ये ज्योतिर्मात्रा परा मता।
अश्रोत्रविषयात् तस्मात् किञ्चिदेवोर्ध्वगामिनी॥
स्वयम्प्रकाशा पश्यन्ती सषुम्णानाभिमाश्रिता।
सैव हृत्पङ्कजं प्राप्य मध्यमा नादरूपिणी॥
ततः सञ्जल्पमात्रा स्यादविभक्तोर्ध्वगामिनी।
सैवोरुकण्ठतालुस्था शिरोघ्राणरदाश्रिता॥
जिह्वामूलोष्ठनिस्यूता कृतवर्णपरिग्रहा।
शब्दप्रपञ्चजननी श्रोत्रग्राह्या तु वैखरी॥'

बलदेव टीकाकार के षट्चक्रनिरूपण में यह श्लोक अधिक मिलता है, जो विशुद्धचक्र का अन्तिम श्लोक है—

'इह स्थाने चित्तं निरवधिनिधायात्तपवनो
यदि क्रुद्धो योगी चलयति समस्तं त्रिभुवनम्।
न च ब्रह्मा विष्णुर्न च हरिहरो नैव खमणि-
स्तदीयं सामर्थ्यं शमयितुमलं नापि गणपः॥'

भाष्य—इस स्थान पर चित्त को निरवधि कर विशुद्ध पद्म पर ध्यान करे तथा कुम्भक द्वारा श्वास पर नियंत्रण रखे। यदि ऐसा योगी क्रुद्ध हो जाय तो समस्त त्रिभुवन कम्पायमान हो जाता है। ब्रह्मा, विष्णु, हरिहर और सूर्य या गणप उसका शमन करने की सामर्थ्य नहीं रखते हैं।

व्याख्या—यह श्लोक त्रिपुरासारसमुच्चय में (५।२६ पर) है। वहाँ 'इह स्थाने चित्तं सततमवधायात्तमनसः' ऐसा पाठ मिलता है।

आत्तपवनः—पवन को अन्दर लेना। कुम्भक द्वारा ऐसा किया जाता है।

हरिहरः—विष्णु और शिव का युगलस्वरूप।

खमणिः—सूर्य। नभ की मणि अर्थात् सूर्य। ख + मणि।

महावाक्यार्थनिर्णयः

कण्ठ के मूल में षोडश दल विशुद्ध कमल है। यह धूम्रवर्ण का है। इसके तन्तु रक्तवर्ण के हैं तथा इन पर सोलह स्वर बिन्दुयुक्त हैं। इसकी

कर्णिकाओं में नभोमण्डल है, जिसका आकार वृत्त के समान है और वर्ण श्वेत है। इसके मध्य में त्रिकोण है और उसमें चन्द्रमण्डल है। इसके ऊपर नभो वीज या आकाशबीज हं है। इसका वर्ण भी शुक्ल है। इसके परिधान शुक्ल हैं और यह शुक्ल गज पर आरूढ़ है। चार भुजाएँ हैं, जिनमें पाश, अंकुश, तथा वर और अभय मुद्रा हैं। इस नभो वीज के अङ्क में नन्दी पर स्थित महासिंहासन है। इस पर सदाशिव अर्धनारीश्वर विराजमान हैं। उनका अर्धाङ्ग सोने के वर्ण का तथा आधा रौप्य वर्ण का है। उनके पांच मुख, तीन नेत्र तथा दश भुजाएँ हैं। उनकी भुजाओं में शूल, टङ्क, खड्ग, वज्र, दहन (अग्नि), नागेन्द्र (सर्प), घण्टा, अंकुश, पाश तथा वरदान और अभय-दान मुद्रा हैं। शरीर पर व्याघ्रचर्म है और समस्त अङ्ग विभूति से लिप्त हैं। नाग-मालाओं के आभूषणों से शोभायमान हैं। चन्द्र की अधोमुख अन्तिम कला जिससे अमृत का स्राव होता है, उनके मस्तक पर है। यही चन्द्रशेखर है। इसकी कर्णिकाओं में चन्द्रमण्डल के मध्य अस्थियों के ऊपर साकिनी शक्ति विराजमान है। इनका शुक्लवर्ण है तथा चार भुजाएँ हैं जिनमें पाश, अंकुश, शरकरा धनु हैं। उनका परिधान पीतवर्ण का है। इनके पांच मुख और तीन नेत्र हैं।

श्रीपूर्णानन्दयति विरचित श्रीतत्त्वचिन्तामणि में
षट्चक्रनिरूपण के छठे अध्याय का
पञ्चम प्रकरण समाप्त ॥

षष्ठप्रकरणम्

भ्रूमध्यस्थिताऽऽज्ञाचक्रस्वरूपम्

आज्ञानामाम्बुजं तद्धिमकरसदृशं ध्यानधामप्रकाशं
हक्षाभ्यां वै कलाभ्यां परिलसितवपुर्नेत्रपत्रं सुशुभ्रम् ।
तन्मध्ये हाकिनी सा शशिसमधवला वक्त्रषट्कं दधाना
विद्यां मुद्रां कपालं डमरुजपवटीं बिभ्रती शुद्धचित्ता ॥ ३२ ॥

भाष्य—यह प्रसिद्ध है कि भ्रूमध्य में आज्ञापद्म है। यह कैसा है ? चन्द्रमा के सदृश अतएव प्रशस्त शुभ्र या श्वेतवर्ण का है। ध्यान का धाम होने से यह प्रकाशित हो रहा है। यहाँ पर हकार और क्षकार उपलक्षित हो रहे हैं, जो इसकी आभा को और भी प्रकाशित कर रहे हैं। यह कैसा है ? नेत्र पत्र के समान है। इसका अर्थ है कि इस पद्म में दो पत्र या दल हैं। इस पद्म में प्रसिद्ध हाकिनी का निवास है। वे कैसी हैं ? चन्द्रमा के सदृश धवलवर्णा और षण् (छः) मुखी हैं। उनके छः हाथों में—एक विद्यामुद्रा और दूसरा ज्ञान-मुद्रा में है तथा दो हाथ ऊपर की ओर उठे हैं जो वरदान और अभयमुद्रा में हैं। शेष दो हाथों में कपाल, छोटी दुन्दुभि तथा माला है। ये पूर्णतया शुद्ध चित्त हैं।

व्याख्या—यहाँ पर भ्रूमध्य के बीच स्थित आज्ञाचक्र का निरूपण किया जा रहा है। यह सात श्लोकों में किया गया है।

कहा गया है कि यहाँ गुरु की आज्ञा प्राप्त होती है, अतः इसे आज्ञा की संज्ञा दी गई है। गौतमीयतन्त्र में उल्लेख है—'आज्ञासङ्क्रमणं तत्र गुरोराज्ञेति कीर्तितम् ।' अतः इस नाम से ही यह चक्र प्रसिद्ध है। यह कमल भ्रूमध्य में है-

'तालुकण्ठं प्रविश्योर्ध्वं भ्रूयुगान्ते सितं शुभम् ।
द्विदलं ह-क्ष-वर्णाभ्यां मनोऽधिष्ठितमम्बुजम् ॥'

(सम्मोहनतंत्र)

'कण्ठ और तालु में प्रवेश करने के पश्चात् ऊर्ध्व की ओर जाकर इस शुभ कमल में जो भ्रू के बीच है, कुण्डलिनी पहुँचती है। इसमें दो दल हैं, जिन पर ह और क्ष अक्षर हैं। यही मानस का स्थान है।

हिमकरसदृशम्—यह चन्द्रमा के समान है। चन्द्रकलाओं के समान यह कमल शीतल है। चन्द्र ही अमृत का पात्र माना गया है अथवा अमृत की विशेषता उसकी शीतलता है। अतः यह शुक्लवर्ण का है।

ध्यानधामप्रकाशम्---ध्यान का धाम तेजोमय है तथा तेज शक्ति के कारण प्रकाशमान है। धाम का तात्पर्य शरीर या देह से है।

हक्षाभ्यां वै कलाभ्याम्---ये दोनों अक्षर ह और क्ष स्वभावतः श्वेत हैं तथा श्वेत दलों पर स्थित हैं, अतः यह स्वेतवर्ण श्वेत के आधिक्य से और अधिक मनोहारी हो गया है। इसका एक अर्थ और भी किया जाता है—आज्ञाचक्र में शीतल किरणें हैं, जो चन्द्रसुधा के समान शीतल तथा चन्द्रमा के समान श्वेत हैं। अक्षर या वर्णों को कला भी कहा जाता है, क्योंकि वे कला के वीज हैं। अक्षरों से युक्त होने के कारण दोनों दल या पत्र अतीव शुभ्र हैं। मायातन्त्र में कहा गया है—'आज्ञाख्यं द्विदलं शुभ्रम्'। दक्षिणामूर्ति में उल्लेख है—'आज्ञायां विद्युदाभायां शुभ्रौ हक्षौ विचिन्तयेत्'। आज्ञाचक्र में ह और क्ष को विद्युद् आभा के समान शुभ्र जानो।

नेत्रपत्रम्---दो दल।

सुशुभ्रम्---ह और क्ष सुशुभ्र हैं।

ईश्वरः---कार्तिकसंवाद में कहा गया है—

'आज्ञाचक्रं तदूर्ध्वे तु शुक्लं द्विदलमण्डितम्।
कर्बूरहक्षलसितं मनोऽधिष्ठितरञ्जितम्॥'

आज्ञाचक्र इसके ऊपर है। यह शुक्लवर्ण और दो दल या पत्रों का है। दोनों अक्षर ह और क्ष चित्र-विचित्र वर्ण के हैं, जो इसकी शोभा में वृद्धि कर रहे हैं। यही मानस का स्थान है।

इसकी कर्णिकाओं में हाकिनी शक्ति स्थित हैं।

सा---हाकिनी नाम की शक्ति।

विद्याम्---पुस्तक।

मुद्राम्---वर और अभय रूप।

उनकी भुजाओं में छः आयुध दिखलाई पड़ रहे हैं। इसका तात्पर्य यह है कि उनकी छः भुजाएँ हैं। कुछ लोगों की मान्यता है कि विद्या और मुद्रा एक ही शब्द है और इसका तात्पर्य 'व्याख्यामुद्रा' बतलाते हैं। इस व्याख्यामुद्रा का अर्थ है—ऐसी मुद्रा जिससे ज्ञान के भाव का प्रदर्शन होता है। उनकी मान्यता है कि हाकिनी की चार भुजाएँ हैं। भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न पाठ हैं। अतः पाठकों को स्वयं निर्णय करना चाहिए।

हाकिनी का ध्यान-विशेष निम्नलिखित है—

'मज्जास्थां शुक्लवर्णां डमरुकरयुतामक्षसूत्रं कपालं
विद्यां मुद्रां दधानां त्रिनयनविलसद्रक्तषड्वक्त्रयुक्ताम्।

हारिद्रान्ने प्रसक्तां मधुमदमुदितां शुक्लपद्मोपरिस्थां
देवीं देवेन्द्ररत्नाकरमधुमुदितां भावयेद्धाकिनीं ताम् ॥'

'दिव्य शक्ति हाकिनी का ध्यान करो। उनका मज्जा में निवास है और धवलवर्णा हैं। उनके हाथों में डमरु, रुद्राक्ष की माला, कपाल, विद्या (पुस्तक का चिह्न) तथा वर और अभय मुद्रा में है। उनके छः रक्ताभ मुख तथा सभी मुखों पर तीन नेत्र हैं। उन्हें अदरक के साथ पकाया भोज्य पदार्थ विशेष रूप से रुचिकर है तथा सुधा-पान से आह्लादित हैं। श्वेत पद्म उनका आसन है। समुद्र-मंथन में देवों के राजाधिराज इन्द्र को जो अमृत प्राप्त हुआ था, उसका पान करने से उनका मानस उन्नतावस्था में है।

हाकिनी का एक ध्यान और भी बतलाया गया है—

'भ्रूमध्ये विन्दु पद्मे दलयुगलसिते शुक्लवर्णां कराब्जै-
र्बिभ्राणां ज्ञानमुद्रां डमरुकममलामक्षमालां कपालम्।
षट्चक्राधारमध्यां त्रिनयनलसितां हंसवृत्त्यादियुक्तां
हारिद्रान्नैकसक्तां सकलसुखकरीं हाकिनीं भावयामः ॥'

आज्ञाचक्रस्थ-मनःस्थितिस्वरूपम्

एतत्पद्मान्तराले निवसति च मनः सूक्ष्मरूपं प्रसिद्धं
योनौ तत्कर्णिकायामितरशिवपदं लिङ्गचिह्नप्रकाशम्।
विद्युन्मालाविलासं परमकुलपदं ब्रह्मसूत्रप्रबोधं
वेदानामादिबीजं स्थिरतरहृदयश्चिन्तयेत् तत्क्रमेण ॥ ३३ ॥

भाष्य—इस पद्म के अन्तराल में सूक्ष्म रूप में मन का निवास है। इस पद्म की कर्णिकाओं में योनि है, जहाँ पर शिव लिङ्ग रूप में हैं। वे यहाँ विद्युत् पुञ्ज के समान प्रकाशमान हैं। वेदों का आदिबीज जहाँ पर शक्ति का निवास है, यहीं है। यह बीज अपनी प्रभा से ब्रह्मसूत्र को प्रकाशित कर रहा है। साधक को दृढ़ मानस से निर्धारित विधि से इस पर ध्यान करना चाहिए।

व्याख्या—एतत्पद्मान्तराले—इस पद्म में मन की स्थिति बतलाई गई है।

सूक्ष्मरूपम्—अतीन्द्रिय। मन इन्द्रियातीत है। यदि ऐसा है तो फिर यह पूछा जा सकता है कि उसकी सत्ता का प्रमाण क्या है? इसका उत्तर यही है कि यह सभी जानते हैं और सर्वमान्य है। अनादि पुरुष से लेकर जन्म-जन्मान्तरों से कथन चला आ रहा है। इसकी अनुभूति भी की गई है। शास्त्रों में कहा गया है—'सङ्कल्पश्च विकल्पश्च कुर्वाणा तु मनो भवेत्।' अर्थात्—संकल्प और विकल्प मन ही करता है। जिस मन की परिभाषा यहाँ पर

संकल्पात्मक और विकल्पात्मक रूप में की गई है, वह नीचे का मन है। वह उस मानस से भिन्न है, जिसकी चर्चा आगे चलकर ४०वें श्लोक में आती है।

मानस का स्थान वेदों के आदिवीज के ऊर्ध्व में है, जैसा कि आगे स्पष्ट है।

योनौ तत्कर्णिकायाम्—कर्णिकाओं में योनि है और योनि में शिवलिङ्ग है। यह शिवलिङ्ग की स्थिति वतलायी गई है। लिङ्ग शिव का चिह्न या प्रतीक मात्र है।

इतरशिवपदम्—इतर शिव उन कर्णिकाओं में हैं। कर्णिकाओं के आन्तर् में त्रिकोण है, उसी में इतर शिवपदम् है अर्थात् इतर रूप में शिव। इसका वर्ण श्वेत है। भूतशुद्धितन्त्र का कथन है—'तदन्तःस्थेतरं लिङ्गं स्फटिकाभं त्रिलोचनम्।' लिंग विद्युन्माला और स्फटिक के समान प्रकाशमान है। योगिनीहृदय में उल्लेख है—'इतरश्च परं पुनः।'

विश्वनाथ की मान्यता है कि इतर शिवपद सहस्रार में स्थित निर्गुण परशिव का अंश है।

लिङ्गचिह्नप्रकाशम्—लिङ्ग के रूप भासमान है।

वेदानामादिबीजम्—इस कमल की कर्णिकाओं में वेदों का आदिवीज अर्थात् ॐ है। यही वीज विशेष है।

परमकुलपदम्—कुल का अर्थ है—शक्ति। यह शक्ति यहाँ त्रिकोणात्मक है। परम का अर्थ उत्कृष्ट है। यह विद्युत् पुञ्ज के समान है तथा तेजोमय है। पद का अर्थ है स्थान। यहाँ पर इसका आशय है त्रिकोण के अन्तर् का स्थान। अतः यहाँ पर हम इसे त्रिकोण में देखते हैं। यही परमकुलपद है। पहले ही वतला दिया गया है कि यह विद्युद् आकार में उत्कृष्ट कुलपदं है और बीज त्रिकोण के मध्य दृष्टिमान है। निम्नलिखित श्लोक इसको पूर्णतया स्पष्ट कर देता है—

'कर्णिकायां त्रिकोणस्थमात्मानं प्रणवाकृतिम्।
ज्वलद्द्वीपनिभञ्चोर्ध्वं नादरूपं मनोहरम्।
बिन्दुमंकाररूपं च तदूर्ध्वं मानसालयः॥'

'कर्णिकाओं के मध्य और त्रिकोण के अन्दर आत्मा प्रणव की आकृति में या स्वरूप में है। इसके ऊपर ज्वलद् दीप की शिखा के सदृश नाद है जो अतीव मनोहर है। इसके बिन्दु भी हैं, जो मकर रूप में हैं। इसके भी ऊपर मानस का स्थान है।'

एक अन्य तंत्र में परमकुलपद और प्रणव को अभिन्न बतलाते हुए कहा गया है—

'मूलाधारं स्वाधिष्ठानं मणिपूरगनाहतम् ।
विशुद्धमाज्ञाचक्रञ्च विन्दुर्भूयः कलापदम् ।।
निवोधिका तथार्द्धेन्दुर्नादो नादान्त एव च ।
उन्मनी विष्णुवक्त्रश्च ध्रुवमण्डलिकः शिवः ।
इत्येतत् षोडशाधारं कथितं योगिदुर्लभम् ।।'

आधार सोलह हैं—'मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा, विन्दु, कलापद, निवोधिका, अर्धेन्दु, नाद, नादान्त, उन्मनी, विष्णुवक्त्र, ध्रुवमण्डल और शिव। इन सोलह आधारों की प्राप्ति योगी के लिए दुर्लभ है।'

उपर्युक्त कथन में षोडश आधारों की गणना में कलापद को एक पृथक् आधार वतलाया गया है। यह प्रणव से अभिन्न भी माना गया है, तो फिर ऐसी स्थिति में इसकी गणना पृथक् आधार में कैसे ? इस शंका का निवारण इस प्रकार है—दूसरा कला पद वह नहीं है जो आज्ञाचक्र में है, वरन् वह महानाद के ऊपर रिक्त अथवा शून्य देश में है, जिसका वर्णन आगे आयेगा।

ऊपर विन्दु को मकर रूप में वतलाया गया है। यह ध्यान रखना चाहिए कि अभिव्यक्त होने से इसकी पूर्वस्थिति अक्षर म है।

अमृतानन्द योगी का इतर लिङ्ग के सम्वन्ध में कहना है—'शरच्चन्द्रनिभं श्वेतवर्णकदम्वकुसुमगोलकरूपं थादिसान्ताक्षरावृतमितरलिङ्गम् ।'

आनन्दलहरी में भी इसकी चर्चा करते हुए कहा गया है—

'तवाज्ञाचक्रस्थ-तपनशशिकोटिद्युतिधरम् ।
परं शम्भुं वन्दे परिमिलितपार्श्वं परचिता ।।'

'तेरे आज्ञाचक्र में स्थित करोड़ों सूर्य-चन्द्र के तेज से युक्त परशिव की की वन्दना करता हूँ, जिसका वाम पार्श्व परा चिति से एकीभूत है।'

तारापोढान्यासाधिकारतंत्र के अनुसार—

'ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
ततः परशिवो देवि षट् शिवाः परिकीर्तिताः ।।'

'हे देवी ! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, परशिव ये छः शिव हैं।'

मूलाधार आदि विशुद्ध पद्मों में पाँच शिवों का उल्लेख है—

'आज्ञाचक्रे च देवेशि ह-क्षवर्णसमन्वितम् ।
परं शिवं ब्रह्मरूपं हाकिनीसहितं न्यसेत् ।।'

सहस्रार में निर्गुण परशिव को ही अपर शिव वतलाया गया है, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है। अतएव ब्रह्म शिव से ब्रह्म स्वरूप का तात्पर्य

समझना चाहिए, ब्रह्म का नहीं। यहाँ तक परमकुलपद है। आनन्दलहरी में उल्लेख है—

'महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्त्वा कुलपथं
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि ॥'

'पृथ्वीतत्त्व को मूलाधार में और जलतत्त्व को भी मूलाधार में ही, मणिपुर में अग्नितत्त्व को जिसकी स्थिति स्वाधिष्ठान में है, हृदय में वायुतत्त्व को और ऊपर विशुद्ध में आकाशतत्त्व को तथा मन को भी भ्रूमध्य में—इस प्रकार सकल कुल-पथ (शक्तिमार्ग) का वेध करके तू सहस्रार पद्म में अपने पति के साथ एकान्त में विहार करती है।'

यहाँ पर जलतत्त्व को स्वाधिष्ठान में तथा अग्नितत्त्व को मणिपूर में बतलाया गया है।

ब्रह्मसूत्र—ब्रह्मनाड़ी अर्थात् चित्रिणी नाड़ी। यह नाड़ी प्रणव की आभा से प्रकाशित होती है। ३रे श्लोक में इस नाड़ी की चर्चा करते हुए भी यही कहा गया है कि यह प्रणव के प्रकाश से प्रकाशित है।

इससे पहले 'प्रणवविलसिता' शब्द आया है। इससे यह बतलाया गया कि हाकिनी, मन, इतरलिङ्ग तथा वेदादि बीज रूप में हृदय में स्थिर कर ध्यान करे। वेदबीज प्रणव के सम्बन्ध में उल्लेख है—

'भ्रूमध्ये अन्तरात्मानमरूपं सर्वकारणम्।
ॐकारज्योतीरूपं तु प्रदीपाभं जगन्मयम् ॥'

प्रकाश ज्योतिस्वरूप है। इसके ऊपर अन्तरात्मा इसके ऊपर चन्द्रार्धः अर्थात् अर्धचन्द्रबिन्दु रूपी मकार—इसके ऊपर नाद। योगिनीहृदय में कहा गया है कि यह नाद अत्यन्त शुक्लवर्ण है। जल के सदृश धवलवर्ण का है। योगिनीहृदय का यह भी कथन है—'इन्दौ बिन्दौ, तदर्द्धे, अर्द्धचन्द्रे।'

स्वच्छन्दसंग्रह में भी उल्लेख है—

'तत्र बिन्दोर्यथा बिन्द्वावरणे स तदूर्ध्वतः।
सूर्यकोटिप्रतीकाशमतिदीप्तं महद्गुणम् ॥
तन्मध्ये शतकोटीनां सङ्ख्या योजनपञ्चकम्।
तत्कर्णिकायामासीनः शान्त्यतीतेश्वरः प्रभुः ॥
पञ्चवक्त्रो दशभुजो विद्युत्पुञ्जनिभाकृतिः।
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिरनुक्रमात् ॥

परिवार्यं स्थिताश्चैताः शान्त्यतीतेश्वरस्य च ।
वामभागे समासीना शान्त्यतीता मनोन्मनी ॥
पञ्चवक्त्रधराः सर्वा दशबाह्विन्दुभूषणाः ।
बिन्दुतत्त्वं समाख्यातं कोटचर्बुदशतैर्वृतम् ॥
अर्धचन्द्रस्तदूर्ध्वं तु रोधिनी तस्य चोपरि ।
ज्योत्स्ना ज्योत्स्नावती कान्तिः सुप्रभा विमलापि च ॥
अर्धचन्द्रोत्थिता ह्येताः कला पञ्च प्रकीर्तिताः ।
बन्धिनी बोधिनी वोधा ज्ञानबोधा तमोपहा ॥
निबोधिकाः कला पञ्च कथिताः सुरसुन्दरि ।
ब्रह्मादिपरमेशानां परप्राप्तिनिबोधनात् ।
निबोधिकेति सा प्रोक्ता तस्या भेदाद् वरानने ॥
बोधिन्याख्यं यदुक्तं ते नादस्तस्योपरि स्थितः ।
पद्मकिञ्जल्कसङ्काशः कोटिसूर्यसमप्रभः ॥
पुरैः परिवृतोऽसङ्ख्यैर्मध्ये पञ्चकलावृतः ।
इन्धिका दीपिका चैव रेचिका मोचिका तथा ॥
ऊर्ध्वगा मध्यगा तासां पञ्चमी परमा कला ।
चन्द्रकोटिसमप्रख्यं तन्मध्येऽर्बुदयोजनम् ॥
पद्ममध्ये समासीनमूर्ध्वगामिनमीश्वरम् ।
चन्द्रायुतप्रतीकाशं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचम् ॥
ऐन्दवाद्यैरावृतञ्च शूलपाणिं जटाधरम् ।
तस्योत्सङ्गतामूर्ध्वगामिनीं परमां कलाम् ॥'

साधक को चाहिए कि स्थिर मन से इनका ध्यान करे—हाकिनी, मानस, इतरलिङ्ग और प्रणव । यह ध्यान निर्धारित क्रम से किया जाय । ग्रन्थकार ने जो क्रम बतलाया है, उससे यह क्रम भिन्न है । किन्तु शब्दों का क्रम उसी प्रकार से रखा जाय, जैसा कि ग्रन्थकार ने मूल ग्रन्थ में रखा है । उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन वांछनीय नहीं है । जो क्रम यहाँ पर बतलाया गया है, उसका ही अनुकरण करना आवश्यक है । इस प्रकार कर्णिकाओं में हाकिनी, त्रिकोण, उसके ऊपर इतर लिङ्ग तथा त्रिकोण में उसके ऊपर प्रणव तथा सबसे अन्त में प्रणव के ही ऊपर मानस का ध्यान करना चाहिए ।

आज्ञाचक्रध्यानफलम्

ध्यानात्मा साधकेन्द्रो भवति परपुरे शीघ्रगामी मुनीन्द्रः
सर्वज्ञः सर्वदर्शी सकलहितकरः सर्वशास्त्रार्थवेत्ता ।

अद्वैताचारवादी विलसति परमापूर्वसिद्धि-प्रसिद्धो
दीर्घायुः सोऽपि कर्त्ता त्रिभुवनभवने संहृतौ पालने च ॥ ३४ ॥

भाष्य—श्रेष्ठ साधक जिसकी आत्मा केवल इसी पद्म पर रहती है, उसे इच्छानुसार परकाया प्रवेश का अधिकार प्राप्त हो जाता है तथा उसकी गणना अग्रगण्य मुनियों में होती है। ऐसा साधक अद्वैतवादी कहा जाता है। यह साधक कैसा होता है ? प्रकृष्ट आदि सिद्धियों को अर्जित करने में समर्थ होता है, अतः दीर्घायु होता है। वह सर्वज्ञ और सर्वद्रष्टा भी हो जाता है और सर्वदा सर्व भूतों के कल्याण में रत रहता है। सर्व शास्त्रों का ज्ञानी वन जाता है तथा तीनों लोकों की सृष्टि, पालन और संहार करने की अद्भुत क्षमता भी उसमें होती है। ब्रह्म के साथ अपनी एकाकारता के वोध की अनुभूति भी उसे हो जाती है, अतः ब्रह्मा, विष्णु और शिव के साथ एकात्म रहता है।

व्याख्या—इस पद्म में ध्यान करने से क्या लाभ होते हैं ? इसकी चर्चा इस श्लोक में की गई है।

ध्यानात्मा—उक्त प्रकार ध्यानपरायण साधक।

परपुरे शीघ्रगामी—शीघ्र परकाया प्रवेश कर सकता है।

मुनीन्द्रः—मुनियो में श्रेष्ठ, क्योंकि वह ध्यानयोग आदि की क्रियाएँ सम्पन्न करता है।

सर्वज्ञः समदर्शी—उसका व्यवहार विवेक और बुद्धि के अनुसार शास्त्र-सम्मत होता है।

अद्वैताचारवादी—उसे यह वोध रहता है कि यह ब्रह्माण्ड तथा इसके समस्त भौतिक पदार्थ ब्रह्म हैं—'पादोऽस्य भूतानी' 'तदिदं सर्वं ब्रह्म' 'अहं देवो न चान्योऽस्मि' 'ब्रह्मैवास्मि न शोकभाक्।' उसका श्रुति के उक्त कथनों—ब्रह्माण्ड उसका पाद है अर्थात् अंश है, जो भी दिखलाई पड़ता है वह ब्रह्म है, मैं देव हूँ देव के अतिरिक्त कुछ भी नहीं, अतः शोक से मुझे क्या लेना-देना इत्यादि में उसकी दृढ निष्ठा और विश्वास रहता हैं। वह केवल ब्रह्म को सद्वस्तु मानता है और इसके अलावा अन्य को असद् वस्तु। उसे यह ज्ञान रहता है कि प्रपञ्चसमुदाय ब्रह्म के प्रकाश से ही भासमान है। यही अद्वैत की धारणा है। इस प्रकार के ज्ञान से उसे यह अनुभूति हो जाती है कि जीवात्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं है। वह इसी रूप का चिन्तन करता है और यही शिक्षा भी देता है; अतः वह वास्तव में अद्वैतवादी है।

परमापूर्वसिद्धिः—इसे महासिद्धि कहते हैं। इससे साधक को उत्कृष्ट शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

सोऽपि कर्त्ता त्रिभुवनभवने—यह एक प्रकार से [illegible] की प्रशंसा के रूप

में प्रयुक्त हुआ है। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि साधक का देहान्त होने पर परमात्मा में लय हो जाता है और इस रूप में परमात्मा के साथ एक हो जाने पर वह सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कर्ता हो जाता है अथवा वह ऐसा बन जाता है; यह तात्पर्य है।

आज्ञाचक्रस्थ-प्रणवस्वरूपम्

तदन्तश्चक्रेऽस्मिन् निवसति सततं शुद्धबुद्धचन्तरात्मा
प्रदीपाभज्योतिः प्रणवविरचनारूपवर्णप्रकाशः।
तदूर्ध्वे चन्द्रार्द्धस्तदुपरि विलसद्बिन्दुरूपी मकार-
स्तदूर्ध्वे नादोऽसौ बलधवलसुधाधारसन्तानहासी॥ ३५॥

भाष्य—यहाँ अर्थात् इस चक्र के ऊर्ध्व में निरन्तर प्रणव का निवास या स्थिति है। इस प्रणव की रचना ऊकार रूप में अ और उ अक्षरों के रूप में प्रकाशमान है। किस प्रकार? यह अन्तरात्मा शुद्धबुद्धि स्वरूप है। इसकी प्रदीप्त आभा ज्योति के सदृश है। इसके ऊपरी भाग में अर्धचन्द्र है। ॐकार के ऊपर अर्धचन्द्र है तथा इस अर्धचन्द्र के भी ऊपर विन्दु है जो मकार है। विन्दु रूप में मकार प्रकाशमान है। इसके ऊपर नाद है, जिसका आकार वक्र है। इसका धवल वर्ण वलराम के समान है तथा चन्द्र-किरणों को पराभूत कर रहा है। जल के जलकणों के धवलामृत वर्ण से भी अधिक दीप्तिमान है। यहाँ पर पाठ इस रूप में होना चाहिए—'जलधवलसुधाधारसन्तानहासः'।

व्याख्या—ग्रन्थकार ने इस श्लोक में यह बतलाया है कि आज्ञाचक्र में प्रणव की स्थिति है। इसको प्रमाणित करने के लिए वे कहते हैं कि इस चक्र में और त्रिकोण में, जिसकी चर्चा पहले की गई, निरन्तर अक्षर अ और उ संयुक्त रूप में विद्यमान हैं। अ और उ की सन्धि करने पर व्याकरण के नियमानुसार तेरहवाँ स्वर 'ओ' बनता है। इन अक्षरों की यह सन्धि शुद्धबुद्धचन्तरात्मा है, अर्थात् अन्तरात्मा जो शुद्धबुद्धि के रूप में अभिव्यक्त है। प्रदीपाभज्योतिः—उसकी विशेषता है—प्रदीप ज्योति। यहाँ पर यह शंका की जा सकती है कि क्या तेरहवाँ स्वर 'ओ' ही शुद्धबुद्धचन्तरात्मा है? इस शंका को निर्मूल करने के लिए ही ग्रन्थकार ने यह बतला दिया है—'तदूर्ध्वे चन्द्रार्द्धस्तदुपरि विलसद्विन्दुरूपी मकारः'। अर्थात् 'इसके ऊपर अर्धचन्द्र है।' ऐसा करने के लिए अर्धचन्द्र (नाद) और विन्दु 'ओ' के साथ जोड़ दिया गया है। इस प्रकार प्रणव ॐ की रचना हो गई।

अब आगे इसके विशेष गुणों पर प्रकाश डाला गया है।

प्रदीपाभज्योतिः—यह तेरहवाँ स्वर स्वयमेव कैसे 'शुद्धबुद्धचन्तरात्मा' हो गया? इस प्रश्न का निवारण करने के लिए कहा गया—

तदूर्ध्वे चन्द्रार्द्धः—इसके ऊपर अर्धचन्द्र है।

तदुपरि विलसद्बिन्दुरूपी मकारः—इस प्रकार यह स्पष्ट किया गया है कि अर्धचन्द्र और विन्दु (अनुस्वार) को तेरहवें स्वर के ऊपर रख देने से प्रणव की रचना पूर्ण रूप से हो गई।

तदूर्ध्वे नादोऽसौ—प्रणव के ऊपर अवान्तर नाद है। अवान्तर का तात्पर्य अन्तिम या दूसरे से लिया जाता है। यही नाद बलदेव के श्वेतवर्ण अथवा चन्द्र के वर्ण के समान बतलाया गया है—'बलधवलसुधाधारसन्तानहासी। इसका अर्थ हुआ कि यह अत्यन्त धवल है। इस धवल और श्वेत की तुलना नहीं की जा सकती, अर्थात् अतुलनीय है। बलदेव और चन्द्रमा की किरणें तो इसके सदृश हैं ही नहीं। नाद अतिशय शुक्लवर्ण का है।

कुछ लोगों का कथन है कि इसका पठन 'तदाद्ये नादोऽसाविति' के रूप में करते हैं तथा इसका अर्थ करते हैं—'नीचे बिन्दु-रूपी मकार नाद है।' किन्तु यह सत्य नहीं है। मूल पाठ में कहा गया है कि 'इसके ऊपर पुनः मकार है जो बिन्दुरूप में भासमान है'। और इसके नीचे भी नाद है। ऐसा होने से इस कथन की पुनरावृत्ति व्यर्थ होगी कि नाद नीचे है।

इसके अतिरिक्त यह नाद नादातीता है, जो प्रणव का अवयव-विशेष है और भिद्यमान पर बिन्दु का भाग है, जिसे प्रणव के ऊपर बतलाया गया है। यदि इस बात पर बल देते हैं कि विशिष्ट प्रणव का वर्णन विस्तार से किया जाय और यह शंका भी की जाय कि इसे दूसरा नाद क्यों कहते हो जो उपयुक्त नहीं है, ऐसी स्थिति में 'तदाद्ये नादोऽसौ' ही पाठ मानना उचित है। इस प्रकार पाठ मानने पर इसका अर्थ इस ढंग से करना होगा—'बलधवल-सुधाधारसन्तानहासी।' यही नाद जिसे बिन्दु-रूपी मकार के नीचे बतलाया गया, वही 'बलधवलसुधाधारसन्तानहासी' है तथा पहले जिस नाद का उल्लेख किया गया उसे भी इस प्रकार बतलाया गया। अतः इस प्रकार की पुनरावृत्ति में कोई दोष नहीं है, क्योंकि 'न तु विशिष्टस्य विधानम्' अर्थात् बड़े लोगों के लिए कोई बन्धन नहीं होता है।

आज्ञाचक्रे प्रणवयोगनिरूपणम्

इह स्थाने लीने सुसुखसदने चेतसि पुरं
निरालम्बां बद्ध्वा परमगुरुसेवासुविदिताम्।
तदभ्यासाद् योगी पवनसुहृदां पश्यति कणान्
ततस्तन्मध्यान्तः प्रविलसितरूपानपि सदा॥ ३६॥

भाष्य—इस स्थान पर अर्थात् सुखसदन में योगी अपने चेतस् को लीन

कर देता है तो परम गुरु की सेवा के प्रतिफलनस्वरूप उसे जो ज्ञान प्राप्त हुआ है तथा चेतस् निरन्तर के अभ्यास से निरालम्ब मुद्रा द्वारा अपने को यहाँ पर लीन कर लेता है। यही परमानन्द का स्थान है। यहाँ पर वह त्रिकोण के ऊपर तथा मध्य शून्यदेश में कला के दर्शन करता है। इसकी अनुभूति योगीजन ही जानते हैं। इस स्थान में चेतस् का लीन होना महान् आश्चर्य का विषय है। यदि होता है तो निरालम्ब मुद्रा से ही सम्भव है। इसके मध्य में अम्बर का स्थान है। यह भी स्थूल रूप में दृष्टिगत होता है।

व्याख्या—पहले प्रणव का निरूपण किया गया और अब प्रणव के साथ चेतस् के योग की चर्चा आरम्भ हो रही है।

पुरं बद्ध्वा—योगी के लिए आवश्यक है कि वह पुर का बन्धन करने के पश्चात् अथवा पुर को संरुध्य करके उस पर अपने मन को लगाये। इसका तात्पर्य यह है कि अन्तःपुर का रोध करे, अर्थात् योनिमुद्रा निर्धारित ढंग से करे, जिससे इसका पूर्णतया रोध हो जाय। इस मुद्रा से बाँध कर इस स्थान पर आज्ञाचक्र में इसका अभ्यास करे और पुनः प्रणव का ध्यान करे। यहाँ पर पुर शब्द योनिमुद्रा के लिए प्रयुक्त किया गया है। इसके पश्चात् जब निरन्तर अभ्यास के फलस्वरूप अथवा प्रणव का ध्यान करने के कारण चेतस् इसमें (आज्ञाचक्र में) सम्पूर्ण रूप से, तदनन्तर उसे अन्दर और त्रिकोण के शून्यदेश में ऊपर जहाँ प्रणव है, अग्नि के स्फुलिंग कण के समान अथवा ज्योति के स्फुलिङ्ग उसके मानस के सम्मुख दृष्टिगोचर होते हैं।

श्रुति में इसको इस प्रकार कहा गया है—'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।'

ज्योति के स्फुलिङ्ग जो उसके मानस को दृष्टिगोचर होते हैं, वे त्रिकोण के ऊपर के भाग में ही दिखलाई पड़ते हैं, जहाँ प्रणव की स्थिति है। यहीं पर सम्पूर्ण विभव और विभुत्व सर्व व्यापक रूप से स्थित है।

योनिमुद्रा से ही अन्तःपुर को रोधित किया गया तथा वाह्य जगत् से उसके सम्बन्ध या बन्धन को काटा गया। मानस की शुद्धि और स्थिरता तब तक नहीं होती है, जब तक मानस को भौतिक जगत् के पदार्थों की कामना से पूर्णतया अलिप्त न कर लिया जाय। अतः इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए योनिमुद्रा नितान्त आवश्यक ही नहीं, अपितु अपरिहार्य है।

पुर का बन्धन करने के लिए जो योनिमुद्रा बतलायी गयी है, उसका विवेचन इस प्रकार है—

'ततो गुह्ये वामपादपार्ष्णि तु विनिवेशयेत्।
तस्योपरि महादेवि दक्षपार्ष्णि निवेशयेत् ॥

ऋजुकायशिरोग्रीवः काकचञ्चुपुटेन च ।
आकारेण बहिर्वायुं जठरं परिपूरयेत् ॥
अङ्गुलीभिर्दृढं बध्वा करणानि समाहितः ।
अङ्गुष्ठाभ्यामुभे श्रोत्रे तर्जनीभ्यां विलोचने ॥
नासारन्ध्रे च मध्याभ्यामन्याभिर्वदनं दृढम् ।
बुद्धयात्मप्राणमनसामेकत्वं तन्मनुं स्मरन् ॥
धारयेन्मारुतं सम्यग् योगोऽयं योगिवल्लभः ॥

योनि-मुद्रा—'वाम पैर की एड़ी को गुदा के विपरीत तथा दक्षिण एड़ी को वाम पैर पर रखकर अपना शरीर सीधा रखकर वैठे। शिर, कण्ठ और शरीर एक सीधी रेखा में रहें। इसके बाद अपने ओठों को काक की चोंच (चञ्चु) के समान वनाये। यह काकीमुद्रा बतलायी गयी है। श्रुति का कथन है कि जव वायु इस मुद्रा से अन्दर ली जाती है तथा कुम्भक द्वारा उसको रोका जाता है तो मन में स्थिरता आती है। काकमुद्रा के द्वारा वायु को श्वास लेकर अपने पेट को पूरी तौर पर भर लिया जाय। इसके पश्चात् कर्ण-छिद्रों को अँगूठे से वन्द कर लिया जाय तथा तर्जनी अँगुली से नेत्रों को वन्द किया जाय। नासारन्ध्रों को मध्यमा अंगुली से वन्द कर ले और शेष अँगुलियों से मुख को बन्द करलिया जाय और वायु को अन्दर ही रोका जाय अर्थात् कुम्भक के द्वारा। इन्द्रियों को नियंत्रित कर मंत्र का ध्यान किया जाय, जिससे साधक को प्राण और मानस के एकत्व की अनुभूति होती है। यह योग योगियों को अत्यन्त प्रिय है।'

इस मुद्रा से वायु का रोध होता है तथा मन में स्थिरता आती है। श्रुति का कथन है—'एवं हंसवशान्मनो विचर्यंते इतस्ततो विषयेषु भ्रमति, तत्संयमेन मनः संयमो जायते।' हंस के प्रभाव से मन इधर-उधर भागता है, विविध विषयों में जाता है तथा उस पर संयम करने से मन का संयम हो जाता है। अथवा पुरं का अर्थ है—खेचरी मुद्रा से रोध करना। इससे भी मन स्थिर हो जाता है। कथन है—

'चित्तं चरति खे यस्माज्जिह्वा चरति खे यतः ।
तेनेयं खेचरी मुद्रा सर्वसिद्धनमस्कृता ॥'

'इससे चित्त ब्रह्मन् (ख) में विचरण करता है तथा उच्चरित शब्द भी ख (आकाश) में विचरण करते हैं, अतः खेचरी मुद्रा का सर्वसिद्धों ने सम्मान किया है।'

'ख' के तीन अर्थ बतलाये गये हैं—आकाश, ब्रह्म और भ्रूओं के मध्य का स्थान (आज्ञा)। इस श्लोक की टीका में ब्रह्मानन्द ने हठयोगप्रदीपिका

में इसका अर्थ भ्रूओं के मध्य स्थान (आज्ञा) से लिया है। एक अन्य स्थान पर इसी टीका में श्लोक ५५ की व्याख्या में इसका अर्थ ब्रह्मन् किया है।

ज्ञानार्णवतंत्र में उल्लेख है—'उन्मन्या सहितो योगी न योगी उन्मनीं विना।' अर्थात् योगी सदैव उन्मनी के साथ संयुक्त रहता है। उन्मनी के बिना योगी नहीं। 'उत' का अर्थ है—विना और मनी का अर्थ है—मानस।

प्रणव ज्योति के स्फुलिङ्गों से वेष्टित या घिरा रहता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अन्यत्र आलेख है—

'तदूर्ध्वे प्रणवाकारमात्मानं दीपसन्निभम्।
स्फुलिङ्गज्योतिरिङ्गाभैर्वेष्टितं परितः शुभम् ॥'

'इसके ऊपर दीपशिखा के समान शुभ आत्मा है तथा यह चारों ओर से स्फुलिङ्गों से घिरी हुई है। यह प्रणवाकार है।

सुसुखसदने—जहाँ पर सदैव सुख ही रहता हो, ऐसा सदन। यही ऐसा स्थान है, जहाँ आनन्द की प्राप्ति होती है और उसमें कोई भी बाधा नहीं आ सकती। यह शब्द इह स्थाने का परिचायक है, जिसका तात्पर्य आज्ञा-चक्र से है।

निरालम्बाम्—पुर कैसा है ? उसका आधार नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसा स्थान जहाँ मानस का जगत् के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है—निर्लिप्त हो चुका तथा निस्सीम की अनुभूति होने के फलस्वरूप उसके साथ ऐक्य स्थापित हो गया। एक अर्थ यह भी है कि मन का विषयों से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया।

धूततंत्र में उल्लेख है—

'त्यजेत् शैथिल्यमङ्गानां नासाग्रे रोपयेद् दृशौ।
मुखं विवृणुयात् किञ्चित् दन्तैर्दन्तान् न संस्पृशेत् ॥
रसनामन्तरा कुर्यादनङ्गे धारयेन्मनः।
इयं सा परमा मुद्रा निरालम्बेति पञ्चमी ॥

परमगुरुसेवासुविदिताम्—परमः—अतिश्रेष्ठ। गुरु को परम्परा से ही योगाभ्यास का ज्ञान रहता है। अतः वे इसमें निपुण होते हैं। ऐसे गुरु की सेवा करने के प्रतिफलस्वरूप ज्ञान प्राप्त होता है, यह सर्वविदित है। कहा गया है—'गुरूपदेशात् तदगम्यं नान्यथा शास्त्रकोटिभिः।' गुरु के उपदेश से ही इसका ज्ञान होता है। कोटि शास्त्रों के अध्ययन से भी यह सम्भव नहीं।

पवनसुहृदां प्रविलसितरूपान्—अग्नि के कण प्रकृष्ट रूप से भासमान हैं। पवन को अग्नि का सुहृद इसलिये कहा गया है कि जब पवन का झोंका आता है तो अग्नि का प्रसार और अधिक हो जाता है।

आज्ञाचक्रे परमशिवस्थितिवर्णनम्

ज्वलद्दीपाकारं तदनु च नवीनार्कबहुल-
प्रकाशं ज्योतिर्वा गगनधरणीमध्यमिलितम् ।
इह स्थाने साक्षाद् भवति भगवान् पूर्णविभवो-
ऽव्ययः साक्षी वह्नेः शशिमिहिरयोर्मण्डल इव ॥ ३७ ॥

भाष्य—योगी यहाँ पर वह्नि कण के अवान्तर रूप में जलते हुए दीपक के आकार में प्रकाश देखता है। यहाँ पर गगन और धरणी के बीज के मध्य में स्थित ज्योति है। यह ज्योति किस प्रकार की है? इसका प्रकाश प्रातःकालीन सूर्य के प्रकाश सदृश बतलाया गया है। इस स्थान पर अर्थात् जहाँ चेतस् लीन है, श्रीभगवान् का साक्षात्कार होता है। किस प्रकार? यहाँ पर पूर्ण वैभव और ज्ञान के साथ उनकी अभिव्यक्ति होती है। वे अव्यय हैं, अतः सर्व के साक्षी। वे यहीं पर हैं। वह्नि, चन्द्र और सूर्यमण्डल की भाँति प्रकाशित हैं, अर्थात् तेजोमय। एक मत के अनुसार इसका पाठ 'ज्वल-द्दीपाकारान्' है।

व्याख्या—ऐसे योगियों को वह्निकणों के अतिरिक्त अन्य प्रकार से दर्शन होते हैं। स्फुलिङ्ग देखने के बाद वे ज्योति देखते हैं। यही ज्योति ज्वल-द्दीपाकार है।

तदनु—वह्निकण के दर्शन के बाद ज्योति दिखलाई देती है। यह ज्योति जलते हुए दीप की ज्योति बतलायी गई है।

गगनधरणीमध्यमिलितम्—ज्योति का वर्णन किया गया है। यह विशेषण ज्योति के लिए प्रयुक्त हुआ है।

गगनम्—उसके ऊपर अर्थात् शङ्खिनी नाड़ी जहाँ पर है, उसके ऊर्ध्व में गगन अर्थात् आकाश है। इसको श्लोकचालीसा में अधिक स्पष्ट किया गया है—'तदूर्ध्वे शङ्खिन्या निवसति शिखरे शून्यदेशे विकासम्'। इससे यह प्रदर्शित किया गया कि शंखिनी नाड़ी के ऊपर शून्य रूप में गगन है। धरणी मूलाधार स्थित धरामण्डल है। इन दोनों के मध्य अर्थात् मूलाधार से सहस्रार-पर्यन्त यह ज्योति व्याप्त है। वा शब्द को समुच्चय अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

अब आज्ञाचक्र से सहस्रार तक परमशिव की स्थिति बतलायी जा रही है।

इह स्थाने—इस स्थान में अर्थात् आज्ञाचक्र में परमशिव ठीक वैसे ही है, जैसे सहस्रार में हैं।

भगवान्—परम शिव।

इस स्थाने साक्षाद्भवति—वे यहाँ पर हैं।

अब भगवान् की विशेषता बतलाते हैं—

पूर्णविभवः—यह शब्द भगवान् का विशेषण है तथा इस शब्द से अन्य अनेक गुणों या शक्तियों पर भी प्रकाश डाला गया है, जो इस प्रकार है—

पूर्णः—स्वयं में पूर्ण। विभवः—असीम शक्तियाँ जैसे सृष्टि-रचना आदि। ऐसी दशा में इस शब्द का अर्थ होगा जो अनन्त सृष्टि की रचना (प्रपञ्च-समुदाय) और संहार करने में सम्पूर्ण रूप में सक्षम है तथा ब्रह्माण्ड का आधार भी है।

विभव का आशय यह भी है कि वह सर्वव्यापक और निस्सीम है। पूर्ण विभव का तात्पर्य यह भी है कि उसी से इस निस्सीम ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति है। श्रुति का वचन है—'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।' जिससे इन सबकी उत्पत्ति हुई और उद्भव के वाद ये जिसमें जीवित रहते हैं और अन्त में उसी में लीन अथवा प्रविष्ट हो जाते हैं।'

विभव का अर्थ विभुत्वपूर्ण भी है। इसे सर्वव्यापक भी कहा गया है। 'पूर्णत्वं फलानुपहितविषयितानास्पदेच्छाकत्वम्'—जो परिणाम या फल से अनुपहित होकर कामना नहीं करता है और न किसी विषय से ही राग रखता है, वह हमारे लिये निगूढ़ है। उसके रहस्यों को जानना वुद्धि से परे की वात है, क्योंकि हम तो माया के वन्धनों में सीमित हैं।

परमशिव की स्थिति के सम्बन्ध में निर्वाणतंत्र का कथन है—

'एतत्पद्मस्योर्ध्वदेशे ज्ञानपद्मं सुदुर्लभम्।
पत्रद्वयसमायुक्तं पूर्णचन्द्रस्य मण्डलम्॥'

इस पद्म के ऊपर ज्ञान पद्म है। इसे प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। इसमें दो दल हैं और यही चन्द्रमण्डल है।

यह भी उल्लेख है—'शम्भुवीजं हि तन्मध्ये साकारं हंसरूपकम्।' अर्थात् इसके मध्य में शंभुवीज हंस के स्वरूप में है। कहा भी है—

"एवं हंसो मणिद्वीपे तस्य क्रोडे परः शिवः।
वामभागे सिद्धकाली सदानन्दस्वरूपिणी॥'

अर्थात् 'हंस मणिद्वीप में है और उसके अङ्क में परमशिव सिद्ध काली के साथ है, जो वाम में हैं। वे स्वयमेव परमानन्दा हैं।'

सहस्रार का वर्णन करते हुए कहा गया है—

'बिन्दुद्वयं तु तन्मध्ये विसर्गरूपमव्ययम्।
तन्मध्ये शून्यदेशे तु शिवः परमसंज्ञकः॥'

'वहाँ दो विन्दु मध्य में हैं, जिनसे अविनाशी विसर्ग की रचना होती है।' अन्दर जो शून्यदेश है, उसमें परमशिव हैं।' ये सहस्रार में हैं, अतः आज्ञाचक्र में भी बतलाये गये हैं। पर-विन्दु आज्ञाचक्र में है और ॐ का विन्दु इसका प्रतीक है।

हमें यह बोध होना चाहिए कि ये दोनों शिव और शक्ति यहाँ माया के वन्धन मकारात्म पर-विन्दु रूप में आच्छादित हैं, अर्थात् माया से घिरे हैं। इस सन्दर्भ में निम्न मत जो आज्ञाचक्र से सम्वन्धित है, उल्लेखनीय है—

'उत्कलादिमतेऽत्रैव　　चणकाकाररूपिणी।
सृष्टिं करोति भूतानि अत्र स्थित्वा सनातनी॥'

'वे अनादि आज्ञाचक्र में चणकाकार (कनक के दाने के सदृश) रूप में सदैव यहाँ निवास करती हैं और भूतों का सृजन करती हैं।' यहाँ पर इसको इस प्रकार कहा गया है कि परमशिव यहाँ पर कनक के दाने के रूप में सदैव निवास करते हैं तथा उत्कलादिमत के अनुसार सृष्टि भी करते हैं।

वह्नेः शशिमिहिरयोर्मण्डल इव—दृष्टान्त रूप में वह्नि इत्यादि। जैसे भगवान् अग्नि, चन्द्र और सूर्यमण्डल में हैं, उसी प्रकार यहाँ भी हैं। अथवा यह भी हो सकता है कि ग्रन्थकार का तात्पर्य यह बतलाना हो कि जिस प्रकार भगवान् सहस्रार के अग्नि, चन्द्र और सूर्यमण्डल में कनक के दाने के रूप में रहते हैं, उसी प्रकार वे यहाँ भी रहते हैं। सहस्रार पद्म में स्थित अग्नि, चन्द्र और सूर्यमण्डल की चर्चा आगे की जायेगी। पीठपूजा में परमात्मा और ज्ञानात्मा की पूजा अर्क, इन्दु और अग्निमण्डल में ही करनी चाहिए। परमात्मा का तात्पर्य परमशिव से और ज्ञानात्मा का ज्ञानशक्ति से है। बिन्दु का ध्यान कनक के दाने के रूप में करना चाहिए और यह भावना रहनी चाहिए कि शिव और शक्ति का यह अभिन्न अनादि युगल इसी में है।

आज्ञाचक्रे योगेन प्राणत्यागफलम्

इह स्थाने विष्णोरतुलपरमामोदमधुरे
समारोप्यं प्राणं प्रमुदितमनाः प्राणनिधने।
परं नित्यं देवं पुरुषमजमाद्यं त्रिजगतां
पुराणं योगीन्द्रः प्रविशति च वेदान्तविदितम्॥ ३८॥

भाष्य—यह विष्णु का अतुलनीय तथा मधुर और आमोदपूर्ण धाम है। श्रेष्ठ योगी प्राण से वियोग होने के समय प्रसन्न मन से अपने प्राण को यहाँ पर ले आता है तथा देह छोड़ने के बाद परम पुरुष में प्रवेश करता है और

निर्वाणभुक्ति प्राप्त कर लेता है। परम कैसे हैं? सभी के अन्तरात्मा हैं, नित्य और अविनाशी हैं, दिव्यातीत हैं, अनादि और अजन्मा हैं, पुरातन हैं, सृष्टि-स्थिति और प्रलय के कारण हैं, वेदान्त के द्वारा ही ज्ञेय हैं।

व्याख्या—अब यह चर्चा आरम्भ की जाती है कि आज्ञाचक्र में योग के द्वारा प्राण त्यागने से क्या फल प्राप्त होता है?

इस श्लोक का अर्थ है कि जो योगीन्द्र अथवा साधक (प्राणनिधने) प्राण को छोड़ने के समय (प्रमुदितमनाः) मुदित मन से अथवा आत्मानन्द पूर्वक (इह) आज्ञाचक्र में जो विष्णु का (स्थाने) धाम है अर्थात् बतलाया गया उपदिष्ट विन्दु है (समारोप्य प्राणं) प्राण का समारोपण कर प्राण को छोड़ता है, और परम पुरुष में (प्रविशति) प्रवेश करता है।

परं पुरुष कैसे हैं? (नित्यं देवं) अविनाशी देव हैं। देव सृष्टि, स्थिति औरे प्रलय को क्रीड़ा के रूप में करते हैं। वे (अजं) अजन्मा अर्थात् जन्म रहित हैं। वे (त्रिजगदामाद्यम्) अर्थात् वे सबके कारण हैं, क्योंकि वे अनादि हैं। उनसे पूर्व कुछ भी नहीं था।

त्रिजगत्—भूः, भुव, स्वः—गायत्री की व्याहृतियाँ।

पुराणपुरुष—पुरातन पुरुष।

वेदान्तो—ब्रह्म का निरूपण करने वाले श्रुतिवाक्य आदि जिनसे उसका ज्ञान होता है।

भगवद्गीता के अध्याय आठ के श्लोक नौ और दस इस सन्दर्भ में तुलनीय हैं, जो इस प्रकार हैं—

'कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयां समनुस्मरेद् यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ ९ ॥
प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पूरुषमुपैति दिव्यम्' ॥ १० ॥

नवें श्लोक का अर्थ है—'सर्वज्ञ अनादि सर्वनियन्ता सूक्ष्मातिसूक्ष्म सभी कर्मफलों के विभाग करने वाले अपरिमित महिमावाले सूर्य के समान प्रकाश वाले और अज्ञान से परे परमात्मा का जो चिन्तन करता है'।

ध्येय और गन्तव्य पुरुष में विशेषण देते हैं—'कविमि'त्यादि से। कविम्—'क्रान्तदर्शिनं सर्वज्ञं पुराणं चिरन्तनम्'। इस विशेषण से अतीत और अनागत अर्थात् भूत, भावी तथा वर्तमान वस्तुदर्शी होने से सर्वज्ञ है। सर्व-कारण होने से अनादि है तथा सम्पूर्ण जगत् का अन्तर्यामी है। अणु से भी छोटा है, क्योंकि उसका भी वह उपादानकारण है। सम्पूर्ण फलसमुदाय का

धारक है अर्थात् प्राणियों को विभक्त करने वाला है। इसमें प्रमाण 'फलमत उपपत्तेः' यह सूत्र है। अपरिच्छिन्न महिमा होने से उसका स्वरूप चिन्तन करने के योग्य नहीं है। सूर्य के समान सम्पूर्ण जगत् के प्रकाशनक्षम वर्ण है अर्थात् प्रकाश है। जिस सम्पूर्ण जगत् का प्रकाशक अतएव अन्धकार से पर मोहान्धकार जो अज्ञानस्वरूप है, उससे प्रकाशक स्वरूप होने से उसका विरोधी अतएव भिन्न है। जो कोई भी उसका ध्यान करेगा वह उसी में जायेगा, यह पूर्व के साथ सम्बन्ध है, अथवा वह परम प्रकाश है, परम प्रकाशरूप दिव्य पुरुष को प्राप्त करता है, इस उत्तर के साथ सम्बन्ध करना।

दसवें श्लोक का अर्थ है—वह पुरुष मृत्यु-काल में योगबल से तथा स्थिर मन से भक्तिपूर्वक प्राण को दोनों भौहों के बीच में स्थापित कर दिव्य परम पुरुष को प्राप्त करता है।

किस समय उसके ध्यान के लिए प्रयत्न करना अपेक्षित है, उसको कहते हैं—'प्रयाणकाले' से। प्रयाणकाल—मरण में निश्चल एकाग्र मन से उस पुरुष का जो अनुस्मरण करेगा। 'अनुस्मरेत्' की यहाँ अनुवृत्ति है। कीदृश पुरुष स्मरण करे जो परमेश्वर विषयक उत्कृष्ट प्रेम से युक्त है, समाधि के बल से अर्थात् तदुत्पन्न संस्कारसमूह से जो कि व्युत्थान संस्कार का विरोधी है, उससे युक्त। इस प्रकार प्रथम हृदयकमल में प्रवेश करके अनन्तर ऊर्ध्वगामी जो प्रसिद्ध सुषुम्णा नाड़ी है, उससे गुरु कथित मार्ग से भूमि-जय क्रम से दोनों भ्रुवों के मध्य में जो आज्ञाचक्र है, उसमें प्राण को स्थापित कर प्रमादरहित होकर ब्रह्मरन्ध्र से उत्क्रान्त होकर वह उपासक चिरन्तन कवि जो पूर्वोक्त लक्षण द्योतनात्मक प्रकाशात्मक दिव्य पुरुष है, उसको प्राप्त होता है।

इस सन्दर्भ में शंकराचार्य की टीका भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

प्राणारोपणप्रकार

यह जानकर कि अब प्राण के प्रयाण की वेला आ पहुँची है, योगी अत्यन्त प्रसन्न हो जाता है, क्योंकि उसकी ब्रह्म में लीन होने की आकांक्षा पूरी होने वाली है। अतः योगी योगासन में बैठ जाता है और कुम्भक के द्वारा वायु को अर्थात् अपने श्वास और प्रश्वास का रोध कर लेता है। इसके पश्चात् जीवात्मा को जो हृदय में है, मूलाधार में लाता है तथा गुदा का संकुचन कर तथा अन्य निर्दिष्ट माध्यमों का सहारा लेकर कुण्डलिनी को जागृत (उत्थाय) कर उस नाद पर ध्यान केन्द्रित करता है, जो मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त विद्युताकार में परमानन्दमय है। तन्तु रूप में स्थित अतिसूक्ष्म रूप में नाद है, जिसका सार या तत्त्व कुण्डलिनी-माया है। इसके बाद वह हंस को जो प्राण-स्वरूप में

परमात्मा है, नाद में लय कर देता है तथा इसे जीव सहित चक्रभेद क्रमपूर्वक आज्ञाचक्र में लाता है। यहाँ पर वह समस्त स्थूल और सूक्ष्म तत्त्वों को क्रमानुसार पृथिवी आदि प्रपञ्च समुदाय को कुण्डलिनी में जो यहाँ पर है, लय कर देता है। इसके वाद पुनः अथवा सबके अन्त में जीवात्मा का कुण्डलिनी सहित जो यहाँ पर स्थित है, शिव शक्तिमय विन्दु से मिलन करा देता है। यह करने के उपरान्त ब्रह्मरन्ध्र का भेदन कर देह छोड़ कर ब्रह्म या पुराण पुरुष में लीन हो जाता है।

महावाक्यार्थनिर्णयः

आज्ञाचक्र द्विदल कमल है और इसका श्वेतवर्ण है। इसके दो दलों पर 'ह' और 'क्ष' चित्र-विचित्र वर्ण हैं, जिनका वर्ण श्वेत है। चक्र की अधिष्ठात्री हाकिनी शक्ति कमल की कर्णिकाओं में हैं। वे शुक्लवर्णा हैं तथा उनके छः रक्ताभ वर्ण के मुख हैं। वे त्रिनेत्रा और छः भुजाओं वाली हैं तथा श्वेतवर्ण का कमल उनका आसन है। वे उसी पर विराजमान हैं। दो हाथों से वर और अभयमुद्रा का प्रदर्शन कर रही हैं। एक हाथ में रुद्राक्ष की माला है तथा अन्य में कपाल, दुन्दुभि और पुस्तक है। उनके ऊर्ध्व त्रिकोण में विद्युताकार और शुक्लवर्ण का इतरलिङ्ग है। उसके ऊपर दूसरे त्रिकोण में प्रणवाकृति अन्तरात्मा है जो प्रदीप ज्योतिमय अर्थात् दीप की ज्योति के सदृश है। इसकी चारों दिशाओं में, अन्तरिक्ष में ज्योति के स्फुलिङ्ग जलते हुए दीपक सदृश ज्योति को घेरे हुए हैं। यह ज्योति अपनी ही प्रभा से मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त सभी को प्रकाशित कर रही है। इसके भी ऊर्ध्व मानस है और मानस के ऊपर चन्द्रमण्डल में हंस है और इसी के अङ्क में परमशिव हैं, जिनके वामपार्श्व में परमाशक्ति हैं।

श्रीपूर्णानन्दयति विरचित श्रीतत्वचिन्तामणि में
षट्चक्रनिरूपण के छठें अध्याय का
छठा प्रकरण समाप्त।

सप्तमप्रकरणम्

आज्ञाचक्रोर्ध्वे महानाददर्शनफलम्

लयस्थानं वायोस्तदुपरि च महानादरूपं शिवार्द्धं
सिराकारं शान्तं वरदमभयं शुद्धबुद्धिप्रकाशम्।
यदा योगी पश्येद् गुरुचरणयुगाम्भोजसेवासुशील-
स्तदा वाचां सिद्धिः करकमलतले तस्य भूयात् सदैव ॥ ३९ ॥

भाष्य—यह स्थान वायु का लय स्थान है। इसके ऊपर महानाद रूप को जो योगी देख लेता है, उसके लिए वाक्सिद्धि साधारण सिद्धि के समान है। कैसे? शिव हकार है। उसके आकार में शिव देवी का अर्धाङ्ग शरीर है। पूरा शरीर हरगोरी की मूर्ति के सदृश है। वे शान्त और सौम्य हैं। वर और अभय प्रदान करते हैं। बुद्धिमानों के लिए प्रकाशस्वरूपा हैं। योगी कैसा हो? गुरु-चरणों की सेवा करने में सुशील हो। गुरु-चरणों से ही उपदेश प्राप्त करे।

व्याख्या—यहाँ पर कारणावान्तर शरीर की, जो आज्ञाचक्र के ऊपर तथा सहस्रार के नीचे है, चर्चा की गई है। श्लोक में कहा गया है—जब योगी अपने गुरु के चरण-कमलों की सेवा सुशील और दृढ़ आज्ञाकारी की भाँति पूर्णतया सद् रूप से करता है, अर्थात् दत्तचित्त और ध्यान लगाकर योग की क्रियाओं को अभूतपूर्व ढंग से सम्पन्न कर लेता है, तो उसे महानाद की प्रतिमूर्ति या छवि के दर्शन आज्ञाचक्र के ऊपर होते हैं तथा वह वाक् सिद्ध हो जाता है।

गुरुचरणयुगाम्भोज—गुरु के चरण-कमल।

करकमलतले—सदैव, सब समय।

लयस्थानं वायोः—महानाद में वायु के लय का स्थान। नियम है कि जिससे जिसकी उत्पत्ति है, उसी में उसका लय माना जाता है। भूतशुद्धि तथा अन्य क्रियाओं में यह देखा जाता है कि वायु का लय स्पर्शतत्त्व में और स्पर्शतत्त्व का लय व्योम में होता है। वायु का लय नाद में भी होता है, किन्तु श्रुति का कथन जिसे हम प्रमाण मानते हैं, इस प्रकार है—'पृथिवीकाराद्रसवती रसादजायत, ककारात् सर्वाणि जलानि तीर्थानि, रेफाद् वह्नितत्त्वं, नादाद् वायुः सर्वप्राणमयः, बिन्दोर्गगनं सर्वशून्यं शब्दमयं, तेभ्यः पञ्चविंशतिगुणमयतत्त्वं सर्वमिदं विश्वं ब्रह्माण्डं कालिकामयम्।

अर्थात् 'पृथ्वी जिसमें सभी रस है, उसकी उत्पत्ति ई-कार से हुई। जल और तीर्थ ककार से, रेफ (रकार) से वह्नितत्त्व, नाद से वायु जो सर्व प्राणमय है, विन्दु से गगन जो सर्व शून्य और शब्दमय है और इन सबसे पच्चीस तत्त्वों का प्रादुर्भाव हुआ जो गुणमय हैं। यह समस्त विश्व ब्रह्माण्ड में जो ब्रह्मा का है कालिका व्याप्त हैं, अर्थात् कालिकामय है।'

अतः हमें सदैव अपने मानस में इस तथ्य को रखना चाहिए कि जब कालीमंत्र (क्रीं) के अक्षर या वर्ण उसमें लय होते हैं जो सूक्ष्म हैं तो वायु का नाद में लय हो जाता है। बीज क्रीं की रचना यहीं होती है। ककार= काली, रकार=ब्रह्मा अग्नि सदृश ईकार=महामाया। अनुस्वार या चन्द्र विन्दु दो भागों में विभाजित है, नाद, विश्वमाता या जगज्जननी है और विन्दु जो दुःखहर अथवा पीड़ा को दूर करने वाला बीजकोश है। पच्चीस तत्त्वों का उद्‌भव इसी क्रीं—क र ई म से हुआ।

शिवार्द्धम्—शिव का अर्धनारीश्वर स्वरूप। उनका आधा भाग शक्ति है जो नाद है।

श्रीक्रम में उल्लेख है—

'चेतसा सम्प्रपश्यन्ति नादान्ते वृषभध्वजम्।
तमर्द्धदेहं वरदं कारणत्रयमातरम्।
पुटद्वयविनिष्क्रान्तो वायुर्यत्र प्रलीयतें॥'

स्वच्छन्दसंग्रह का कथन है—

हलाकारस्तु नादान्ते भित्त्वा सर्वमिदं जगत्।
अधःशक्त्या विनिर्भेद्य ऊर्ध्वशक्त्यवसानकः॥
नाड्यां ब्रह्मविले लीनस्त्वव्यक्तो ध्वनिलक्षणः।
अतो ब्रह्मविलं ज्ञेयं रुद्रकोटयर्वुदैर्युतम्॥
तत्र ब्रह्मशिवो ज्ञेयः शशाङ्कशतसन्निभः।
दशवाहुस्त्रिनेत्रश्च पञ्चवक्त्रेन्दुशेखरः॥
ब्रह्माणी त्वपरा शक्तिर्ब्रह्मणोत्सङ्गगामिना।
द्वारं सा मोक्षमार्गस्य रोधयित्वा व्यवस्थिता॥'

सिराकारम्—सिरा शब्द में स पर ह्रस्व 'इ' की मात्रा है तथा अमरकोष में यह दीर्घ मात्रा है, किन्तु निश्चित ही शब्द एक ही है, क्योंकि यह दन्त्यदि स है। कार्तिकेय-ईश्वर संवाद में कहा गया है—'तदूर्ध्वे च महानादो लाङ्गलाकृतिरुज्ज्वलः।' अर्थात् इसके ऊपर महानाद हल के स्वरूप में है और भासमान है। यदि सिराकार के स्थान पर पाठ शिवाकार पढ़ा जाय तो इसका अर्थ होगा कि नाद शिवशक्तिमय है। प्रयोगसार में उल्लेख है—

'नादात्मना प्रबुद्धा सा निरामयपदोन्मुखी ।
शिवोन्मुखी यदा शक्तिः पुंरूपा सा तदा स्मृता ॥'

'वह शक्ति जो मुक्ति की ओर अग्रसर होती है, उसे पुंरूपा अथवा विन्दु कहा जाता है तथा जब नाद से त्वरित गति आती है तो वह शिवोन्मुखी होती है। अतएव राघवभट्ट ने कहा है—'तस्या एव शक्तेर्नादविन्दू सृष्टयुपयोगा-वस्थारूपौ ।' अर्थात् नाद और विन्दु अवस्था में वे रचना या सृष्टि करती हैं, क्योंकि यही उनके लिए उपयोगी स्थिति है ।

एक अन्य स्थान पर उल्लेख है—

'सा तत्त्वसंज्ञा चिन्मात्र-ज्योतिषः सन्निधेस्तदा ।
विचिकीर्षुर्घनीभूता क्वचिदभ्येति विन्दुताम् ॥'

अर्थात् वे अनादि हैं, चिन्मात्र हैं, चिद् रूप में हैं। इसका अर्थ यह भी किया जा सकता है कि वे ही एकमात्र तत्त्व हैं। उनकी चिद् रूप में स्थिति है अथवा चित् के साथ उनका पूर्ण साम्य है और चित् के साथ उनका सह अस्तित्व है । जब वे ज्योति के निकट होती हैं जो केवल चैतन्य है, तो परि-वर्तन के भाव से युक्त हो जाती हैं या परिवर्तन की कामना का उनमें उदय होता है और इस दशा में घनीभूय और बिन्दु रूप में हो जाती हैं ।

श्रीमद् आचार्य का कथन है—'नाद एव घनीभूय क्वचिदभ्येति विन्दु-ताम् ।' नाद घनीभूय और विन्दु बन जाता है। इसका तात्पर्य है कि शक्ति अपने को नाद-विन्दु रूप में ठीक उसी प्रकार अभिव्यक्त करती है, जैसे स्वर्ण तथा स्वर्ण के बने कानों के बालों के रूप में अपनी प्रतीति कराता है। निष्कर्ष यह निकला कि नाद और बिन्दु दो संज्ञा होते हुए भी एकाकार हैं। मिट्टी के दीप को देख कर मिट्टी से बनी सभी वस्तुओं की जानकारी हो जाती है। अन्तर केवल नाम का है। यथार्थ में मिट्टी ही सत्य है ।

वरदमभयम्—वरदान और अभय के दाता। समाधि रूप योग के साधकों के अनुशीलन लिए श्रीमद् आचार्य का कथन है—

'समाधिकालात् प्रागेवं विचिन्त्याऽतिप्रयत्नतः ।
स्थूलसूक्ष्मक्रमात् सर्वं चिदात्मनि विलापयेत् ॥

आचार्य के इन वचनों के अनुसार जो साधक समाधियोग का अभ्यास करना चाहता है, उसे इसके पूर्व समस्त स्थूल और सूक्ष्म रूप सृष्टि प्रपंच समुदाय की विधान रूप में जानकारी कर लेनी चाहिए। इसका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। इसकी यहाँ पर चर्चा की जारही है कि पृथ्वी आदि पञ्चभूतों का मूलाधार से विशुद्धचक्र तक किस प्रकार लय किया जाता है। यह

लय यथार्थं में क्रमानुसार चिदात्मा में ही होता है। आत्मा को ही चित् माना जाता है।

पाँचो भूत जिनका उल्लेख हो रहा है, पाँच चक्रों में मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत और विशुद्ध हैं। सभी पदार्थों की जिनसे सृष्टि होती है—स्थूल और सूक्ष्म, सर्वप्रथम ध्यान करना चाहिए। यहाँ पर इनकी चर्चा विस्तार से की जा रही है। मूलाधार में भूमण्डल है और उसमें पाद, घ्राणेन्द्रिय और गन्धतत्त्व ये तीन हैं। यही इनका स्थान है। इसी प्रकार जलमण्डल में पाणि (हाथ), रसनेन्द्रिय और रसतत्त्व हैं। वह्निमण्डल में गुदा, चक्षुरिन्द्रिय और रूपतत्त्व हैं। वायुमण्डल में स्त्री या पुरुष की जननेन्द्रिय (उपस्थ), स्पर्शेन्द्रिय और स्पर्शतत्त्व हैं। नभोमण्डल में वाक्, श्रोत्रेन्द्रिय (कान) और शब्दतत्त्व हैं। इस प्रकार ये कुल पन्द्रह तत्त्व हुए। पृथ्वी आदि को इनके साथ जोड़ देने पर तत्त्वों की संख्या पच्चीस हो जाती है, जो स्थूलतत्त्व हैं। अब सूक्ष्म रूपों पर आते हैं। आज्ञाचक्र में पहले ही सूक्ष्म मानस का उल्लेख किया गया। कङ्कालमालिनीतंत्र में आज्ञाचक्र के सन्दर्भ में अन्य सूक्ष्मतत्त्वों का भी उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

'मनश्चात्र सदा भाति हाकिनीशक्तिरञ्जितम्।
वुद्धिप्रकृत्यहङ्कारालङ्कृतं तैजसं परम् ॥'

'यहाँ पर मन सदा भासमान रहता है और हाकिनीशक्ति के कारण जो यहाँ विराजमान है, अधिक कान्तिमान अथवा सौन्दर्यशाली हो गया है। यह तेजोमय है और बुद्धि, प्रकृति और अहंकार से अलंकृत है।' उक्त कथन से यह स्पष्ट है कि यहाँ पर तीन सूक्ष्मतत्त्व बुद्धि, प्रकृति और अहंकार हैं। हमें यह समझ लेना है कि अहंकार को उस क्रम में नहीं बतलाया गया है जिस उद्धरण की चर्चा की जा रही है। हमें यह भी ज्ञात हो गया कि मूलाधार आदि पृथिवी आदि के जनक ऊपर की ओर हैं तथा जिनका जनन हुआ वे नीचे हैं, अर्थात् जन्य नीचे और जनन उसके ऊपर है अर्थात् जिसका लय हुआ वह नीचे है और जिसमें लय हुआ उसकी स्थिति ऊपर है। हमें यह भी ज्ञात है कि शब्द-क्रम पाठ-क्रम की अपेक्षा अधिक बलवान् होता है। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि व्योम का लय अहंकार में होता है, अतः अहंकार व्योम के ऊपर है। कहा गया है—'अहङ्कारे हरेद् व्योम सशब्दं तन्महत्यपि।' इस वचन के अनुसार ही व्योम का सशब्द अहंकार में लय बतलाया गया है। अहंकार का लय महत् में होता है तथा इसके ऊपर बुद्धि और प्रकृति है। इसी जन्य और जनक भाव को शारदा में इस प्रकार बतलाया गया है—

'मूलभूतात् ततोऽव्यक्तात् विकृतात् परवस्तुनः ।
आसीत् किल महत्तत्त्वं गुणान्तःकरणात्मकम् ।
अभूत् तस्मादहङ्कारस्त्रिविधः सृष्टिभेदतः ॥'

अव्यक्त मूलभूत से परवस्तु विकृत से महत्तत्त्व की उत्पत्ति हुई, जिसमें गुण और अन्तःकरण भी है। इसी महत्तत्त्व से ही अहंकार आया जिसके अपने मूलस्रोत के कारण तीन भेद माने गये हैं। विकृति का अर्थ परिवर्तन है, किन्तु यहाँ पर इसका तात्पर्य प्रतिविम्व से है अर्थात् परवस्तु का प्रतिविम्ब। इस प्रकार प्रतिविम्व विकृति है, किन्तु यह महत्तत्त्व आदि की प्रकृति है, इसे प्रकृति कहा गया। कथन है—'प्रकृतिः परमाः शक्तिर्विकृतिः प्रतिविम्बता।' अर्थात् प्रकृति परमा शक्ति है और विकृति उसका प्रतिविम्ब है। जैसे दर्पण में अपने को देखते हैं, किन्तु यह केवल अपना प्रतिविम्ब ही होता है, स्व नहीं। एक अन्य कथन है—'परं ब्रह्मात्मप्रकृतिः प्रतिविम्वस्वरूपिणी।' परं ब्रह्म की आत्मप्रकृति है, किन्तु है प्रतिबिम्वस्वरूप में।

महत् तत्त्व प्रकृति की एक विकृति हैं। मूलभूत अव्यक्त सांख्यमूल प्रकृति के सादृश्य है। यहाँ जैसा कि राघवभट्ट का कथन है कि तत्त्व सृष्टि का संकेत या निर्देशन किया गया है। इसकी व्याख्या भी की गई है, जो इस प्रकार है—अव्यक्त पर-वस्तु का तात्पर्य विन्दु या शब्दब्रह्म से है। विकृति का आशय है सृष्टि-उन्मुख। इस विन्दु या शब्दब्रह्म से महत् तत्त्व का विकास या उद्भव हुआ, जिसे पदार्थ महत् भी माना जाता है। इस पदार्थ महत् को ही शैवमत में बुद्धितत्त्व कहते हैं।। इस महत् या बुद्धितत्त्व में तीन गुण हैं—सत्त्व, राजस् और तमस्। इनमें मानस, बुद्धि, अहंकार और चित् भी संयुक्त हैं। ये चारों गुणों की क्रिया का प्रतिफलन अथवा कार्य हैं—कारण और कारण में उपचार तथा कार्य।

ईषान् शिव के शब्दों को उद्धृत करते हुए राघवभट्ट का कथन है कि वामकेश्वरतंत्र में कहा गया है कि अव्यक्त शब्दब्रह्म ही बुद्धितत्त्व का जनक है और इसी में सत्त्वगुण अभिव्यक्त है। इसके अनन्तर राघवभट्ट ने सांख्य की विचारधारा को इससे भिन्न बतलाया है, क्योंकि सांख्य के अनुसार सत्त्व, रजस् और तमस् की साम्य स्थिति प्रकृति है, जिसे प्रधान और अव्यक्त भी कहा जाता है। यही पर-वस्तु है। साम्य में असंतुलन होने पर महत् उत्पन्न होता है। इस महत् तत्त्व में गुण हैं और यही अन्तःकरण का भी कारण है। इसके अनुसार गुणों का तात्पर्य शब्द-स्पर्श आदि पांच तन्मात्राओं से है। इस विचार के अनुसार प्रकृति से ही महत् का आविर्भाव होता है तथा महत् से अहंकार का।

शारदा में कहा गया है कि महत् ही बुद्धितत्त्व है। दोनों में कोई अन्तर नहीं। यथा—

'बोद्धव्यलक्षणा सैव प्रकृतिः शक्तिजृम्भिता।
बुद्धितत्त्वं भवेद् व्यक्तं सात्त्विकं गुणमाश्रिता।
सैव बुद्धिर्महन्नाम तत्त्वं साङ्ख्यैः प्रगीयते॥'

अर्थात् 'महत् तत्त्व और बुद्धितत्त्व में कोई भेद नहीं है। गोचर अथवा बोद्धव्य लक्षणा प्रकृति जिसका प्रसार शक्ति से हुआ, जब सत्त्वगुण और बुद्धि-तत्त्व के साथ उसका संयोजन हुआ। यही वह बुद्धि है जिसे सांख्य में महत् माना गया है।'

महत् तत्त्व में गुणों का भी समावेश है अर्थात् गुण उसमे अन्तर्निहित हैं। गुण सत्त्व, रजस् और तमो रूपा हैं। अन्तःकरण भी है। इस सन्दर्भ में शारदा में उल्लेख है—

'......................अन्तःकरणमात्मनः।
मनोबुद्धिरहङ्कारश्चित्तं च परिकीर्तितम्॥'

अर्थात् 'अन्तःकरण ही आत्मा का मानस, बुद्धि, अहंकार और चित्त है। और यही महत्तत्त्व का समुदाय है।'

यहाँ पर एक शंका हो सकती है कि यदि मानस महत्तत्व में है तो फिर श्लोक ३३ में ऐसा क्यों कहा गया कि मानस का अपना सूक्ष्म रूप स्वतंत्र है। 'तदन्तश्चक्रेऽस्मिन् प्रविलसति मनःसूक्ष्म रूपम्'—इसकी संगति कैसे बैठेगी? इसका उत्तर है कि वह मानस अहंकारजन्य है। राघवभट्ट इस विषय में कहते हैं—

'यतोऽपरं मनस्तत्त्वं ससङ्कल्पविकल्पकम्।
तैजसादेव तज्जातं........................॥'

अन्य (दूसरा) मानस वह है जो संकल्पात्मक और विकल्पात्मक है। यह तैजस् जन्य माना जाता है। इसे तैजस् अहंकार भी कह सकते हैं। यह इन्द्रियों का जनक है। इस प्रकार आज्ञाचक्र में मन तथा अन्य तत्त्वों को क्रमा-नुसार ही रखा गया है। अहंकार आदि को इनसे ऊपर स्थान दिया गया है। आज्ञाचक्र में हाकिनी, इतरलिङ्ग, प्रणव, मन, अहंकार, बुद्धि और प्रकृति को एक के ऊपर एक क्रम से रखा गया है। चन्द्रमण्डल का कोई विशेष स्थान निर्धारित नहीं किया गया है, अतः यह मानना चाहिए कि उसका स्थान इन सबसे ऊपर है। यदि यहाँ पर यह प्रश्न उठाया जाय कि उसका स्थान इन सबके नीचे क्यों न माना जाय तो इसके उत्तर में सम्मोहनतंत्र का यह प्रसंग उल्लेखनीय है— 'इन्दुमंडल[illegible] तद्रूपं [illegible]' अर्थात् 'चन्द्रमा या

इन्दु मस्तक में है और उसके ऊपर वोधिनी स्वयं है'। इससे यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि इन्दु और वोधिनी आज्ञाचक्र में ऊपर के भाग में है, नीचे नहीं हैं। दोनों एक-दूसरे के ऊपर हैं और उनके वीच में और कुछ नहीं है। बोधिनी सबके ऊपर ही है। आज्ञाचक्र में कारण रूप की चर्चा करते हुए सम्मोहनतन्त्र में उल्लेख है—

'इन्दुर्ललाटदेशे च तदूर्ध्वे बोधिनी स्वयम्।
तदूर्ध्वे भाति नादोऽसावर्द्धचन्द्राकृतिः परः॥
तदूर्ध्वे च महानादो लाङ्गलाकृतिरुज्ज्वलः।
तदूर्ध्वे च कला प्रोक्ता आञ्जीति योगिवल्लभा।
उन्मनी च तदूर्ध्वे च यद् गत्वा न निवर्तते॥'

इन्दु या चन्द्र (यहाँ पर विन्दु) ललाटदेश में है और इसके ऊर्ध्व में वोधिनी स्वयं है। वोधिनी के ऊपर नाद भासित है तथा इसका आकार अर्ध-चन्द्र के सदृश है। इसके और ऊपर महानाद है, जिसका आकार हल के समान है तथा इसके ऊपर कला है, जिसकी संज्ञा आञ्जी है। ये योगियों को बड़ी प्रिय हैं, जैसा कि वल्लभा शब्द प्रतीत कराता है। इसके ऊर्ध्व में उन्मनी है, जहाँ पहुँचने पर किसी का पुनरागमन नहीं होता है।'

एक अन्य मत के अनुसार यहाँ पर जिसे आञ्जी कहा गया है, वही समनी वतलाई गई है। भूतशुद्धितन्त्र का कथन है कि आञ्जी और समनी एक नहीं, वरन् दोनों पृथक्-पृथक् हैं। लय-क्रम में जो प्रथम कारण अथवा जिस मूल कारण का उल्लेख किया गया है, उसके ये अवान्तर शरीर हैं।

भूतशुद्धितन्त्र के अनुसार बोधिनी के नीचे विन्दु का स्थान है। भूतशुद्धि-तन्त्र का कथन है—

'बिन्दुर्मात्रार्द्धतो देवि तदूर्ध्वं नादसंज्ञितम्।
लयस्थानं तथा वायोर्महानादं तदूर्ध्वतः॥'

'विन्दु तथा मात्रार्ध के ऊपर नाद है और इसके ऊपर फिर महानाद है। यही वह स्थान है, जहाँ वायु का लय होता है।'

मात्रार्ध ही शक्ति है—

'बालसूर्यप्रतीकाशमासीद् बिन्दुमदक्षरम्।
तदूर्ध्वे चार्धमात्रा तु गान्धारीरागमाश्रिता॥'

उपरोक्त कथन बृहत् त्रिविक्रमसंहिता का है। इससे प्रमाणित होता है कि अर्धमात्रा का तात्पर्य शक्ति है। अक्षर बालसूर्य के समान प्रखर है और यही स्वयं में विन्दु है। इसके ऊपर अर्धमात्रा है, जो गान्धारी राग से सम्मेलित है। ऊपर के दोनों कथन एक ही बात बतलाते हैं। अतः हमें यह मानना

चाहिए कि अर्धमात्रा और बोधिनी एक सदृश हैं। बिन्दु, बोधिनी और नाद ये तीनों बिन्दुमय पर शक्ति के पृथक्-पृथक् स्वरूप हैं। शारदा में उल्लेख है—

'सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद् बिन्दुसमुद्भवः॥
परशक्तिमयः साक्षात् त्रिधाऽसौ भिद्यते पुनः।
बिन्दुर्नादो बीजमिति तस्य भेदाः समीरिताः॥
बिन्दुर्नादात्मको बीजं शक्तिर्नादस्तथोर्मिथः।
समवायः समाख्यातः सर्वागमविशारदैः॥'

सकल परमेश्वर से जो सत्–चित्–आनन्द है, शक्ति का उदय हुआ; शक्ति से पुनः नाद और नाद से बिन्दु। इस प्रकार परशक्तिमय अपने को पुनः तीन रूपों में अभिव्यक्त करती है। बिन्दु, नाद और बीज ये तीन उसके भेद हैं। बिन्दु नादात्मक, बीज शक्ति और नाद दोनों का सामरस्य या मिलित रूप है। आगम के मनीषियों का यह कथन है।

'पर–शक्ति–मय'—पर-शिव, अतः शिव-शक्तिमय = बिन्दु। ललाट के ऊर्ध्व में स्थित बिन्दु नादात्मक एवं शिवात्मक है। बीज शक्ति है बोधिनी रूप में (बोधिनीरूपम्)। नाद दोनों के बीच का समवाय है। इसका क्षोभ्य और क्षोभक रूप है। दोनों एक-दूसरे पर क्रिया करते हैं। अतः यह क्रिया शक्ति-स्वरूप है। इन तीनों के ऊर्ध्व मे महानाद है। उसके ऊपर कला है जो शक्ति कही जाती है। आञ्जी वक्ररेखा रूप मात्रा के आकार में है। यह शक्ति है, जिसका आविर्भाव सृष्टि के आदिकाल में हुआ था। इस सन्दर्भ में पाश्चरात्र में उल्लेख है—

'एवमालोक्यसर्गादौ सच्चिदानन्दरूपिणीम्।
समस्ततत्त्वसङ्घातां सृष्टयधिष्ठातृरूपिणीम्।
व्यक्तां करोति नित्यां तां प्रकृतिं परमः पुमान्॥'

सृष्टि के सर्गकाल में इसे देख कर परं पुंरूप ने सृजन के आरम्भिक स्तर पर वाह्य आदि प्रकृति को अभिव्यक्त किया जो सत्-चित्-आनन्द का साकार रूप है। समस्त तत्त्व उसी में हैं और वे ही सृष्टि की अधिष्ठातृ देवी के रूप में हैं। रूपान्तरण और सम्पूर्ण तत्त्वों की अभिव्यक्ति इनके संकेत मात्र से होती है।

एक अन्य स्थान पर उल्लेख है—

'शिवशक्तिसमायोगादव्यक्तात् परमेश्वरात्।
आद्या भगवती देवी सैव त्रिपुरसुन्दरी।

आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद् बिन्दुसमुद्भवः॥'

'अव्यक्त परमेश्वर शिव और शक्ति के मिलित स्वरूप में आद्या देवी भगवती का प्राकट्य हुआ, जो त्रिपुरसुन्दरी हैं। इसी शक्ति से नाद और फिर नाद से बिन्दु का उद्भव हुआ।'

इसके ऊपर उन्मनी है। उसके लक्षण हैं—

'यत्र गत्वा तु मनसो मनस्त्वं नैव विद्यते।
उन्मनी सा समाख्याता सर्वतन्त्रेषु गोपिता॥'

'वहाँ पहुँचने पर मानस का मनस्त्व उन्मनी नहीं रह जाता है। उसकी उन्मनी से प्रसिद्धि है और सर्व तंत्रों में उसकी शिक्षा और ज्ञान गोपनीय है।'

उन्मनी अवस्थातत्त्व है, जिसका तात्पर्य है कि मानस ने जगत् के पदार्थों और विषयों के साथ जो राग और मोह के बन्धन बना लिये थे, उनका पूर्ण रूप से उच्छेदन।

उन्मनी के भी दो भेद हैं—एक निर्वाणकलारूपा; इसका स्थान भी सहस्रार में है और दूसरा वर्णावलीरूपा, जिसका स्थान भी इसी मण्डल में है। कङ्कालमालिनीतन्त्र का कथन है—

'सहस्रारकर्णिकायां चन्द्रमण्डलमध्यगा।
सर्वसङ्कल्परहिता कला सप्तदशी भवेत्।
उन्मनी नाम तस्या हि भवपाशनिकृन्तनी॥'

'सहस्रार की कर्णिकाओं में चन्द्रमण्डल के मध्य सतरहवीं कला है, जो निर्लिप्त या नीरागा है। इसका नाम उन्मनी है। यह भवबन्धनों और पाश से मुक्त करती है, अर्थात् उनका मूलोच्छेदन कर देती है।'

उन्मनी को मोक्षदायिनी बतलाया गया है। कहा गया है—'उन्मनीं च मालावर्णस्मरणात् मोक्षदायिनी।' मालावर्ण का मानसिक जाप उन्मनी है। इससे मोक्ष की प्राप्ति होती है। भूतशुद्धितन्त्र का कथन है कि उन्मनी के नीचे समनी है—

'ततो हि व्यापिका शक्तिर्यामाञ्जीति विदुर्जनाः।
समनीमूर्ध्वतस्तस्या उन्मनीं तु तदूर्ध्वतः॥'

'अगली व्यापिका शक्ति है। इसे लोग आञ्जी कहते हैं। समनी इसके ऊपर है तथा उन्मनी सबसे ऊपर है। यह समनी परशक्ति का अवान्तर रूप भी है।

अब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—आज्ञाचक्र के ऊपर द्वितीय बिन्दु है जो शिवस्वरूप है। उसके ऊपर अर्धमात्राकार बोधिनी शक्ति है। उसके ऊपर शिवशक्ति समवायरूप अर्धचन्द्र की आकृति में नाद है। इसके भी ऊपर

महानाद है, जिसका आकार हल के समान है। महानाद के ऊपर व्यापिका शक्ति है, जो आकार में वक्र है। इसके भी ऊपर अन्तिम समनी है और इन सबसे ऊपर उन्मनी है। यह क्रम है जिसके अनुसार सात कारण रूप हैं।

[विशेष—मात्रार्ध : देवीभागवत में अर्धमात्रा की चर्चा है। यह अर्धमात्रा नाद ही का नाम है। नीलकण्ठ ने जो व्याख्या की है, उसके अनुसार यह परमं पद्मं अथवा परम अवस्था है और यही ब्रह्मन् अवस्था कही गई है। 'चण्डी' में भी अर्धमात्रा शब्द आता है और इसका प्रयोग भी इन्हीं अर्थों में किया गया है। गोपालचक्रवर्ती ने एक उद्धरण देते हुए अर्धमात्रा को बतलाते हुए कहा है कि योगी इसकी अनुभूति करते हैं। उन्होंने एक अन्य उद्धरण में कहा है—'ॐ—तीन वेद तीन लोक हैं। तीन लोक के ऊपर मात्रार्ध चौथा लोक है। तीन लोक के ऊपर जो चौथा लोक मात्रार्ध है, वही परमतत्त्व है।' श्रुति का कथन है—'आप ही प्रणव की अर्धमात्रा, गायत्री और व्याहृति हैं।' यहाँ पर देवी और ब्रह्म के ऐक्य को निरूपित किया गया है। वे ही माया विशिष्ट ब्रह्मरूपिणी हैं। नादबिन्दु उपनिषद् का भी यही कथन है। उसमें उल्लेख है—'ॐ का आकार एक चिड़िया के समान है। अ-कार ॐ का दक्षिण पर है, जैसे चिड़िया का पर तथा उ-कार दूसरा अर्थात् वाम पर है। म-कार पूँछ है और अर्धमात्रा शिर है। सत्त्व उसका शरीर तथा रजस् और तमस् उसके पाद हैं। धर्म दक्षिण नेत्र है और अधर्म वाम नेत्र है। भूः लोक घुटने, स्वर्लोक उसका मध्य, महर्लोक नाभि, ज्ञान या जनलोक हृदय, तपोलोक कण्ठ और सत्यलोक भ्रूमध्य है।

ब्रह्मविद्या उपनिषद् का १०वाँ श्लोक इसका समर्थन करता है, जो कि पठनीय है।]

सहस्रारपद्मस्वरूपम्

तदूर्ध्वे शङ्खिन्या निवसति शिखरे शून्यदेशे प्रकाशं
विसर्गाधः पद्मं दशशतदलं पूर्णचन्द्रातिशुभ्रम्।
अधोवक्त्रं कान्तं तरुणरविकलाकान्तिकिञ्जल्कपुञ्जं
लकाराद्यैर्वर्णैः प्रविलसितवपुः केवलानन्दरूपम् ॥ ४० ॥

भाष्य—उसके ऊपर अर्थात् महानाद के ऊपर जहाँ महाशंखिनी नाड़ी है, शून्यदेश में तथा विसर्ग के नीचे सहस्रदल पद्म है। इसका रूप अत्यन्त प्रकाशमान है। पूर्णचन्द्र के सदृश शुभ्रवर्ण का है तथा अधोमुखी है। यह मनोहारी है। इसके तन्तु-पुञ्ज तरुण सूर्य के समान कान्तिमान है। इसका देह अक्षर अ से प्रारम्भ होने वाली वर्णमाला के अक्षरों से प्रकाशित हो रहा है और यह पूर्णतया केवलानन्द स्वरूप है।

व्याख्या—यहाँ सहस्रदल कमल का निरूपण किया जारहा है, जिसका विवेचन दश श्लोकों में है।

तदूर्ध्वे—अब तक जिन सभी की चर्चा की गई उसके ऊपर।

शाङ्खिन्या शिखरे—शंखिनी नाड़ी के सम्बन्ध में साधक को पहले ही बतला दिया गया है। शिखरे अर्थात् मस्तक पर।

शून्यदेशे—शून्य या रिक्त स्थान में। इसका तात्पर्य यह है कि यह स्थान शून्य है, यहाँ कोई नाड़ी नहीं है। कहने का तात्पर्य है कि यह वह स्थान है जहाँ सुषुम्णा समाप्त हो जाती है, उसके ऊपर के स्थान में।

विसर्गाधः पद्मं दशशतदलम्—विसर्ग के नीचे सहस्रदल कमल है। विसर्ग ब्रह्मरन्ध्र के ऊपरी भाग में है। कहा गया है—'तस्मिन् रन्ध्रे विसर्गं च नित्यानन्दं निरञ्जनम्।'

यहाँ पर रन्ध्र में विसर्ग का, जो नित्यानन्द और निरञ्जनमय है, ध्यान करना चाहिए।

पूर्णचन्द्रातिशुभ्रम्—यह पद्म का विशेषण है। पूर्ण चन्द्रमा के तुल्य धवल है।

लकाराद्यैर्वर्णैः प्रविलसितवपुरिति—यहाँ पर लकार शब्द का प्रयोग स्वर अ के लिए किया गया है। इसका आशय है कि दूसरा ल-कार वर्णमाला के अक्षरों की गणना में छोड़ देना चाहिए। उसकी गणना नहीं करनी चाहिए। पचास अक्षरों में द्वितीय लकार को सदैव ही छोड़ दिया जाता है।

यदि इस अंश का पाठ 'लकारैद्यैर्वर्णैः' मान लिया जाय, जैसा कुछ विद्वान् मानते हैं तो गणना में 'क्ष'-कार को छोड़ देना चाहिए। सहस्रार कमल के दलों पर ५१ अक्षर नहीं माने जा सकते हैं और ५१ अक्षरों को कमल दल पर क्रम से संजोया भी नहीं जा सकता। यदि इक्यावन अक्षरों का बीस बार जाप किया जाय तो कुल संख्या १०२० आती है और २० के स्थान पर १९ बार जाप करें तो इसका कुल योग ९६९ होता है। यदि क्ष-कार को छोड़ दिया जाय तो हमारी समस्या का समाधान हो जाता है। 'लकारैद्यैः' शब्द का यह अर्थ नहीं है कि अक्षरों का पाठ विलोमपूर्वक किया जाय अर्थात् आरम्भ से अन्त तक किया जाय।

कंकालमालिनीतंत्र में स्पष्ट कहा गया है कि इसका पाठ अनुलोमपूर्वक करना चाहिए।

'सहस्रारं महापद्मं शुक्लवर्णमधोमुखम्।

अकारादि-क्षकारान्तैः स्फुरद्वर्णैर्विराजितम्॥

'विसर्ग के नीचे महापद्म सहस्रार है, जो शुक्लवर्ण का है तथा अधोमुख है। प्रभावान् अक्षर अ-कार आदि क्षकार के पूर्व अक्षर तक यहाँ विराजमान हैं।' इस कथन से इसमें तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता है कि अक्षर 'क्ष' को छोड़ दिया गया है।

अकारादिक्षकारान्तैः—यदि इस शब्द को बहुव्रीहि समास में देखा जाय तो इसका अर्थ होगा—क्षकार को गणना में छोड़ दिया गया।

अक्षरों के वर्ण के सम्बन्ध कोई उल्लेख नहीं है, किन्तु मातृका श्वेतवर्ण के माने गये हैं, अतः यह माननीय है कि इनका वर्ण जो सहस्रार के दलों पर है, श्वेत है। ये अक्षर दक्षिणावर्त रूप में परिक्रमा करते हैं। कंकालमालिनी-तन्त्र के अनुसार यही क्रम उपयुक्त है।

प्रविलसितवपुः—इसे कुछ लोग 'प्रविलसिततनुः' भी पढ़ते हैं और यह कहते है कि शब्द पद्म यथाक्रम से पुंलिङ्ग हो जाता है, अतः शब्द तनुः जो पुलिङ्ग का ही विशेषण माना जाता है, स्वयं भी पुंलिङ्ग है। ऐसा सम्भव नहीं माना जा सकता। 'निवसति' क्रिया है और इसका कारक 'पद्म' है। इसके अन्त में बिन्दु (ं) है, अतः यह नपुंसिकलिङ्ग है, पुंलिङ्ग नहीं। ऐसी स्थिति में उसका अन्त विसर्ग से होना था और इसके विशेषण तनु में विसर्ग रहते। यदि यहाँ पर वपु के स्थान पर तनु मान लिया जाय तो तनु नपुंसक लिङ्ग होता और किसी भी दशा में बिन्दु अन्त में नहीं आता। यदि बिन्दु नहीं है तो छन्द दोषपूर्ण हो जाता। अतः शुद्ध पाठ 'प्रविलसितवपुः' ही है।

सहस्रदलकर्णिकास्थ-चन्द्रमण्डलस्वरूपम्

समास्ते तस्यान्तः शशपरिरहितः शुद्धसम्पूर्णचन्द्रः
स्फुरज्ज्योत्स्नाजालः परमरसचयस्निग्धसन्तानहासी।
त्रिकोणं तस्यान्तः स्फुरति च सततं विद्युदाकाररूपं
तदन्तःशून्यं तत्सकलसुरगणैः सेवितं चाति गुप्तम्॥ ४१॥

भाष्य—उस पद्म के अन्तर्मध्य में शश से रहित अत्यन्त दीप्तिमान पूर्ण चन्द्र है। वह कैसा है ? जैसा निर्मल आकाश में उसकी ज्योत्स्ना की किरणों में स्फुरण होता है, ठीक वैसा ही है। अमृत के समान शीतल और सरस है। इसके अन्दर चन्द्रमण्डल निरन्तर विद्युत् के सदृश प्रकाशमान है। चन्द्र के मध्य त्रिकोण है, जिसमें सदैव स्फुरण होता रहता है। आकार में विद्युत् के तुल्य है। त्रिकोण के अन्तर्मध्य में शून्याकार अति प्रभावान् है। सकल देवता गण उसकी गुप्त रूप से पूजा या आराधना करते हैं। यह शून्य अति गुह्य है।

व्याख्या—सहस्रार की कर्णिकाओं में चन्द्रमण्डल की स्थिति बतलायी गई।

तस्यान्तः—अन्तर्मध्य में।

शुद्धसम्पूर्णचन्द्रः—शुद्ध । निर्मल मेघ रहित आकाश मे दिखलाई देता है ।

परमरसचयस्निग्धसन्तानहासी—स्निग्ध का अर्थ है—सरस या सद्रव । यहाँ पर इसका प्रयोग सद्रव के समान ही किया गया है, क्योंकि अमृत भी ऐसा ही होता है । परम रस—अमृत । अमृत शीतलता प्रदान करता है । अतः तात्पर्य है कि इसकी किरणें स्निग्ध और आर्द्र हैं । इससे उत्ताप नहीं होता, वरन् शीतलता तथा हास और आनन्द की प्राप्ति होती है । इन किरणों की यह विशिष्टता मानी गई है । चन्द्रमण्डल के नीचे तथा इस देश के उपरी भाग में अन्तरात्मा की स्थिति बतलायी गयी है । सहस्रार के सन्दर्भ मे कङ्कालमालिनीतन्त्र का कथन है—

'तत्कर्णिकायां देवेशि अन्तरात्मा ततो गुरुः ।
सूर्यस्य मण्डलं चैव चन्द्रमण्डलमेव च ॥
तो वायुर्महानामा ब्रह्मरन्ध्रं ततः स्मृतम् ।
तस्मिन् रन्ध्रे विसर्गं च नित्यानन्दं निरञ्जनम् ।
तदूर्ध्वे शङ्खिनी देवी सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ॥'

'हे देवेशि ! इसकी कर्णिकाओं में अन्तरात्मा है । इसके ऊपर गुरु है और सूर्य तथा चन्द्रमण्डल भी वहीं हैं । इसके ऊपर महावायु है और फिर ब्रह्मरन्ध्र है । इस रन्ध्र में विसर्ग है—परमानन्द ब्रह्म । इसके ऊर्ध्व-अन्त में देवी शङ्खिनी हैं जो सृष्टि, स्थिति और संहारकारिणी हैं ।'

त्रिकोणं तस्यान्तः विद्युदाकाररूपम्—प्रदीप्तमान त्रिकोण उस के आन्तर् में है ।

तदन्तः शून्यं स्फुरति—उसके अन्दर जो शून्य है, वहीं पर बिन्दु का शरीर है । त्रिकोण के अन्दर जो उत्कृष्ट बिन्दु है, उसे ही शून्य कहा गया है, जो बिन्दु रूप में स्फुरित हो रहा है । तोडलतन्त्र के छठे उल्लास में कहा गया है—

'निराकारं परं ज्योतिर्बिन्दुश्चाव्ययसंज्ञकम् ।
बिन्दुशब्देन शून्यं स्यात् तथा च गुणसूचकम् ॥

'परम ज्योति निराकार है तथा बिन्दु अविनाशी है । बिन्दु का तात्पर्य शून्य है और उसमें गुण भी हैं ।'

एक अन्य स्थान पर भी शङ्खिनी नाड़ी को शून्य देश में बतलाया गया है । मायातन्त्र में उल्लेख है—

'मूलाद्विपद्म सरोजातं चित्रिणी ग्रथितं प्रिये ।
लिङ्गाधोर्ध्वनाभिहृत्कण्ठभ्रूमध्यदेशजम् ॥'

स्वच्छन्दसंग्रह का भी इस विषय में कथन है—

'द्वादशार्णं ललाटोर्ध्वं रूपेणार्द्धावसानकम् ।
द्वयङ्गुलोर्ध्वंशिरोदेशं परं व्योम प्रकीर्तितम् ॥'

'बारह कमल और ललाट के ऊपर रूप से अर्धवसित शिर के ऊपर दो अंगुल पर परमाकाश बतलाया गया है ।'

श्रीक्रम में कहा गया है—'आ सव्यकर्णात् देवेशि शङ्खिनी च शिरोपरि।' अर्थात् वाम में शिर के ऊपरी देश में शङ्खिनी है ।

'सम्प्राप्य शङ्खिनीनालं चास्थिशून्यं बिभर्ति यः ।
अमृतं यत् त्रिकूटस्थं परमानन्दलक्षणम् ॥
सहस्रारं महापद्मं रक्तकिञ्जल्कशोभितम् ।
द्रुतहेमाम्बुजं जातं धारापातप्रवर्षणम् ॥
विसर्गाधः पद्ममिति सर्गः शक्तिर्निशाकरः' ।

शंखिनीनाल को प्राप्त कर जो अस्थि रहित है, जो त्रिकूटस्थ अमृत होकर परमानन्द स्वरूप है । सहस्रार महापद्म जो लालवर्ण के पराग से सुशोभित है । पिघले हुए स्वर्ण-सदृश कमल से मानो स्वर्णधारा गिर रही हो । वह विसृष्टि रूप पद्म है जिसकी सर्ग (सृजन) शक्ति चन्द्रमा है ।

नारद के अनुसार विसर्ग सहस्रार पद्म को धारण किये हुए हैं, अतः उनकी स्थिति ऊपर है । शक्ति नीचे के पद्म में है । निर्वाणपद्धति का कथन है—

'कुलरूपं भवेच्छक्तिः विसर्गमण्डलं प्रिये ।
सहस्रारं महापद्मं रक्तकिञ्जल्कशोभितम् ॥'

शिव पार्वती से कह रहे हैं—हे प्रिया ! कुलरूपिणी शक्ति है, विसर्ग ही मंडल है । महापद्म सहस्रार है जो लाल पराग से शोभित है ।

सारसमुच्चय में भी कहा गया है कि सहस्रार पद्म में विसर्ग नीचे हैं। पूर्णचन्द्र शुभ्रवर्ण का तथा अमृत से परिपूर्ण है । मायातन्त्र का कथन है—

'महाशून्ये सहस्रारं निशाकरसहोदरम् ।
अधोवक्त्रं कर्णिकायाश्चन्द्रोर्ध्वे शक्तिरूपिणी ॥'

'सहस्रार के महाशून्य में चन्द्रमा है । उसकी अधोमुखी कर्णिकाओं में चन्द्र के ऊर्ध्व में शक्तिरूपिणी है ।

चन्द्रमण्डल में जो त्रिकोण है, उसे विश्वनाथ ने अ—क—थ कहा है और अपनी इस मान्यता के प्रमाण में गौतमीयतन्त्र के निम्नलिखित श्लोक को प्रस्तुत किया है :

'सहस्रारे हिमनिभे सर्ववर्णविभूषिते।
अकथादित्रिरेखासु हलक्षत्रयभूषिते।
तन्मध्ये परबिन्दुश्च सृष्टिस्थितिलयात्मकम्॥'

योगिनीहृदय का कथन है—

'सूक्ष्मरूपं समस्तार्णवृतं परमलिङ्गकम्।
बिन्दुरूपं परमानन्दकन्दं नित्यपदोदितम्॥'

सेवितं चातिगुप्तम्—नियम है कि आहार, निराहार, विहार (मैथुन) और योग, ये धर्म के जानने वाले गुप्त रूप से ही करते हैं, अतः देवता आराधना या सेवा गुप्त रूप से करते हैं।

सहस्रदलकर्णिकास्थ-परमशिवस्थितिस्वरूपम्

सुगुप्तं तद् यत्नादतिशयपरमामोदसन्तानराशेः
परं कन्दं सूक्ष्मं सकलशशिकलाशुद्धरूपप्रकाशम्।
इह स्थाने देवः परमशिवसमाख्यानसिद्धः प्रसिद्धः
स्वरूपी सर्वात्मा रसविरसमितोऽज्ञानमोहान्धहंसः॥ ४२॥

भाष्य—यह पूर्णतया गुप्त है तथा अथक परिश्रम से ही साध्य है। यह बिन्दु (शून्य) जो मोक्ष का मूल है, शुद्ध निर्वाणकला को अमाकला के साथ अभिव्यक्त करता है। यह शून्याकार शिवलिङ्ग है। इसे गुप्त से गुप्त रखना चाहिए। यह कैसा है? यह परम आनन्द को देनेवाला है। इससे अमृत का क्षरण होता है। यह अति सूक्ष्म है तथा दिखलाई नहीं पड़ता। यहीं पर सर्वविदित परमशिव हैं। वे सम्पूर्ण जीवों के आत्मा और ब्रह्म हैं। योगियों के हृदय के प्रकाश हैं। रस और विरस दोनों संयुक्त रूप में उन्हीं में हैं। वे ही एकमात्र ऐसे सूर्य हैं, जिससे अज्ञान का मोहान्धकार नष्ट होता है। वे हंस रूप में सूर्य-सदृश हैं।

व्याख्या—इस सब का भाव यह है कि यह शून्य अत्यन्त सूक्ष्म और अति रहस्यपूर्ण है। कहा जाता है कि यह सूक्ष्मातिसूक्ष्म है—केश के अग्र भाग का यदि करोड़वाँ भाग किया जाय तो उससे भी सूक्ष्म। यह अथक प्रयत्न तथा दीर्घकाल के निरन्तर अभ्यास और ध्यान से ही साध्य है। यह चन्द्र की सोलहवीं कला की शुद्धता तथा निर्वाणकला को अभिव्यक्त करता है, अर्थात् अन्तःशून्य, अमाकला और निर्वाणकला को, जो त्रिकोण में है, प्रकाशित करता है। ध्यान के द्वारा ही इस प्रकाश की अनुभूति होती है। परमानन्द जो मुक्ति है, उसका स्रोत यही है। कुछ लोग इसका पाठ सकलसुधारूपा-प्रकाशम् भी करते हैं और इसे उस महाशून्य का विशेषण बतलाते हैं जो

त्रिकोण के आन्तर् में है तथा सकल का अर्थ सभी सोलह कलाओं से लेते हैं तथा यह कहते हैं कि परविन्दु चन्द्रमा को सोलह कलाओं सहित अभिव्यक्त करता है। यह विचारणीय कथन है। जब यह कहा जा चुका है कि त्रिकोण पूर्णचन्द्र में है तो फिर इसकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता ही नहीं है। इसके अतिरिक्त पिछले श्लोक में यह कहा जा चुका है कि देवता आराधना करते हैं—'सकलसुरगणैः सेवितम्।' 'शून्य' के लिए 'सेवितम्' का प्रयोग कुछ उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। सेवितम् अर्थात् आराधना का लक्ष्य बिन्दु है, जो त्रिकोण के आन्तर् में है। यदि यह कहा जाय कि परविन्दु शून्य में स्थित है और इसी कारण शून्य की आराधना की जाय तो फिर यदि वहाँ पर परबिन्दु है तो शून्य कहाँ रह गया ?

सुगुप्तम्—केशाग्र के कोटि भाग से भी सूक्ष्मरूप होने से अति गुप्त है।

यत्नात्—चिरन्तर ध्यान करने से।

सकलशशिकलाशुद्धरूपप्रकाशम्—कला निर्वाणकला। इसके साथ चन्द्र की षोडषी कला वर्तमान है। इसका प्रकाश अत्यन्त निर्मल है। सकल—कला के साथ अर्थात् निर्वाणकला। 'शशिकला' शब्द में कला का तात्पर्य अमाकला से लिया जाता है, अर्थात् चन्द्र की सतरहवीं कला। भाव यह है कि परविन्दु यद्यपि अतिसूक्ष्म है तथा दृष्टिगोचर नहीं है, किन्तु ध्यान के द्वारा अमाकला और निर्वाणकला सहित त्रिकोण में दिखलाई देता है। यदि सुगुप्तं के स्थान पर सुगोप्यम् पाठ माना जाय, तब भी यह यत्न से साध्य है।

[वैसे चन्द्रमा में सतरह कला बतलाई गई हैं, किन्तु अमृत का क्षरण अमाकला और निर्वाणकला से इसी स्तर पर माना गया है। स्कन्दपुराण के प्रभासखंड में अन्य कलाओं की विस्तृत चर्चा की गई है।]

त्रिकोण के आन्तर् में अमाकला और निर्वाणकला सहित परबिन्दु रूप शून्य है। इसका प्रकाश ध्यान से ही साध्य है।

परमकन्दम्—कन्द का अर्थ है मूल अर्थात् परम मूल।

अतिशयपरमामोदसन्तानराशेः—मोक्ष का परं कन्द या प्रधान कन्द।

इह स्थाने—कर्णिकाओं के लिए प्रयुक्त है—सहस्रदल कमल की कर्णिकाओं में।

योगिनीहृदय में कन्द का उल्लेख आता है। वहाँ कहा गया है—

'सूक्ष्मरूपं समस्तार्णवृतं परमलिङ्गकम्।
बिन्दुरूपं परमानन्दकन्दं नित्यपदोदितम्॥'

यह कन्द परानन्दकन्द-बिन्दुरूप है अथवा परानन्द बिन्दुरूप में है।

परमशिवसमाख्यानसिद्धः—परमशिव जिनकी ख्याति है, ऐसे देव का निवास है। इस सन्दर्भ में सङ्केतपद्धति का कथन है—

'अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः।
हकारोऽन्त्यकलारूपो विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः।
अनयो सामरस्यं यत् परस्मिन् महसि स्फुटम्॥'

अमृतानन्द स्वामी के अनुसार—'अ इति ब्रह्म।' यह श्रुति का वचन है। आकार परशिव का वाचक है। खं से भी शिव का ही आशय लिया जाता है। ख=आत्मा।

सर्वात्मा—समस्त जीवों का आत्मा वह जीवात्मा है, किन्तु यथार्थ में जीवात्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं है। जो आत्मा है, वही जीव है।

अध्यात्मरामायण में उल्लेख है—

'जीवात्मा परमात्मा च पर्यायो नात्र भेदधीः।
आचार्यशास्त्रोपदेशादैक्यज्ञानं यदा भवेत्।
आत्मनोर्जीवपरयोर्मूलाऽविद्या तदैव तु॥'

जीवात्मा परमात्मा का पर्याय है। जब आचार्य तथा शास्त्रों के उपदेश दोनों की एकता का ज्ञान हो गया तो शिष्य को जीवात्मा-परमात्मा सम्बन्धी मूल विद्या की प्राप्ति हो गयी। श्रुति का यह वाक्य 'तत्त्वमसि' भी इसका द्योतक है। यहाँ तत् और त्वम् में कोई भेद नहीं रह जाता।

रसविरसम्—रस परमानन्द रस को कहा जाता है। अर्थात् परम आनन्द की अनुभूति। यह मोक्ष है। विरस उस आनन्द को कहते हैं, जो शिवशक्ति-योगजन्य सामरस्य है। यह आनन्द रूप है तथा इसमें दोनों ही रस सम्मिलित हैं। अथवा प्रथम रस विषयरस अर्थात् सांसारिक विषयों का आनन्द और विरस अर्थात् सांसारिक विषयों के आनन्द से वैराग्य के फलस्वरूप निवृत्ति। इस भाव से अर्थ होगा कि सांसारिक विषयों के प्रति वैराग्य होने पर उनमें परमानन्द की प्राप्ति होगी।

अज्ञानमोहान्धहंसः—अज्ञानमोह-अन्धकार के लिए हंस अर्थात् सूर्य के समान। जैसे सूर्य अन्धकार का नाश कर देता है, वैसे ही वे अज्ञान और मोह को निर्मूल करते हैं।

सुधाधारासारं निरवधि विमुञ्चन्नतितरां
यतेः स्वात्मज्ञानं दिशति भगवान् निर्मलमतेः।
समास्ते सर्वेशः सकलसुखसन्तानलहरी-
परीवाही हंसः परम इति नाम्ना परिचितः॥ ४३॥

भाष्य—वे भगवान् शिव सदैव निर्मलमति योगिजनों को आत्मज्ञान अर्थात् परमानन्द ज्ञान का निर्देशन करते रहते हैं। किस प्रकार से? अमृतधारा के समान निरन्तर सार रूप में। इससे साधक को, जीवात्मा और परमात्मा के ऐक्य का बोध ही नहीं हो जाता, अपितु वह उसकी अनुभूति भी कर लेता है। वह सभी भूतों में उनके स्वामी के सदृश व्यापक हो जाता है। सर्व सुख समूह में लहरी रूप में रहता है। किस प्रकार? परमहंस रूप में।

व्याख्या—निरवधि—निरन्तर।

अतितराम्—अतिशय।

सुधाधारासारं निरवधि विमुञ्चन्नतितराम्—इसका अर्थ इस प्रकार किया जा रहा है—सुधा अर्थात् अमृत की धारा सार रूप में प्रवाहित हो रही है। सुधा का आधार चन्द्रमा, उससे जो सुधा निःसृत हो रही है। सुधाधारा का यह अमृत जो निःसृत हो रहा है, वह शुक्लवर्ण का है तथा चन्द्रमा की किरणें ही उसे प्रदान कर रही हैं। यह विशेषण इस बात की प्रतीति कराता है कि उसकी संज्ञा भी श्वेत चन्द्रमा के समान है। यह संकेत चन्द्रमा की किरणों के लिए है, जो रौप्य या श्वेत हैं।

आसार का अर्थ है जो उच्चारित हुआ अथवा निःसृत हुआ। सुधाधारा वह जो उस सुधा को ग्रहण करे। सुधा मधुर होती है। यह इसका विशिष्ट गुण है। अतः इस शब्द सुधाधारासारं का अर्थ हुआ—सुधामय शब्द। निरवधि अर्थात् निरन्तर या सदैव तथा अतितराम् का अर्थ है अन्धकार, अज्ञान या भ्रान्ति को नष्ट करने में समर्थ। विमुञ्च का तात्पर्य उच्चारण से है।

सुधा का अर्थ दयानिधान भी किया जा सकता है और सभी का अर्थ है—सार। ब्रह्ममंत्र का सार तथा धारा (सरिता)। इसका भाव यह हुआ कि ब्रह्ममंत्र का सार निरन्तर प्रवाहमान है।

यति—जो निरन्तर अपने उपास्य देवता की आराधना में रत है।

स्वात्मज्ञानम्—स्व अर्थात् जीवात्मा और आत्मा-परमात्मा का ज्ञान। इसका ज्ञान तारकब्रह्ममंत्र से होता है। इससे साधक को जीवात्मा और परमात्मा के ऐक्य का बोध हो जाता है तथा वह इसकी अनुभूति कर लेता है।

दिशति—उपदेश देना। उक्त कथन से गुरु का संकेत मिलता है, क्योंकि मंत्र का उपदेश गुरु ही देता है। तारकब्रह्ममंत्र प्रदान करने में वे ही सक्षम हैं। अतः इससे परमशिव का ही तात्पर्य है। पिछले श्लोक में उन्हें ही गुरु बतलाया गया है।

ललितारहस्य में गुरुतत्त्व का निरूपण करते हुए कहा गया है—

'ख्यातोऽयं पुरुषश्रेष्ठः सर्वदात्मरतिप्रियः।' गुरु ख्यातिमान और पुरुष श्रेष्ठ हैं तथा स्वयं के ही आनन्द में मग्न रहते हैं; आत्मरति प्रिय हैं। यहीं पर यह भी उल्लेख है—

'तेजोरूपा प्रिया तस्य ब्रह्मवर्त्मसुदुर्लभा।
परमं ब्रह्म यत्पादपङ्कजद्युतिवैभवम् ॥'

उनकी प्रिया तेजो रूपा है, जिसको प्राप्त करना बहुत कठिन है। उसे केवल ब्रह्ममार्ग पर चलकर ही प्राप्त किया जा सकता है। परब्रह्म का वैभव उनके चरण-कमलों की प्रभा मात्र है।

इस कथन से स्पष्ट है कि उनके चरण-कमलों की प्रभा एवं सौन्दर्य, परम शिव जो परब्रह्म हैं, उनके हृत्पद्म से कहीं अधिक है। उन तेजोरूपा गुरु प्रिया (शक्ति) के चरणों का स्थान गुरु का ही हृदय है, किसी अन्य पुरुष का नहीं। अतः ये परमशिव ही गुरु हैं, यह तात्पर्य है।

निर्वाणतंत्र का भी कथन है—

'शिरः पद्मे महादेवस्तथैव परमो गुरुः।
तत्समो नास्ति देवेशि ! पूज्यो हि भुवनत्रये।
तदंशं चिन्तयेद् देवि बाह्ये गुरुचतुष्टयम् ॥'

'शिरपद्म में महादेव हैं—परम गुरु। हे देवेशि। तीनों लोकों में और भी कोई उनके समान नहीं है, जिसकी पूजा की जाय। हे देवि ! उनके आकार का ध्यान करो जिसके अन्तर्गत चारों गुरु आ जाते हैं।'

[यहाँ पर शक्ति की प्रशंसा की गई है, जिसके बिना शिव शव हैं और स्पन्दन भी नहीं कर सकते।]

चार गुरुओं का उल्लेख निवार्णतंत्र के उक्त श्लोक में आया है। ये चार गुरु हैं—गुरु, परमगुरु, परापर गुरु तथा परमेष्ठि गुरु।

परमशिव त्रिकोण के बाह्य कर्णिकाओं में तथा हंस के ऊपर हैं, जैसा कि कङ्कालमालिनीतंत्र में उल्लेख है—

'तत्कर्णिकायां देवेशि ! अन्तरात्मा ततो गुरुः।
सूर्यस्य मण्डलं तत्र चन्द्रमण्डलमेव च ॥'

'हे देवेशि ! इस कमल की कर्णिकाओं में अन्तरात्मा है और उसके ऊपर गुरु हैं। यहीं पर चन्द्र और सूर्यमण्डल हैं।'

इसके अनन्तर क्रम से महाशङ्खिनी तक की स्थिति बतला कर कहा है—

'तस्याधस्ताच्च देवेशि ! चन्द्रमण्डलमध्यगम्।
त्रिकोणं तत्र सञ्चिन्त्य क्षयहीनात्मिका कला।
तन्मध्ये कुटिला निर्वाणाख्यसप्तदशी कला ॥'

हे देवेशि ! इसके नीचे त्रिकोण है, जो चन्द्रमण्डल में स्थित है। वहाँ उस क्षय रहित सतरहवीं कला का जिसे निर्वाणकला कहते हैं, साधक को ध्यान करना चाहिए। इस कला की संज्ञा कुटिला भी है।

उक्त कथन से स्पष्ट है कि चन्द्रमण्डल के अन्तः त्रिकोण में अमाकला की स्थिति है। गुरु इसके नीचे हैं और अन्तरात्मा ऊपर स्थित है। कंकालमालिनी में गुरु की स्थिति अन्तरात्मा के ऊपर बतलायी गयी है। अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि ऐसा क्यों कहा गया है कि गुरु हंस के ऊपर हैं। इसका उत्तर है कि अन्तरात्मा और गुरु में कोई पार्थक्य नहीं है, दोनों एक ही हैं। कङ्कालमालिनीतन्त्र में गुरु का ध्यान इस प्रकार वर्णित है—

'सहस्रदलमध्यस्थमन्तरात्मानमुत्तमम् ।
तस्योपरि नादबिन्दोर्मध्ये सिंहासनोज्ज्वलम् ॥
तस्मिन् निजगुरुं नित्यं........................ ॥

'अपने गुरु का नित्य ध्यान करो जो सिंहासन पर विराजमान हैं। यह सिंहासन उत्कृष्ट अन्तरात्मा के ऊपर नाद और बिन्दु के मध्य में है।'

एक अन्य स्थान पर उल्लेख है—

'हंसपीठे मन्त्रमये स्वगुरुं शिवरूपिणम् ।
अमुकानन्दनाथान्तं स्मरेत् तन्नामपूर्वकम् ॥'

'अपने गुरु का ध्यान करो जो मन्त्रमय हंसपीठ पर विराजमान शिव स्वरूप हैं।'

अन्नदाकल्प में उल्लेख है—

'शिरः पद्मे शुक्ले दशशतदले केसरगते ।
पतत्त्रीणां तल्पे परमशिवरूपं निजगुरुम् ॥'

'सहस्रदल कमल में जो श्वेतवर्ण का है, उसके शिर में गुरु का ध्यान करो। वे परमशिव हैं। उनका आसन तन्तुओं के मध्य हंस पर है।'

तन्त्रान्तर में कहा गया है—

'सरोरुहमधोमुखं प्रविलसत् सहस्रच्छदं
क्रमादरुणकेसरप्रकरभास्वरनिर्मलम् ।
तदन्तरपि चिन्तयेदमृतरोचिषो मण्डले
पुराणपुरुषं परं परिगतं महामायया ॥'

'अधोमुख कमल के सहस्रदल से प्रकाशित क्रम से—अरुण, केसर तथा अत्यन्त चमकने वाले निर्मल सूर्य के अन्दर अमृत-मण्डल में पुराणपुरुष जो कि महामाया से घिरा है, उसका चिन्तन करना चाहिए।'

उपरोक्त प्रमाणों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हंस और अन्तरात्मा एक हैं। उनमें कोई भेद नहीं है। निजगुरु ही परमशिव हैं, यह भी स्पष्ट है।

परमशिव सहस्रदल के त्रिकोण में है। इस सन्दर्भ में सहस्रदल कमल की चर्चा निम्नलिखित रूप में आती है—

'तन्मध्ये तु त्रिकोणं स्याद् विद्युदाकाररूपकम्।
विन्दुद्वयञ्च तन्मध्ये विसर्गरूपमव्ययम्।
तन्मध्ये शून्यदेशे तु शिवः परमसंज्ञकः॥'

इसके मध्य या निकट विद्युत् की प्रभा के आकार रूप में त्रिकोण है। त्रिकोण में दो बिन्दु हैं, जिनसे अविनाशी विसर्ग बनता है। वहीं पर शून्यदेश में परमशिव हैं।

उपरोक्त कथन आपस में मेल नहीं खाते हैं, किन्तु एक परिणाम तो स्पष्ट निकलता है कि बारह दल कमल में जो 'ऊर्ध्वमुखी है, उसकी कर्णिकाओं के त्रिकोण में सहस्रार की कर्णिकाओं के नीचे तथा उसके साथ अभिन्न रूप में संयुक्त गुरु की स्थिति है। पादुकापञ्चकस्तोत्र में भी इसका स्पष्ट उल्लेख है। उपरोक्त कथनों से यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि गुरु सहस्रार की कर्णिकाओं के त्रिकोण में है। मध्य त्रिकोण के नीचे त्रिकोणाकार हंस नीचे है; अन्यथा यह कङ्कालमालिनीतंत्र के कथन के विरुद्ध होगा।

समास्ते सर्वेशः—यहाँ कर्णिकाओं में सर्व के ईश्वर 'सर्वेषामीश्वरः' हैं। अब यहाँ पर परमशिव न कहकर सर्वेश्वर कह दिया गया। ऐसी पुनरावृत्ति क्यों? ऐसा करने में भी एक उद्देश्य है। ये 'सर्वेशो हंसः' हैं—सर्वेश ही हंस है, अर्थात् वही मंत्र है—'हंसः'।

प्रपञ्चसार का कथन है—

'सा तत्त्वसंज्ञा चिन्मात्रा ज्योतिषः सन्निधेस्ततः।
विचिकीर्षुर्घनीभूय क्वचिदभ्येति बिन्दुताम्॥
कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति द्विधा।
बिन्दुर्दक्षिणभागश्च वामभागो विसर्गकः॥
तेन दक्षिणवामाख्यौ भागौ पुंस्त्रीविशेषितौ।
हङ्कारो बिन्दुरित्युक्तो विसर्गः स इति स्मृतः॥
बिन्दुः पुरुष इत्युक्तो विसर्गः प्रकृतिः स्मृतः।
पुं-प्रकृत्यात्मको हंसस्तदात्मकमिदं जगत्॥'

'वे जिनकी संज्ञा तत्त्व है, चिन्मात्रा हैं। जब वे ज्योति के सामीप्य में होती हैं, तो वे सृष्टि की कामना करती हैं, वे घनीभूय होती हैं तथा बिन्दु

का रूप ग्रहण कर लेती हैं। उपयुक्त समय पर वे अपने को दो भागों में विभक्त कर लेती हैं—दक्षिण पार्श्व विन्दु और वाम पार्श्व विसर्ग में। ये ही दोनों भाग क्रमशः पुरुष और स्त्री हैं। हं विन्दु है और सः विसर्ग है। विन्दु पुरुष तथा विसर्ग स्त्री है, हंसः प्रकृति और पुरुष का मिलन (सामरस्य) है, जो जगत् में सर्वत्र व्यापक है।'

महाकालीतन्त्र के प्रथम पटल में उल्लेख मिलता है—

'सहस्रारान्तरे शून्ये दिव्यतोरणशोभिते।
चन्द्रमण्डलमध्ये तु हंसवर्णद्वयोपरि।
शुद्धस्फटिकसङ्काशं शुद्धक्षौमविराजितम्॥'

'चन्द्रमण्डल स्थित विन्दु के शून्य देश में, जो सहस्रार में है और दिव्य तोरण से सुशोभित है, हं और सः वर्ण हैं, जिन पर परम का ध्यान करना चाहिए; जो शुद्ध स्फटिक शिला के तुल्य हैं तथा शुद्ध श्वेत रेशम के परिधान (वस्त्र) में हैं।'

यहाँ पर स्पष्ट रूप से अक्षर हं और सः का उल्लेख किया गया है।

अथवा यदि हंसः और परम को पृथक् रूप में मान कर पढ़ा जाय तो इसका अर्थ होगा—'हंसः परम इति नाम्ना परिचितः।' वह, जो हंस और परम नाम से जाना जाता है। ४९वें श्लोक में ग्रन्थकार ने स्वयं हंसः नाम से उसकी चर्चा की है। यदि दोनों शब्दों को एक मान कर ही पढ़ा जाय तो अर्थ होगा—वह जो परमहंसः के नाम से विख्यात है। कर्मधारय समास के एक विशेष नियम के अनुसार इस शब्द की रचना की गई है, जिसमें अन्तः छोड़ दिया गया है। आगमकल्पद्रुम का कथन है—'असौ परमहंसाख्यो युक्तस्थावर-जङ्गमः।' अर्थात् 'परमहंस उसे कहते हैं, जो स्थावर और जङ्गम सभी में व्याप्त है।'

सकलसुखसन्तानलहरीपरीवाह—उनमें हर संभव प्रकार से सभी प्रकार के अविनाशी सुख और निरन्तर आनन्द की अभिव्यक्ति हो रही है। वे आनन्द की चिरन्तनधारा या लहरी हैं।

यह हंसः परमशिव के अधोवर्ती उनके साथ संलग्न है।

सहस्रारकर्णिकायाः सर्वदेवस्थानत्व-वर्णनम्

शिवस्थानं शैवाः परमपुरुषं वैष्णवगणा
लपन्तीति प्रायो हरिहरपदं केचिदपरे।
पदं देव्या देवीचरणयुगलाम्भोजरसिका
मुनीन्द्रा अप्यन्ये प्रकृतिपुरुषस्थानममलम्॥ ४४॥

भाष्य—शैव इसे परमशिव का स्थान कहते हैं। वैष्णव इसे परमपुरुष और अन्य इसे ही हरिहरपद कहते हैं। वे जो देवी के चरण-कमलों के आनन्द के रसिक हैं, इसे देवी का स्थान बतलाते हैं तथा अन्य बड़े-बड़े ऋषि और मुनि इसे प्रकृति-पुरुष का शुद्ध स्थान मानते हैं। एक ही निरञ्जन को अपनी-अपनी भावनाओं के अनुसार अनेक नामों से व्यक्त करते हैं—'ऋजु-कुटिलनानापथजुषां नृणामेको गम्यः' ऐसा पुष्पदन्त का कथन है।

व्याख्या—इसकी कर्णिकाओं में सर्वदेवतामय हंस का अधिष्ठान है। शैव, शाक्त आदि सकल उपासकों के उपास्य देवता का यही स्थान है।

शैवाः—शिव के उपासक। वे इस पद्म में शिव का पद (स्थान) बतलाते हैं।

वैष्णवः—वैष्णव इसे परम पुरुष विष्णु का स्थान कहते हैं।

केचिदपरे—अन्य अर्थात् वे जो हरिहर के उपासक हैं अथवा दूसरे शब्दों में जो विष्णु और शिव दोनों के संयुक्त रूप में उपासक हैं, अर्थात् अकेले शिव या अकेले विष्णु के उपासक नहीं हैं, वे इसे हरिहर का स्थान कहते हैं। वे इसे केवल हरि का स्थान या विष्णु का स्थान नहीं कहते, वरन् हरिहर के स्थान से ही सम्बोधित करते हैं, अर्थात् दोनों का संयुक्त स्थान।

अन्ये—युगल का भजन करने वाले। अथवा हंसमंत्र के उपासक श्रेष्ठ मुनि आदि प्रकृति-पुरुष का स्थान कहते हैं। हंस प्रकृति और पुरुष का रूप है, अतः यह उनका अधिष्ठान है। हं पुरुष और सः प्रकृति।

उक्त विवरण से ज्ञात होता है कि उस स्थान या पद्म में सर्वदेवतामय परबिन्दु का अधिष्ठान है। अतः सर्व उपासक इसे अपने-अपने उपास्य देव के रूप में देखते हैं।

सहस्रारज्ञानफलम्

इदं स्थानं ज्ञात्वा नियतनिजचित्तो नरवरो
न भूयात् संसारे पुनरपि न बद्धस्त्रिभुवने।
समग्रा शक्तिः स्यान्नियममनसस्तस्य कृतिनः
सदा कर्तुं हर्तुं खगतिरपि वाणी सुविमला ॥ ४५ ॥

भाष्य—इस स्थान को तथा शास्त्रों को जिन्होंने जान लिया है तथा अपने चित्त का संयम कर लिया है, वे इस संसार में पुनः जन्म नहीं ग्रहण करते, क्योंकि फिर तीनों लोकों में ऐसा क्या रह गया जो उनको बन्धन में आबद्ध कर सके। मन पर संयम या उस पर नियंत्रण कर लेने के फलस्वरूप वे सर्वशक्तिसम्पन्न हो गये। वे जो चाहे उसे करने में पूर्ण समर्थ तथा जो न चाहे उसे रोकने में भी पूर्ण सक्षम हैं। वे सदैव ब्रह्म के चिन्तन में रहते हैं।

अथवा वे आकाश में भी रमण कर सकते हैं। उनकी वाणी सर्व आह्लादकारी शुद्ध और शक्तिशाली होती है।

व्याख्या—इस श्लोक में सहस्रार के पूर्ण ज्ञान का फल बतलाया गया है। भाव यह है कि सहस्रार का साङ्गोपाङ्ग ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

नियपनिजचित्तः—अपने चित्त का नियंत्रण करना।

न भूयात् संसारे—संसार से मुक्त हो जाता है। जिस साधक ने अपनी आन्तरिक शक्तियों और गुणों का इस स्थान पर नियंत्रण और ध्यान कर लिया, वह संसार से मुक्त हो जाता है अथवा वह बन्धनों में आबद्ध नहीं रह जाता, क्योंकि तीनों लोकों में उसको आबद्ध करने के लिए क्या रह गया। बन्धन का तात्पर्य मायिक बन्धनों—पुण्य और पाप से है।

श्रीमद्भागवत् में कहा गया है—

'कर्मणि क्रियमाणे तु गुणैरात्मनि मन्यते।
तदस्य संसृतिर्बन्धः पारतन्त्र्यश्च तत्स्मृतम् ॥'

'यदि कर्म जो गुणों की क्रियास्वरूप होते हैं, उनका अध्यास आत्मपरक मान लिया जाय तो यही मिथ्या अध्यास बन्धन है और इसी से संसार और दासत्व में आवद्ध होना पड़ता है।

श्रीमद्भगवद्गीता (अध्याय १८ श्लोक ६०) का कथन है—

'स्वभावजेन कौन्तेय ! निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्य स्ववशोऽपि तत् ॥'

'हे कौन्तेय ! अपने स्वाभाविक कर्म से वशीकृत हुए तुम मोह के कारण युद्ध नहीं करना चाहते हो, तब भी विवश हो कर युद्ध करोगे।'

यहाँ पर प्रकृति का विवरण है। हे कौन्तेय ! पूर्वोक्त क्षत्रिय स्वभाव से उत्पन्न शौर्यादि से और अपने निबद्ध वशीकृत अर्थात् स्वाभाविक स्वस्वभाव-बद्ध तुम हो, अतः जो बन्धुवधादि निमित्त युद्ध अविवेक से 'मैं स्वतंत्र हूँ, जैसा चाहता हूँ वैसा ही करूँगा' इस भ्रम से करने की इच्छा नहीं है, वह अवश—स्वभाव के पराधीन इच्छा न रहने पर भी स्वाभाविक कर्म के परतन्त्र और परमेश्वर के पराधीन होकर करोगे।'

पुण्य और पाप के भोग के लिए शरीर धारण करना बन्धन है। स्वर्ग में जीव पुण्य के फल का भोग करता है, पाताल में पाप का भोग करता है तथा मृत्यु लोक में दोनों पाप और पुण्य का भोग करता है। तत्त्वज्ञानी के लिए पाप और पुण्य हैं ही नहीं, और ये ही बन्धन के कारण माने गये हैं। उसके पुण्य और पाप के संचित कर्म ही नष्ट हो जाते हैं। इसके प्रतिफल स्वरूप

वह बन्धन में आवद्ध नहीं रहता, चाहे वह स्वर्ग में रहे या पाताल में अथवा मर्त्यलोक में।

न बद्धः—शरीरी नहीं होता। शरीर होने पर भी वह शरीर का नहीं रहता। वह मुक्त है। जीवनकाल में ही वह जीवन्मुक्त है। प्रारब्ध कर्मों के भोग-पर्यन्त वह जीवन्मुक्त के तुल्य रहता है तथा देहान्त होने पर मुक्त हो हो जाता है।

इस पाप और पुण्य के सम्बन्ध में कुलार्णवतन्त्र का कथन है—

'अश्वमेधशतेनापि ब्रह्महत्याशतेन च।
पुण्यपापैर्न लिप्यन्ते येषां ब्रह्म हृदि स्थितम्॥'

'जिनके हृदय में ब्रह्म का निवास है, वे सौ अश्वमेध भी करें तो उसके फल से अलग ही रहते हैं और यदि सौ ब्राह्मणों की हत्या भी कर डालें तो उसके पाप से भी अलग रहते हैं।'

गीता (३।१८) में भगवान् कहते हैं—

'नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः॥'

'किये हुए कर्म से उसका पुण्यरूप कोई प्रयोजन नहीं है और न करने से भी कोई प्रत्यवाय पाप नहीं है, क्योंकि वह अहंकार रहित हो जाने के कारण विधि-निषेध से अतीत हो गया है।' तथापि 'इसलिए इन देवताओं को यह प्रिय नहीं है कि मनुष्य (परमात्मा) जान लें।' इस श्रुति के अनुसार मोक्ष में देवताओं का किया हुआ विघ्न होना सम्भव होने से उसका परिहार करने के लिए कर्मों द्वारा देवताओं की सेवा करनी चाहिए, यह आशंका करके कहा गया है कि ब्रह्मा से लेकर स्थावर तक समस्त प्राणियों में उसका कुछ भी अर्थ-विषयक आश्रय नहीं रहता। भाव यह है कि मोक्षरूप प्रयोजन में इसका आश्रय लेने योग्य कुछ है ही नहीं, क्योंकि श्रुति ने स्वयं ही विघ्न का अभाव बतलाया है। श्रुति कहती है कि देवगण भी उस आत्मज्ञानी का अमंगल अर्थात् ब्रह्मभाव की प्राप्ति में रुकावट करने में समर्थ नहीं हैं, क्योंकि वह इन सबका आत्मा हो जाता है। देवताओं द्वारा किया हुआ विघ्न सम्यग् ज्ञानोत्पत्ति के पहले ही है, क्योंकि—'इस ब्रह्म को मनुष्य जाने, यह इन देवताओं को प्रिय नहीं है।' इस श्रुति से सूचित होता है कि मनुष्य का ब्रह्मज्ञान पाना देवताओं को अप्रिय है।

इस संसार में उस पुरुष के किये हुए कर्म से भी कोई पुण्य नहीं है और कर्म न करने से पाप नहीं होता है तथा इसका सम्पूर्ण भूतों में कुछ भी मोक्ष या पराभक्ति-लाभ के लिए कोई आश्रयणीय वस्तु नहीं है।'

श्रुति का कथन है—'तस्मिन् मनसि लीने गते सङ्कल्पविकल्पे दग्धे पुण्यपापे सदाशिवः शक्त्यात्मा शान्तः ।' मन जो संकल्पात्मक और विकल्पात्मक है, जब उसमें लीन हो गया, तब पाप और पुण्य दग्ध हो गये तो सदाशिव जो शक्ति और आत्मा (हंसः) हैं, शान्त हैं । गीता का कथन है—

'यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ॥'

जैसे प्रदीप्त हुई अग्नि काष्ठ-समुदाय को भस्मीभूत कर देती है, उसी प्रकार आत्मज्ञान रूप अग्नि प्रारब्ध कर्मों के अतिरिक्त समस्त कर्मों को भस्म कर देती है ।

समग्रा शक्तिः—सर्व कार्यों को सिद्ध करने वाली शक्ति । शक्ति का तात्पर्य है—कार्य करने की क्षमता, हानि करने वाले कार्यों का प्रतिरोध, आकाश में गमन ।

सुविमला—मधुर गद्य और पद्यमयी वाणी ।

अमाकलास्वरूपम्

अत्रास्ते शिशुसूर्यसोदरकला चन्द्रस्य सा षोडशी
शुद्धा नीरजसूक्ष्मतन्तुशतधाभागैकरूपा परा ।
विद्युत्कोटिसमानकोमलतनूर्विद्योतिताऽधोमुखी
नित्यानन्दपरम्परातिविगलत् पीयूषधाराधरा ॥ ४६ ॥

भाष्य—अत्रास्ते—यहाँ पर है । इस पद्य में चन्द्र की प्रसिद्ध सोलहवीं कला अमाकला है । वह कला कैसी है ? प्रातःकालीन सूर्य के समान दीप्त है । अत्यन्त शुद्ध एवं निर्विकार है । कमलतन्तु के सौवें भाग से भी सूक्ष्म रूप है । यह अत्यन्त दीप्तिमान है अथवा पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी के समष्टि रूप में है । यह किस प्रकार ? यह उद्दाम विद्युत् प्रकाश के तुल्य कोमल है । यह नित्य उदित होती है और इसका कभी क्षय नहीं होता तथा अधोमुखी है । इसका उदय ब्रह्म से है, अतः अमृतधारा से निरन्तर प्रवाहित होती रहती है । यह अत्यन्त प्रकाशमान है । अथवा पर और परा के आनन्दरूप मिलन से जो सुधा निःसृत होती है, उसे यह आधार रूप में ग्रहण करती है अथवा यह उसकी निधि या भंडार है । इसका प्रकाश नित्य है, अर्थात् यह नित्य उदित रहती है ।

व्याख्या—श्लोक ४१ और ४२ में यह बतलाया जा चुका है कि सहस्रार की कर्णिकाओं में जो त्रिकोण है, उसके आन्तर् में अमाकला, निर्वाणकला और परबिन्दु विद्यमान हैं । अब उनको विभिन्न एवं विशिष्ट उपाधियों सहित

स्पष्ट रूप से बतलाया जा रहा है। इस श्लोक में अमाकला के विशिष्ट रूपों का वर्णन है।

शिशुसूर्यसोदरः—बालसूर्य रक्तवर्ण का होता है। अतः यह कला रक्तवर्ण की बतलायी गई है।

चन्द्रस्य सा षोडशी—चन्द्रमा की यह कला षोडशी या सोलहवीं कला अमाकला है। यह ऊर्ध्व शक्ति रूपा मानी गई है—यह विश्वनाथ का कथन है। कहा गया है—

'अमा षोडशभागेन देवि प्रोक्ता महाकला।
संस्थिता परमा माया देहिनां देहधारिणी ॥'

'हे देवी ! अमा सोलहवीं कला है। कलाओं में यह महाकला है। परमा माया रूप में यह देहधारियों अर्थात् जीवों की देह का पालन करती है।'

शुद्धा—निष्कलंक।

परा—चित् शक्ति रूप। यह चित् शक्ति है। प्रभासखण्ड में कहा गया है—'संस्थिता परमा माया देहिनां देहधारिणी।' अर्थात् परमा माया ही समस्त देहधारियों के जीवन का पालन करती हैं।

नीरजसूक्ष्मतन्तुशतधाभागैकरूपा—कमल के सूक्ष्म तन्तु उसके सौवें भाग के समान हैं अर्थात् कमल तन्तु को यदि सौ भागों में विभक्त कर दिया जाय तो उसका जो एक भाग होगा, उसके सदृश सूक्ष्म है।

नित्यानन्दपरम्परा—नित्यानन्द ही पूर्णानन्द है और यही ब्रह्म है। यह अमा का विशेषण है।

अतिविगलत्पीयूषधाराधरा—अतिशय अमृत का स्रवण करने वाली। यदि इस शब्द का पाठ एक शब्द मानकर किया जाय अर्थात्—नित्यानन्द-परम्परातिविगलत्पीयूषधाराधरा' तो इसका अर्थ होगा—परं विन्दु रूप शिव, परा—प्रकृति शक्ति, आनन्द—सामरस्य का आनन्द, परम्पराभ्यां—शिवशक्ति के मिलन से, अतिविगलन्ती—सुधा या अमृतधारा का प्रवाह होता है, जिसे अमाकला धारण करती है।

अधोमुखी—सृष्टि की ओर उन्मुख।

इसको दृष्टि में रखते हुए स्वच्छन्दसंग्रह में कहा गया है—

'ब्रह्माणी त्वपरा शक्तिर्ब्रह्मणोत्सङ्गगामिनी।
द्वारं सन्मोक्षमार्गस्य रोधयित्वा व्यवस्थिता ॥
तां भित्त्वा तु वरारोहे ऊर्ध्वशक्ति परां शिवाम्।
शक्तितत्वात्मिकां देवीं प्रसुप्तभुजगाकृतिम् ॥

शक्तितत्त्वं समाख्यातं भुवनैराश्रितं महत् ।
शक्ति तत्त्वात्मिकामूर्ध्वंशक्तेरुपरि संस्थिताम् ॥'

ब्रह्माणी अपरा शक्ति है, जो ब्रह्म की गोद में जानेवाली है। वह मोक्ष-मार्गक द्वार को रोककर खड़ी है। उसे भेदकर हे वरारोहे! उर्ध्वशक्ति जो परम पवित्र है, आत्मिका देवी को, जो सोनेवाले सर्प के आकार की है, उसे शक्तितत्त्व कहा गया है, जो भुवनों की आश्रित है, इस आत्मिका के ऊपर तत्त्व रूप में स्थित है।

योगिनीहृदय में शक्ति के विषय में उल्लेख है—'शक्तौ पुनर्व्यापिकायां समनोन्मनि गोचरे।

निर्वाणकलास्वरूपम्

निर्वाणाख्यकला परा परतरा सास्ते तदन्तर्गता
केशाग्रस्य सहस्रधा विभजितस्यैकांशरूपा सती।
भूतानामधिदैवतं भगवती नित्यप्रबोधोदया
चन्द्रार्द्धाङ्गसमानभङ्गुरवती सर्वार्कतुल्यप्रभा ॥ ४७ ॥

भाष्य—अमाकला के अन्तर्गत निर्वाणकला है। यह कैसी है? प्रकृष्ट से भी प्रकृष्टतर है। केश के अग्रभाग के हजारवें भाग से भी सूक्ष्म है तथा अत्यन्त प्रकाशमान रूपा सती है। और कैसी है? भूतों की अधिष्ठातृ देवता स्वरूप में भगवती स्वरूपा है। यह सर्वव्यापिका है। वे ज्ञान की प्रदाता हैं। अर्धचन्द्र जैसा वक्र आकार है तथा अमाकला के तुल्य स्वरूप है। उनकी प्रभा एक साथ संयुक्त रूप में उदित सूर्यों की प्रभा के समान है।

व्याख्या—इस श्लोक में निर्वाणकला का वर्णन किया जा रहा है।

तदन्तर्गता—अमाकला के अङ्क में स्थित है। अमाकला के अन्दर अर्धचन्द्र रूपी सतरहवीं कला का, जिसे निर्वाणकला कहते हैं, पहले वर्णन आया है।

परा परतरा—अमाकला उत्कृष्ट है और यह उससे भी उत्कृष्ट अथवा श्रेष्ठ है। यह अमाकला के अङ्क में है। यही कुटिला सप्तदशी कला है। यदि परा परतरा के स्थान पर 'परातपरतरा' पाठ माना जाय तो इसका अर्थ होगा—सर्वश्रेष्ठ।

केशाग्रस्य सहस्रधाविभजितस्यैकांशरूपा—केश के अग्रभाग के हजारवें भाग से भी सूक्ष्म रूप है।

भूतानाम्—सर्व प्राणी।

अधिदैवतम्—हार्द चैतन्य स्वरूपा। यह कला सर्व प्राणियों में हार्द चैतन्य स्वरूप में है। अमरकोष में इसका अर्थ प्रेम, स्नेह बतलाया गया है। अर्थात्

हृदय में जिस इष्ट देवता की पूजा की जाती है, वही है। शक्ति स्वयं ब्रह्म का हृदय है, अतः वही उपास्य देव हुईं। इस शब्द का मूल हृद है, जिसका अर्थ है—हृदय। हार्दकला के रूप में देवता की स्थिति है।

नित्यप्रबोधोदया—तत्त्वज्ञान का वोध कराने वाली।

चन्द्रार्द्धाङ्गसमानभङ्गुरवती—अर्धचन्द्र के समान कला रूप अथवा वक्र आकार।

सर्वार्कतुल्यप्रभा—एक साथ बारह सूर्यों के उदय होने की प्रभा तुल्या इस प्रभा या प्रकाश का वर्ण रक्त के समान होता है। इस विशेषण से उनका वर्ण रक्ताभ माना जाता है।

विश्वनाथ का कथन है कि षोडशी कला से अभिप्रेत निम्न प्रकार है—

'एतस्याः परतः स्थिता भगवती भूताधिदेवाधिपा
निर्वाणख्यकलार्द्धचन्द्रकुटिला सा षोडशान्तर्गता।
वालाग्रस्य सहस्रधा विभजितस्यैकेन भागेन या
सूक्ष्मत्वात् सदृशी त्रिलोकजननी या द्वादशार्कप्रभा'॥

वे भगवती अमाकला की वक्ररेखा में हैं—अमाकला के अन्दर नहीं, वरन् चन्द्रमण्डल में है। अमाकला भी उसी का एक अंश है। निर्वाणकला व्यापिनी तत्त्व है। वे अत्यन्त सूक्ष्म केश के हजारवें भाग के तुल्य हैं। उन त्रिलोक जननी की प्रभा एक साथ उगते बारह सूर्यों की प्रभा के सदृश है।

स्वच्छन्दसंग्रह का कथन है—

'आधारं भुवनानां च प्रवक्ष्यामि समासतः।
सूक्ष्मा चैव सुसूक्ष्मा च तथा चैवामृता मृता॥
चतुर्दिक्षु स्थितास्तासां मध्यस्था व्यापिनी स्मृता।
पञ्चवक्त्रा त्रिनेत्रा च सुतेजाख्या च पञ्चमी॥'

जो भुवनों का आधार है, उसके विषय में बतलाता हूँ। वह सूक्ष्मा और सुसूक्ष्म है तथा अमृता और मृता भी है। उसके चारों दिशाओं में स्थित हैं—मध्यस्था, व्यापिनी, पञ्चवक्त्रा, त्रिनेत्रा तथा सुतेजाख्या, यह पाँचवी है।

परंबिन्दुस्वरूपम्

एतस्या मध्यदेशे विलसति परमाऽपूर्वनिर्वाणशक्तिः
कोट्यादित्यप्रकाशा त्रिभुवनजननी कोटिभागैकरूपा।
केशाग्रस्यातिसूक्ष्मा निरवधि विगलत्प्रेमधाराधरा सा
सर्वेषां जीवभूता मुनिमनसि मुदा तत्त्वबोधं वहन्ती॥ ४८॥

भाष्य—इस कला के मध्य स्थान में अर्थात् निर्वाणकला के मध्य में परम

अपूर्वं आद्या निर्वाणशक्ति प्रकाशमान है। इसका प्रकाश करोड़ों सूर्यों के प्रकाश के सदृश है। यही त्रिभुवन जननी तथा सर्वभूतों का आधार है। यह सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। केश के अग्रभाग के करोड़वें भाग के एक भाग से भी सूक्ष्म है। अतः अत्यन्त गुह्य है। उनमें निरन्तर प्रवाहमान आनन्द की धारा है जो सर्वभूतों का जीवन है। मुनियों के मानस में यही तत्त्व ज्ञान का प्रवोध कराती है।

व्याख्या---अव यहाँ पर विन्दु की चर्चा की जा रही है।

विश्वनाथ के अनुसार यह निर्वाणशक्ति समना पद या समनी शक्ति है। इस स्थिति में अनन्त पाश जाल रहते हैं। कहा गया है—'समनान्तर्वरारोहे पाशजालमनन्तकम्।' समना में अनन्त पाश जाल हैं। इससे प्रतीत होता है कि यहाँ भी पाश जाल हैं। मुनियों के मानस में तत्त्वज्ञान का प्रबोध कराती हैं। इसका एक स्थान पर यह अर्थ भी किया गया है कि यह वह तत्त्व है जिससे शिव के साथ शिवे का भेद समाप्त होकर ज्ञान की प्राप्ति होती है। 'निर्वाणकला' का स्थान मध्यदेश में वतलाते हुए इसे सामीप्य सप्तमी भी कहा गया है। समनी शक्ति भी इसी को बतलाते हुए इसे परमा माता आद्याशक्ति भी कहा गया है। परमा-पूर्व निवार्णशक्ति—परमा अर्थात् शक्ति रूप में ब्रह्म। सामीप्य सप्तमी मध्य के निकट किन्तु कुछ ऊपर है। स्वच्छदसंग्रह में इसका उल्लेख निम्नलिखित प्रकार है—

> 'चिदानन्दस्वरूपा तु परा शक्तिस्तदूर्ध्वतः।
> समना नाम सा शक्तिः सर्वकारणकारणा॥
> सर्वाण्डानि विभर्तीयं शिवेन समधिष्ठिता।
> प्रत्यारूढः स भगवान् शिवः परमकारणम्।
> शिवः सर्वस्य कर्तेयं शक्तिः कारणमुच्यते॥'

चिदानन्द स्वरूपा के उपर पराशक्ति है। समना नामक वह शक्ति सभी कारणों का कारण है।

शिव के द्वारा अधिष्ठित यह शक्ति सभी अंडों को धारण करती है। वह भगवान् शिव सभी कारणों में आरूढ़ हैं। शिव सभी के कर्ता हैं और शक्ति का कारण कहे जाते हैं।

एतस्य—निर्वाणकला।

मध्यदेशे—अंक में।

परमापूर्वनिर्वाणशक्तिः---परमा अर्थात् शक्ति रूप में परब्रह्म। अपूर्वा—जिनसे पूर्व कुछ भी नहीं था। सृष्टि के सर्गकाल में जिनका प्राकट्य हुआ। शंकर के मतानुसार—'जो पर के तुल्य महान हैं'।

विलसति परमा——देदीप्यमान। इसका एक अर्थ यह भी किया जाता है–परम के साथ समान स्तर पर सह अस्तित्व है, अथवा वे जिन्हें ब्रह्म का ज्ञान है। यह माया के लिए भी प्रयुक्त हुआ है।

त्रिभुवनजननी——वे तीनों लोकों स्वर्ग, मर्त्य और पाताल की जननी हैं।

केशाग्रस्यातिसूक्ष्मा——केश के अग्रभाग के करोड़वें भाग से सूक्ष्म अर्थात् सूक्ष्माति सूक्ष्म।

निरवधि विगलत्प्रेमधाराधरा——प्रेम आनन्द का आर्द्र भाव है जो प्रफुल्लता से आता है। आशय यह है कि वे अपने आन्तर् में श्रेष्ठ अमृत की धारा प्रवाहित रखती हैं, जिसका उदय या उत्पत्ति शिव और शक्ति के मिलन स्वरूप सामरस्य से हुआ है। यह निरन्तर प्रवाहमान है।

सर्वेषां जीवभूता——सर्व जीव उनका अंश हैं। कहा गया है—

'ज्वलदग्नेर्यथा देवि प्रस्फुरन्ति स्फुलिङ्गकाः।
तस्याश्च्युतं परंविन्दुर्यदा भूमौ पतत्यपि।
तदैव सहसा देवि संज्ञायुक्तो भवत्यपि॥'

हे देवि! जिस प्रकार ज्वलद् अग्नि की शिखाओं या लपटों से स्फुलिंग निकलते हैं, उसी प्रकार से पर विन्दु से जो शिवशक्त्यात्मक है, अर्थात् बिन्दु के अन्तर्गत शिव के साथ शक्ति है, जीव निकलते हैं। जब ये जीव धरा का स्पर्श करते हैं, तो संज्ञा युक्त हो जाते हैं।'

संज्ञायुक्त का तात्पर्य जीव चैतन्य से है। साधारण रूप से यह भी कहा जा सकता है कि इनका नाम और रूप भी हो जाता है। यहाँ पर जीव-सृष्टि पर प्रकाश डाला गया है। यह निर्वाणशक्ति निर्वाणकला के नीचे है तथा नाद रूप निबोधिका के ऊपर है। कहा गया है—

'निर्वाणाभ्यन्तरगता वह्निरूपा निबोधिका।
नादोऽव्यक्तस्तदुपरि कोटयादित्यसमप्रभा॥
निर्वाणशक्तिः परमा सर्वेषां योनिरूपिणी।
अस्यां शक्तौ शिवं ज्ञेयं निर्विकारं निरञ्जनम्।
अत्रैव कुण्डली शक्तिर्विहरेत् परमात्मना॥'

निर्वाणशक्ति के आभ्यन्तर में वह्निरूपा निबोधिका है, जो अव्यक्त नाद है। इसके ऊपर करोड़ों सूर्यों के समान प्रभावाली परमा निर्वाणशक्ति है, जो योनि रूपा है तथा सर्व जीवों की जननी है। यहीं पर ब्रह्म है जो निर्विकार और निरञ्जन हैं। इन्हें ही शिव कहा जाता है। यहीं पर कुण्डली शक्ति परमात्मा के साथ विहार करती है।

निबोधिका अव्यक्त नादात्मिका है और वह्नि (अग्नि) स्वरूपा है। नाद की तीन अवस्थाएँ मानी गई हैं। राघव भट्ट का कथन है—'तमोगुणाधिक्येन केवलध्वन्यात्मकोऽव्यक्तनादः। रज आधिक्येन किञ्चिद्वर्णवद् ध्वन्यात्मकः। सत्त्वाधिक्येन बिन्दुरूपः।' जब तमोगुण की अधिकता होती है तो नाद केवल-ध्वन्यात्मक रहता है, यही अव्यक्त नाद कहा जाता है। जब रजोगुण का आधिक्य रहता है तो नाद वर्ण के समान होता है, अर्थात् नाद में वर्णों की ध्वनि तो रहती है, किन्तु उनका ज्ञान नहीं हो पाता है। सतोगुण के अधिक होने पर नादविन्दु का रूप ग्रहण कर लेता है। ऐसी स्थिति में नाद विन्दु और निबोधिका क्रमशः वह्नि, चन्द्रमा और सूर्य माने गये हैं तथा इनकी प्रवृत्ति को ज्ञान, इच्छा और क्रिया कहा गया है। शारदा में इसको इस रूप में बतलाया गया है—'संज्ञानेच्छा क्रियात्मनो वह्निन्द्वर्कस्वरूपिणः।' यहाँ पर वह्नि रूपा निबोधिका की स्थिति बतलायी गयी है। इसके ऊपर निर्वाणशक्ति है अर्थात् सूर्य, चन्द्र और वह्निमण्डल के ऊपर निर्वाणशक्ति है।

कुलार्णवतंत्र में ब्रह्मध्यान के प्रसङ्ग में कहा गया है—'बिन्दुरूपं परं ब्रह्म सहस्रदलसंस्थितम्।' अर्थात् 'बिन्दुरूप परब्रह्म सहस्रदल में है।' अन्त में कहा गया है—'कर्णिकान्तस्त्रिकोणान्तर्मण्डलत्रयमण्डितम्।' कर्णिकाओं के आन्तर् में त्रिकोण में तीनो मण्डलों से सुशोभित हैं। अथवा सूर्य, चन्द्र और अग्निमण्डल से अलंकृत हैं। यह निर्वाणशक्ति परविन्दु रूप में है, इसकी चर्चा आगे होगी।

ततश्च नादबिन्दुनिबोधिका अर्केन्दुवह्निरूपाः—ज्ञान को यहाँ अग्नि बतलाया गया है, क्योंकि इससे समस्त कर्म भस्मीभूत हो जाते हैं। जब कर्म पूरा हो जाता है और फल प्रत्यक्ष हो जाता है तो कर्म भी समाप्त हो जाता है। इच्छा चन्द्रमा है, क्योंकि इच्छा ही सृष्टि की पुरोगामी और अनादि है। चन्द्र में अमाकला है, जिसका क्षय नहीं होता। क्रिया सूर्य है, क्योंकि सूर्य की भाँति यह सभी वस्तुओं का प्रकाशक है। जब तक प्रयत्न नहीं होगा, तब तक आत्मीयकरण और अभिव्यक्ति कैसे होगी। गीता में कहा गया है कि एक सूर्य से सभी लोक प्रकाशित हो जाते हैं।

उपरोक्त कथन को पूर्णतया समझने के लिए यदि इसे तीन वर्गों में रखा जाय तो अधिक सुविधा होगी—१. नाद, सूर्य और क्रिया, २. बिन्दु, चन्द्रमा, इच्छा तथा ३. निबोधिका, अग्नि और ज्ञान।

निर्वाणशक्तिमध्यस्थ-परब्रह्मस्थानम्

तस्या मध्यान्तराले शिवपदममलं शाश्वतं योगिगम्यं
नित्यानन्दाभिधानं सकलसुखमयं शुद्धबोधस्वरूपम्।

केचिद् ब्रह्माभिधानं पदमिति सुधियो वैष्णवं तल्लपन्ति
केचिद्धंसाख्यमेतत्किमपि सुकृतिनो मोक्षमात्मप्रबोधम् ॥ ४९ ॥

भाष्य——इस शक्ति के मध्य देश के अन्तराल में शिव का निर्मल स्थान है। यह माया से मुक्त है। इसे केवल वे योगी ही प्राप्त कर सकते हैं, जिन्हें नित्यानन्द कहा जाता है। यहाँ सभी प्रकार के सुख हैं और यह स्वयं में ज्ञान है। कुछ इसे परंब्रह्म का स्थान कहते हैं, अन्य सुधीजन इसे विष्णुपद कहते हैं और कुछ इसे मोक्षस्वरूप में हंस का स्थान कहते हैं। ब्रह्म-विष्णु-शिव शक्ति स्वरूप भी इसे हंस का ही पद मानते हैं। ज्ञानार्णव का कथन है—

'हकारे विन्दुरूपेण ब्रह्माणं विद्धि पार्वति।
सकारे सर्गविन्दुभ्यां हरिश्चाहं महेश्वरि।
अविनाभावसम्बन्धाल्लोके हरिहराविति ॥'

व्याख्या——इस स्थान पर निर्वाणशक्ति में जो शून्य देश है, उसमें परब्रह्म के स्थान का निरूपण किया जा रहा है।

निर्वाणशक्ति के मध्य में परब्रह्म का स्थान है। इसके मध्य अन्तराल में परविन्दु रूपा निर्वाणशक्ति को भी बतलाया गया है। यह शक्ति परविन्दु के मध्य शून्य स्थान में है।

शिवपदम्—यह ब्रह्म का स्थान है।

इसके विषय में विश्वनाथ का कथन है कि यह शक्ति की उन्मनी अवस्था है, जिसमें काल या कला, काल और देश कुछ भी नहीं रहता है। यह शिव तनु है अर्थात् शिव का देह। यह कहा गया है—'उन्मन्यते परशिवः।' स्वच्छन्दसंग्रह में कहा गया है—

'या शक्तिः कारणत्वेन तदूर्ध्वे उन्मनी स्मृता।
नात्र कालकला भावो न तत्त्वं न च देवताः ॥
सुनिर्वाणं परः शुद्धं रुद्रवक्त्रं तदुच्यते।
शिवशक्तिरिति ख्याता निर्विकल्पा निरञ्जना ॥
तत्त्वातीतं वरारोहे .... ।'

जो शक्ति कारण से उसके ऊपर है, उसे उन्मनी कहा गया है। यहाँ पर कोई काल या कला का भाव नहीं है और न कोई तत्त्व है, न देवता है।

यह सुनिर्वाण, अत्यन्त शुद्ध रुद्रवक्त्र कही जाती है। यह निर्विकल्प और निरंजना शक्ति शिवशक्ति के नाम से प्रसिद्ध है।

प्रस्तुत श्लोक में 'सकलसुखमयम्' पद के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। विश्वनाथ का कथन है कि इसे 'परं कुलपदम्' मानना चाहिए। इसका अर्थ होता है परमशिव का स्थान, क्योंकि उन्हें अकुल कहा जाता है। कुल

का अर्थ शक्ति है अर्थात् 'अकुल' शब्द शक्ति का प्रतीकात्मक है। अकुल को परं उन्मनी भी कहा जाता है। अकुल पद ही विश्व का विश्राम स्थल है।

तस्या मध्यान्तराले—निर्वाण के मध्य में। विश्वनाथ ने इसे समना बतलाया है। अपने कथन के समर्थन में श्रुति के इस वाक्य को उद्धृत किया है—'यतो वाचा निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह।'

योगिगम्यम्—अत्यन्त सूक्ष्मतर होने के कारण यह मन और वाणी से परे है, अतः योगी केवल ज्ञान से ही इसकी अनुभूति करते हैं। मोक्ष का ज्ञान ही ज्ञान है।

अमलम्—माया से मुक्त है अर्थात् माया का मल नहीं है।

केचिद् वैदान्तिका—वेदान्त के जानकार।

हंसाख्यम्—हंस नाम से जानते हैं।

सुकृतिनः किमपि—अनिर्वचनीय कहते हैं।

आत्मप्रबोधम्—वह स्थान जहाँ आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है अथवा उसकी अनुभूति हो जाती है।

मोक्षम्—उस माया से मुक्ति जो जीव को चारों ओर से आच्छादित किये हुए है। माया का प्रपञ्च नहीं रह जाता। सहस्रदल की कर्णिकाओं के मध्य जो त्रिकोण है, वहाँ माया के बन्धनों से आच्छादित प्रकृति और पुरुषात्मक परबिन्दु है। अतः उल्लेख है—

'सत्यलोके निराकारा महाज्योतिःस्वरूपिणी।
माययाच्छादितात्मानं चणकाकाररूपिणी॥
हस्तपादादिरहिता चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी।
मायाबन्धनमुत्सृज्य द्विधा भित्वा यदोन्मुखी।
शिवशक्तिविभागेन जायते सृष्टिकल्पना॥'

'सत्यलोक में निराकारा महाज्योति-स्वरूपिणी हैं। उन्होंने अपने को माया से आच्छादित कर रखा है और कनक के दाने के समान उनका रूप या आकार है। न उनके हाथ हैं और न पाद। किसी प्रकार का भी कोई अवयव नहीं है। वे ही चन्द्रमा हैं, वे ही सूर्य हैं और वे ही अग्निरूपा हैं। जब वे माया का कञ्चुक उतार फेंकती हैं तो उनके दो रूप रह जाते हैं और उन्मुखी बन जाती हैं। उन्मुखी का तात्पर्य है—सृष्टि करने का सङ्कल्प करना। शिव और शक्ति के विभाग से ही सृष्टि की कल्पना मूर्त रूप ग्रहण करती हैं।'

शिवशक्तिविभागेन—विभक्त होने अथवा पृथक् होने का अर्थ यह नहीं है कि शिव यथार्थ में विभक्त हो गये अथवा शक्ति से पृथक् हो गये, क्योंकि दोनों में अविनाभाव सम्बन्ध है, अर्थात् दोनों एक-दूसरे के अभिन्न अङ्ग हैं।

अपितु तात्पर्य यह है कि वह शक्ति जो प्रलय के समय ब्रह्म के साथ प्रच्छन्न या गुह्य एकात्म रूप में थी, वह व्यक्त होकर सृष्टि रूप में आ गई। यही सृष्टि-कल्पना है। यहाँ पर सत्यलोक का उल्लेख किया गया है, जिसका तात्पर्य यहाँ सहस्रार से है। इस सम्वन्ध में उल्लेख मिलता है—

'निर्गुणो बिन्दुरूपश्च सिद्धिकारणमेव हि।
केचिद् वदन्ति स ब्रह्मा कैश्चिद् विष्णुः प्रकथ्यते॥
कैश्चिद् रुद्रो महापूर्ण एको देवो निरञ्जनः।
आद्याशक्तियुतो देवश्चणकाकाररूपकः॥'

'निरुपाधि विन्दु रूप निःसन्देह सिद्धियों का कारण है। कुछ का मत है कि वे ब्रह्मा हैं, कुछ विष्णु वतलाते हैं और कुछ उन्हें ही रुद्र की संज्ञा से सम्वोधित करते हैं, किन्तु वास्तव या यथार्थ में वे एक महापूर्ण निरञ्जन, जो आद्या शक्ति से कनक के दाने के सदृश संयुक्त हैं और ब्रह्म हैं।

ग्रन्थकार के मतानुसार यह बिन्दु, जो केश के अग्रभाग के करोड़वें भाग से सूक्ष्म है तथा देदीप्यमान है तथा निर्वाणशक्ति के मध्य शून्य भाग में है, यह ब्रह्म पद है। अन्यत्र कहा गया है—

'तन्मध्ये परबिन्दुश्च सृष्टिस्थितिलयात्मकम्।
शून्यरूपं शिवः साक्षाद् बिन्दुः परमकुण्डली॥'

तथा—

'वृत्तं कुण्डलिनीशक्तिर्गुणत्रयसमन्वितम्।
शून्यभागं महेशानि शिवशक्त्यात्मकं प्रिये॥'

'निर्वाणकला के मध्य में परबिन्दु है, जिसकी प्रकृति सृष्टि, स्थिति और लयात्मक (संहार-प्रलय) है। शून्य स्थान में शिव स्वयं हैं और बिन्दु परमकुण्डली है। तथा—बिन्दु मध्य में नहीं है, वरन् परिधि में है। इस प्रकार यह वृत (परिधि) ही कुण्डलिनी शक्ति है, जो तीन गुणों—सत्त्व, रज और तम से युक्त हैं। हे महेशानी! अन्तराल या शून्य भाग शिवशक्त्यात्मक है।'

कुछ वड़े लोगों की मान्यता है कि यह बिन्दु ही सर्वकारण रूप ईश्वर है। पौराणिक इसे महाविष्णु रूप में मानते हैं तथा अन्य इसी को ब्रह्म पुरुष की संज्ञा देते हैं।

कालिका पुराण का कथन है—

'नाहो न रात्रिर्न वियन्न पृथ्वीनासीत्तमो ज्योतिरभून्नवान्यत्।
श्रोत्रादिबुद्ध्याऽनुपलभ्यमेकं प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत्॥'

न वहाँ रात्रि है न दिवस, वहाँ न आकाश है और न पृथ्वी, न अन्धकार है और न प्रकाश है। वहाँ पर वे ही हैं, अर्थात् पुं ब्रह्म, अप्रत्यक्ष अगम्य अतीन्द्रिय ब्रह्म (प्रधान) के साथ संयुक्त।

शारदा का कथन है—

'निर्गुणः सगुणश्चेति शिवो ज्ञेयः सनातनः।
निर्गुणः प्रकृतेरन्यः सगुणः सकलः स्मृतः ॥'

अनादि शिव को निर्गुण और सगुण अथवा निरुपाधिक और सोपाधिक दोनों ही रूपों में जानना चाहिए। जब वे प्रकृति की क्रिया-कलापों से अलग रहते हैं, तो निर्गुण और सकल प्रकृति के साथ जुड़ जाते हैं तो वे सगुण हैं।

शाक्तानन्दतरङ्गिणी का भी यही कथन है—'महामाया माया के बिना निर्गुण और माया से संयुक्त होने पर सगुण हैं।'

इससे यह निष्कर्ष निकलता है बिन्दु सगुण ब्रह्म है। हमें ध्यान रखना चाहिए कि सगुण ब्रह्म वस्तुतः एक ही है, किन्तु अपने-अपने भाव के अनुसार उसका अनेक नामों से कीर्तन और गायन किया जाता है।

महावाक्यार्थनिर्णयः

सुषुम्णा नाड़ी के ऊर्ध्व अन्त में सहस्रदल कमल है। यह शुक्लवर्ण तथा अधोमुखी है। इसके तन्तु अत्यन्त शोभायमान और रक्ताभ हैं। अ से लकार तक पचास वर्ण जो शुक्लवर्ण के हैं, इसकी परिक्रमा एक हजार दलों की बीस बार करते हैं। कर्णिकाओं में हंसः है और इसके ऊपर गुरु हैं जो स्वयं परमशिव हैं। इसके ऊपर अर्थात् गुरु के ऊपर सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल हैं तथा इसके ऊपर महावायु है। महावायु के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र तथा उसके ऊपर महाशङ्खिनी है। चन्द्रमण्डल में विद्युदाकार त्रिकोण है। इसके मध्य में तन्तु के सौवें भाग से भी सूक्ष्म रूप में अधोमुखी चन्द्र की षोडशीकला है। इसका वर्ण रक्ताभ है। इस कला के अङ्क में निर्वाणकला है। यह केश के अग्रभाग के हजारवें भाग से भी अति सूक्ष्म है। यह भी अधोमुखी और रक्ताभवर्ण की है। निर्वाणकला के नीचे की ओर निबोधिका है, जो अग्निरूपा है तथा अव्यक्त नादात्मिका है। इसके ऊपर निर्वाणकला के अङ्क में शिवशक्त्यात्मक परबिन्दु है। इस परबिन्दु की शक्ति निर्वाणशक्ति है, जो तेजो रूपा है तथा हंसः रूप में स्थित है। केश के अग्रभाग के करोड़वें भाग के एक भाग से भी सूक्ष्म स्वरूपा है। यह हंसः ही जीव है। बिन्दु के आन्तर् में शून्य है, जिसे ब्रह्म पद कहते हैं।

आगमकल्पद्रुम के पंचम अध्याय में उल्लेख किये गये वचनों के अनुसार सहस्रदल कमल की कर्णिकाओं के मध्य चन्द्रमण्डल में अ-क-थ त्रिकोण है। इसके मध्य त्रिकोण के सामीप्य में त्रिविन्दु हैं। उसके नीचे के भाग में विन्दु ह कार है। यह विन्दु पुरुषात्मक है। ऊर्ध्व के दोनों विन्दु विसर्ग और सकार रूपा है। यह प्रकृति रूप है, अर्थात् विसर्ग और स प्रकृति के प्रतीक हैं। हंस पुरुष और प्रकृति रूप में अपनी तीन विन्दुओं से प्रतीति कराता है। इसके मध्य में अमाकला है और उसके अङ्क में निर्वाणशक्ति है। उसके मध्य में जो शून्य है, वहाँ परब्रह्म है। उल्लेख है—

'अथ शुभसहस्रारे पूर्णेन्दुमध्यविस्फुरत्।
त्रिकोणं तडिदाभासमकथादिहलक्षयुक्॥
तदन्तरे परं शून्यं विसर्गाधो व्यवस्थितम्।
वालादित्यप्रभा तत्र कला षोडश्यधोमुखी॥
स्रवन्ती सौधधारां वै चन्द्रार्द्धाङ्गविभङ्गुरा।
तदन्तरे परा शक्तिः कोटचादित्यप्रभामयी॥
विसतन्तुसहस्रांशभागरूपा चिदात्मिका।
तदन्तः सच्चिदानन्दो वेदातीतो निरञ्जनः॥
विन्दुः पुरुष इत्युक्तो विसर्गः प्रकृतिर्मता।
पुं-प्रकृत्यात्मको हंसः स्वप्रकाशेन भासते॥'

'श्वेत सहस्रारदल कमल के चन्द्रमण्डल में त्रिकोण अ—क—थ विद्युदाकार रूप में भासमान है, जो ह—ल—क्ष से संयुक्त है। (ये तीनों वर्ण ह ल और क्ष त्रिकोण अ क थ के अन्दर हैं)। इसके अन्दर परविन्दु है जो विसर्ग के नीचे है। इस मण्डल में अधोमुखी षोडशीकला है, जिसका वर्ण नवोदित सूर्य के वर्ण के समान है। इसका आकार अर्धचन्द्र के तुल्य है, जो सदैव सुधाधारा को निःसृत करता रहता है और इसके ही अन्दर परा शक्ति है, जिसकी प्रभा करोड़ों सूर्यों की प्रभा की समता रखती है। इसका आकार कमलतन्तु के हजारवें भाग के एक भाग से भी सूक्ष्म है। यही चिदात्मिका है। इसके अन्दर बिन्दु है जो निरञ्जन पुरुष है, जो इन्द्रियातीत और मन तथा वाणी से अगोचर तथा सच्चिदानन्द है तथा विसर्ग जो वहीं पर है, प्रकृति है। हंस पुं० और प्रकृति दोनों है और वह अपने ही प्रकाश से प्रकाशमान है।'

जो लोग इस मान्यता का अनुकरण करते हैं, वे सकार को बिन्दु के ऊपर रखते हैं तथा गुरु को विसर्ग और बिन्दु के ऊर्ध्व में मानते हैं, जिनसे हंसः संयुक्त रूप में बनता है। किन्तु यह सही नहीं है। निर्वाणतंत्र में कहा गया

है कि गुरु परबिन्दु रूपा शक्ति की आराधना करते हैं, और उनके सामीप्य में है तथा उनकी आराधना में रत हैं। उपासक को सदैव इससे उपास्य से निम्न आधार पर ही आसन रखना चाहिए। कभी भी आसन उससे ऊपरी स्तर पर नहीं होना चाहिए तथा उपास्य के पीछे भी नहीं। निर्वाणतंत्र में उल्लेख है—

'सत्यलोके वीजकोशे चिन्तामणिगृहे शुभे।
ध्यायेन्निरञ्जनां देवीं रत्नसिंहासनोपरि।
तस्यान्तिके निजगुरुं पूजाध्यानपरायणम्॥'

'सत्यलोक में निरञ्जन देवी का ध्यान करो, जो चिन्तामणि-गृह में रत्नजटित आसन या सिंहासन पर विराजमान हैं तथा अपने गुरु का ध्यान करो जो उनके सामीप्य में हैं और उनकी आराधना कर रहे हैं।'

महाकालीतंत्र में अधिक स्पष्टरूप में कहा गया है कि गुरु का स्थान हं और सः के ऊपर है। यह स्मरण रखना चाहिए कि यदि किसी ग्रन्थ में इससे भिन्न विचार मिलते हैं तो उन पर विचार करना और अन्य पद्धतियों को समझना आवश्यक है।

[ज्ञानार्णवतंत्र में कहा गया है कि पार्वती हकार में बिन्दु (हं) सहित है और वे ब्रह्म हैं। हे महेश्वरी। विसर्ग के दोनों विन्दु (सः) हरि और मैं स्वयं हूँ। इस अविनाभाव-सम्वन्ध के कारण ही इस संसार में हरिहर का स्मरण करते हैं।]

श्रीपूर्णानन्दयति विरचित श्रीतत्त्वचिन्तामणि में
षट्चक्रनिरूपण के छठे अध्याय का
सप्तम प्रकरण समाप्त।

अष्टमप्रकरणम्

हूङ्कारेणैव देवीं यमनियमसमभ्यासशीलः सुशीलो
ज्ञात्वा श्रीनाथवक्त्रात् क्रममिति च महामोक्षवर्त्मप्रकाशम् ।
ब्रह्मद्वारस्य मध्ये विरचयति स तां शुद्धबुद्धिस्वभावो
भित्वा तल्लिङ्गरूपं पवनदहनयोराक्रमेणैव गुप्तम् ॥ ५० ॥

भाष्य—यम-नियम के अभ्यास से जो साधक शील स्वभाव हो गया है और जिसने गुरुमुख से महामोक्ष पथ के क्रम का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, वह साधक केवल हूंकार से ही देवी कुण्डलिनी को जाग्रत कर लेता है। वह स्वयंभूलिङ्ग का छेदन या भेदन करके देता है जो अभी तक वन्द था। इस कारण अभीतक दिखलाई नहीं पड़ता था, किन्तु अग्नि और वायु के दवाव से उनको ब्रह्मद्वार पर पहुँचा देता है।

साधक किस प्रकार के स्वभाव का हो? उसकी शुद्ध बुद्धि हो। सुप्त कुण्डलिनी कैसे जाग्रत होती है? पवनदहनयोरिति—पवन के योग से दहन में तीव्रता आ जाती है तथा इससे उसकी गति ऊर्ध्वगामी होती है अर्थात् जाग्रत होने पर सर्प आकृति होकर ऊर्ध्व गति में। कहा गया है—

'मूलाधारे स्मरेद्दिव्यं त्रिकोणं तेजसां निधिम्।
तस्याग्निरेखामानीय अध ऊर्ध्वंव्यवस्थिताम् ॥'

ऊर्ध्वाम्नाय के अनुसार—

'प्रज्वलद्भुजगाकारा पद्मतन्तुनिभा शुभा।
सर्वेषां जननी प्रोक्ता सूर्यकोटिसमप्रभा ॥
प्रबुद्धा वह्नियोगेन मनसामन्धता हता।
सूचीव गुणमादाय व्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्णया ॥
उद्घाटयेत् कवाटं तु यथा कुञ्चिकया हठात्।
कुण्डलिन्या तथा योगी मोक्षद्वारं प्रभेदयेत् ॥'

व्याख्या—सहस्रार के वर्णन के साथ चक्रों का वर्णन समाप्त हो गया। अब यहाँ पर कुण्डलिनी के मिलन का प्रसंग प्रारम्भ होता है। इसको आरम्भ करने से पूर्व इस तथ्य की चर्चा आती है कि कुण्डलिनी को किस प्रक्रिया से जाग्रत किया जाय। इस विषय में सर्वमान्य निर्णय यही है कि कुण्डलिनी को जाग्रत करने की प्रक्रिया का ज्ञान अपने गुरु से ही प्राप्त करना चाहिए।

प्रस्तुत श्लोक का भाव यह है कि जिस साधक ने योगाभ्यास में दक्षता प्राप्त कर ली है, उसे अपने गुरु से ही इस प्रक्रिया की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। इस प्रक्रिया में वक्ष या हृदय का संकुचन तथा अग्नि और वायु की शक्ति आदि से कुण्डलिनी का जागरण करना सम्मिलित है। अपने गुरु से इस प्रक्रिया का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेने पर ही साधक कुण्डलिनी को जागृत करता है। वह अग्नि और वायु तथा कूर्च मंत्र 'हूं हंसः' के जाप से कुण्डलिनी को जागृत करने का उपक्रम करता है। इससे स्वयंभूलिङ्ग का भेदन हो जाता है तथा कुण्डलिनी ब्रह्मद्वार पर पहुँच जाती है अथवा उसका प्रवेश चित्रिणी नाड़ी के मुख के मध्य में हो जाता है।

हूङ्कारेण—आगमकल्पद्रुम का कथन है—'ततो हंसमुपस्मृत्य शनैराकुञ्च-येद् गुदम्।' मानसिक रूप से हंसमंत्र का जाप करके गुदा का संकुचन धीरे से करे। यह संकुचन अश्विनी मुद्रा में किया जाय। ललितारहस्य के ग्रन्थकार का कथन है कि कुण्डलिनी को गतिशील बनाने के लिए मंत्र 'हूं हंसः' का जाप आवश्यक है। इस विषय में यह माना गया है कि मंत्र के जाप के बाद गुदा का संकुचन करना चाहिए। इससे यह आभास मिलता है कि जीवात्माको जिसका स्थान हृद् देश में है तथा जो दीपशिखा के आकार में है, हृद् देश से मूलाधार में लाया जाय और जीवात्मा भी कुण्डलिनी के साथ ही साथ जाये। आगमकल्पद्रुम का यह भी कथन है—'आरोप्यारोप्य शक्ति कमलजनिलया-दात्मना साधकेन्द्रः।' अर्थात् 'साधक को चाहिए कि शक्ति को बार-बार आत्मा के सहित ब्रह्मस्थान से उठाये···।' इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कुण्डलिनी का चालन आत्मा या जीवात्मा के साथ ही होना चाहिए।

कालीकुलामृत का कथन है—

'हृदयाद्धंसमनुना नीत्वा जीवं मुखाम्बुजे।
हूङ्कारेण समुत्थाय कुण्डलीं परदेवताम्॥'

हृदय से जीवात्मा को हंसः मन्त्र से मूलाधार में लाकर तथा परम देवता कुण्डलिनी को हूंकार से जागृत करे।

कङ्कालमालिनीतन्त्र में उल्लेख है—

'आकृष्य प्रणवेनैव जीवात्मानं नगेन्द्रजे।
कुण्डलिन्या सह प्राणं गन्धमादाय साधकः।
सोऽहं तु मनुना देवि! स्वाधिष्ठाने प्रवेशयेत्॥'

'हे पर्वतराज की पुत्री! जीवात्मा को प्रणव के द्वारा लाकर साधक को प्राण और गन्ध को सोऽहं मंत्र के द्वारा कुण्डलिनी सहित गतिशील बनाये अर्थात् जागृत करे तथा देवी का स्वाधिष्ठान में प्रवेश कराये।'

सुधीजनों को उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि जीवात्मा से हृदय से प्रणव या हंस मंत्र के द्वारा मूलाधार में लाया जाता है। केवल कूर्च बीजमंत्र से कुण्डलिनी को जागृत किया जाय।

शिवतन्त्र का कथन है—

'अकुलेश्वरदेवस्य सम्वन्धः प्रथमः स्थितः।
रूपातीतः परो बिन्दुः शक्त्या वेष्टितभास्वरः।
अतो नादो विरोधी च अर्द्धचन्द्रसमुत्क्रमात् ॥
एतत् तु पञ्चमं प्रोक्तं ज्ञानरत्नं महोदयम्।
तत्रैतद् दक्षिणं षट्क्रमाज्ञापूर्वं कुलोद्भवम् ॥'

सुशीलः—वह साधक जो नियमित रूप से योगाभ्यास करता है और इस प्रकार उसने अपने को प्रशिक्षित कर लिया है; ऐसे ही साधकों की संज्ञा सुधी भी वतलायी गयी है।

यमनियमसमभ्यासशीलः—यह ध्यान देने की बात है कि केवल यम-नियम के अभ्यास से ही प्रारम्भिक योग की प्रक्रियाओं में सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती, वरन् साधक को योग में विघ्न उत्पन्न करने वाले काम और क्रोध का भी शमन करना चाहिए। अंग योग भी आवश्यक है। इस विषय में गौतमीयतन्त्र में उल्लेख है—

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम्।
क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचञ्चेति यमा दश ॥
जपः सन्तोष आस्तिक्यं दानं देवस्य पूजनम्।
सिद्धान्तश्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्च तपो हुतम्।
दशैते नियमाः प्रोक्ता योगशास्त्रविशारदैः ॥'

'योगशास्त्र के विद्वानों ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, क्षमा, धृति, मिताहार तथा शौच को 'यम' कहा है तथा जप, सन्तोष, आस्तिक्य, दान, देवताओं का पूजन, सिद्धान्त अथवा वेद-श्रवण, तप, ह्रीं और मति—ये दस नियम वतलाये हैं।

साधक को अभ्यास के द्वारा लोभ, क्रोध, मोह, अहंकार आदि वृत्तियों का शमन करना चाहिए। क्योंकि ये वृत्तियाँ योग में बाधक मानी गई हैं। उसे अपने में ऐसी वृत्तियों को विकसित करना चाहिए, जिनसे आन्तर् वायु पर नियंत्रण होकर मानसिक दृढ़ता और एकाग्रता आये। इसी दृष्टिकोण से ग्रन्थकार ने ५४वें श्लोक में कहा है—'योगीयमाद्यैर्युतः।' राग और मोह आदि से जिसका मन उद्वेलित होता है, उनके लिए यम-नियम का अनुशीलन

अनिवार्यतः आवश्यक है। यह वात दूसरी है कि कुछ लोग जन्म-जन्मान्तर के शुभकर्मों के फलस्वरूप तथा स्वभावतः काम-क्रोधादि वृत्तियों से रहित होते हैं तो वे बिना प्रारम्भिक तैयारियों के योगाभ्यास में सक्षम हो जाते हैं।

श्रीनाथवक्त्रादिति—गुरु के उपदेश के बिना क्रम-ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। अतः ठीक ही कहा गया है—'गुरूपदेशतो ज्ञेयं न तु शास्त्रार्थकोटिभिः।' अर्थात् गुरु के उपदेश के विना ज्ञान नहीं मिलता, भले ही करोड़ों शास्त्रों का अध्ययन कर लिया जाय।

क्रमः—विधिवत्। किस क्रिया के बाद कौन-सी क्रिया की जाय।

महामोक्षवर्त्मप्रकाशमिति—इसका तात्पर्य उस प्रक्रिया से है, जिसके द्वारा चित्रिणी नाड़ी के मध्य छिद्र में प्रवेश होता है। इसका प्रकाश प्रस्फोटन के फलस्वरूप ही होता है। इसी को क्रम भी वतलाया गया है।

सः—वह व्यक्ति जिसने योगाभ्यास के द्वारा अपने को अधिकारी बना लिया है।

शुद्धबुद्धिस्वभावः—शुद्धबुद्धि का तात्पर्य ब्रह्म से है। वह व्यक्ति जिसका स्वभाव ब्रह्म में लीन हो गया है। इसका अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है—वह व्यक्ति जिसका भाव शुद्धबुद्धि के फलस्वरूप स्व अर्थात् आत्मा में लीन है। शंकर ने 'स्वभाव' के स्थान पर 'प्रभाव' पाठ माना है, जिससे इसका अर्थ होगा—वह व्यक्ति जो बुद्धि की शुद्धता से शक्तिमान है।

सुगुप्तम्—यह शब्द या तो लिङ्ग के विशेषण के रूप में प्रयुक्त किया गया है अथवा स्थान के क्रिया-विशेषण रूप में। पहिली दशा में अर्थ होगा कि मुख वन्द है, अतः दिखलाई नहीं देता, सुगुप्त है। दूसरी दशा में अर्थ होगा अप्रकाशित।

कुण्डलिनी का उत्थापन (जागरण) किस प्रकार किया जाय, इस सन्दर्भ में आगमकल्पद्रुम की पाँचवी शाखा में उल्लेख है—

'पद्मासने निवेश्याङ्के ततः पाणिद्वयं न्यसेत्।
तो हंसमुपस्मृत्य शनैः सङ्कोचयेद् गुदम्॥
वायुमुत्तोलयेत् तेन वर्त्मना स पुनः पुनः।
उत्तोल्य भेदयेच्चक्रं तस्याऽनुष्ठानमुच्यते॥
मूलाधारसरोजे तु त्रिकोणमतिसुन्दरम्।
कामो भवति तन्मध्ये वालार्ककोटिसन्निभम्।
तदूर्ध्वे कुण्डलीशक्तिं स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिनीम्॥'

'साधक पद्मासन में वैठे और अपने दोनों हाथों को गोद में एक-दूसरे पर रखे। इसके पश्चात् हंसः मन्त्र का मानसिक जाप करे और गुदा का धीरे-धीरे

संकुचन करे। वायु को धीरे-धीरे 'तेन व्रतमान' अर्थात् उसी मार्ग से जिससे कुण्डलिनी को जाना है, ऊर्ध्व की ओर ले जाये। वह निरन्तर बार-बार ऐसा करता रहे। इस प्रकार उसे ऊर्ध्व कर चक्र का भेदन करने दे। अब इसकी प्रक्रिया बतलायी जाती है—'मूलाधार कमल में एक अति सुन्दर त्रिकोण है। इसके मध्य काम है। इसका तात्पर्य कामवायु से है। इसकी प्रभा करोड़ों नवोदित बालसूर्यों की प्रभा के सदृश है। कामवायु के ऊपर तथा स्वयम्भू लिङ्ग को घेरे हुए कुण्डलिनी शक्ति है।' कामाग्नि के उत्तेजन कूर्च मन्त्र के जाप के फलस्वरूप उसमें अर्थात् कुण्डलिनी में परमहंस से मिलन की तीव्रता आयेगी।

भूतशुद्धितन्त्र का कथन है—

'हृदिस्थां कुञ्चिकां कृत्वा गत्वा तदुदरे शिवे।
कण्ठाद्यं समनुप्राप्य द्वारं कुञ्चिकया हठात्॥
उद्घाटच परमेशानि पवनेन प्रदीपयेत्।
हुताशनप्रतप्तां तु तापेन भृशमूर्ध्वताम्॥
प्रसुप्तां नागिनीं लिङ्गे योनिवक्त्रे प्रबोधयेत्।
ततः प्रचालयेद् वायुं यावन्नाडचन्तरेषु च॥
गुरूपदिष्टमार्गेण सकृदा कुम्भकेन वै।
आक्रम्यैवं ततो जीवं सुगुप्तेन पथा भृशम्॥
ऊर्ध्वोच्छ्वासैरूर्ध्वमुखान् कारयेत् पङ्कजान् शिवे।
प्रबोधयन् शनैर्भानुं मेरुशृङ्गं नयेत् सुधीः॥'

'हे शिव ! साधक अपनी छाती (हृदय) का भी संकुचन करे और अपनी श्वास को भी वहीं रोके रहे। इससे श्वास की ऊर्ध्व गति नहीं होने पायेगी। उसे कण्ठ के आधार पर भी नियंत्रण रखना चाहिए। शरीर के अन्य अवयवों पर भी नियंत्रण रखा जाय और इस स्थिति में सहसा कपाट को उसी प्रकार खोल दे जैसे चाबी से-ताले को एकदम खोल दिया जाता है। हे परमेश्वरी ! इससे कामाग्नि पवन के वेग के कारण और प्रज्वलित होगी। इससे नागिन (कुण्डलिनी) जो मूलाधार में लिङ्ग पर प्रसुप्त है, जागृत की जाय। अग्नि की दाह के कारण लिङ्ग में ही योनिमुख पर ही जागृत किया जाय तथा अग्नि-दाह के परिणामस्वरूप उसे आधिकारिक रूप से ऊपर जाने अर्थात् आरोह के लिए विवश किया जाय। अर्थात् मूलाधार स्थित त्रिकोण जो मूलाधार में स्वयम्भू लिङ्ग को आच्छादित किये है, उसके ऊर्ध्व की ओर।'

'कुम्भक के नियमानुसार वायु को नाड़ी में बढ़ाया जाय। इसके लिए गुरु ने जिस क्रिया का निर्देश किया है, उसे कार्यान्वित किया जाय। जीव को भी

अनुशासित और नियंत्रित कर इस गुह्य पथ से ही ले जाया जाय। श्वास ऊर्ध्वं-गति में रहे, जिससे समस्त कमल, जो अधोमुखी थे, ऊर्ध्वंमुखी हो जायेंगे। कुण्डलिनी के पूर्णतया जागृत हो जाने पर सुधी जनों को चाहिए कि वे उसे भानु (सूर्य) तक ले जायें, जो सहस्रार के शिखर मेरु पर है।'

अब संक्षेप में सकल वचनों का पर्यालोचन कर प्रक्रिया बतलाई जा रही है—योगी को चाहिए कि विहित आसन मुद्रा में बैठे। अपने दोनों हाथों को एक-दूसरे पर अपने अङ्क में इस प्रकार रखे कि दोनों हाथों की हथेलियाँ एक-दूसरे पर रहें—बायें हाथ की हथेली नीचे और दाहिने हाथ की ऊपर। इसके बाद शरीर के अन्तर्भाग में वायु को पूर्णतया भर ले तथा चित को खेचरी मुद्रा में दृढ़ करे। शरीर में जो वायु भरी है, उसे कुम्भक द्वारा रोके रहे। कुम्भक प्राणायाम में श्वास को रोके रखा जाता है। इसके पश्चात् हृदय का संकुचन करे। ऐसा करने से श्वास की ऊर्ध्वं गति रुक जायेगी। इसके पश्चात् जब उसे यह अनुभव हो कि पेट से लेकर तालु तक की वायुनाड़ियों के मार्ग से नीचे की ओर बढ़ रही है तो उसे गुदा का संकोचन करना चाहिए। अपान को भी रोका जाय। इसके पश्चात् फिर वायु की गति ऊपर की ओर की जाय और इसे 'काम' को देना चाहिए, जो त्रिकोण के अन्दर मूलाधार कमल की कर्णिकाओं में है। वायु को दक्षिण से वाम की ओर घुमाया जाय (वामव्रतेन), यहाँ पर जालंधरबन्ध उपयोगी है। इस क्रिया से कामाग्नि दीप्त होती है तथा कुण्डलिनी उत्तप्त होती है। इसके बाद स्वयम्भूलिङ्ग के मुख का भेदन 'हूं' बीज मन्त्र के द्वारा किया जाय तथा कुण्डलिनी को 'हूं' मन्त्र के द्वारा चेतन कर चित्रिणी नाड़ी के मुख के मध्य में परमशिव के साथ सामरस्य के लिए प्रविष्ट कराया जाय।

साधारणतया सामरस्य शब्द का प्रयोग भौतिक जगत् में मैथुन-क्रिया के लिए किया जाता है।

कुण्डलिनीयोगप्रकारः

भित्वा लिङ्गत्रयं तत्परमरसशिवे सूक्ष्मधाम्नि प्रदीपे
सा देवी शुद्धसत्त्वा तडिदिव विलसत् तन्तुरूपस्वरूपा।
ब्रह्माख्यायाः शिरायाः सकलसरसिजं प्राप्य देदीप्यते तन्-
मोक्षाख्यानन्दरूपं घटयति सहसा सूक्ष्मतालक्षणेन ॥ ५१ ॥

भाष्य—वे देवी उन लिङ्गों—स्वयम्भू, बाण और इतर का भेदन कर सकल पद्मों को प्राप्त कर, जिन्हें ब्रह्मनाड़ी कहा जाता है, परम प्रभा से पूर्ण देदीप्यमान रहती हैं। इसके अनन्तर वे कमल के तन्तु से भी सूक्ष्म आकार और अत्यन्त प्रभावान् रूप में शिव-सदृश अचिरद्युति युक्त परमानन्द रस में

पहुँच जाती हैं तथा आकस्मिक ढंग से मोक्षानन्द उद्भूत कर देती हैं। वे कैसी हैं? शुद्ध सत्त्वा हैं। और कैसी हैं? विद्युत् के समान तन्तु रूप में प्रकाशमान हैं। शिवे क्यों कहा? उनका धाम सूक्ष्म है। उनकी दीप्ति प्रकृष्ट है।

व्याख्या—अब यह बतलाया जा रहा है कि कुण्डलिनी और शिव का मिलन किस ढंग से होता है। इस श्लोक का अर्थ संक्षेप में इस प्रकार है—देवी कुण्डलिनी स्वयम्भू, बाण और इतर इन तीनों लिंगों का भेदन करती हैं और इस प्रक्रिया में वे अपना मार्ग बना लेती हैं। जब वे ब्रह्मनाड़ी में स्थित कमलों पर पहुँचती हैं तो उनकी प्रभा सम्पूर्ण रूप से इन कमलों में प्रकाशित होती है। जब वे सूक्ष्म आकार में होती हैं तो इतनी सूक्ष्म जितना कमल का तन्तु। वे शिव के सामीप्य में पहुँचती हैं, जो स्वयमेव परमानन्द हैं और जो अपने बिन्दु रूप में सहस्रार कमल की कर्णिकाओं में हैं तो वे साधक को नित्यानन्द रूपी मुक्ति प्रदान कर देती हैं, जबकि उसकी कोई सम्भावना ही नहीं प्रतीत होती थी।

भित्वा—भेदन। जो मार्ग अभी तक अवरुद्ध था, उसके मध्य मार्ग बनाना। वे तीन लिङ्गों, षट्चक्रों तथा इन चक्रों में स्थित पंच शिवों का अर्थात् चौदह ग्रन्थियों का भेदन करती हैं। शाक्तानन्दतरङ्गिणी मे कहा गया है—'गच्छन्तीं ब्रह्मरन्ध्रेण भित्वा ग्रन्थींश्चतुर्दश।' चौदह ग्रन्थियों का भेदन कर ब्रह्मरन्ध्र में जाती है। स्वतन्त्रतन्त्र में उल्लेख है—

'षट्चक्रस्थान् शिवान् भित्वा देवी गच्छति निष्कलम्।
चक्राधिष्ठानतो रूपं धृत्वा तत्तन्मनोहरम्॥
मोहयित्वा महेशानमानन्दाप्लुतविग्रहम्।
रमित्वा तत्र तत्रैव यावत् प्राप्नोति शाश्वतम्।
मोहितः परया यस्मात् तस्माद्भिन्न उदाहृतः॥'

'षट्चक्रों में स्थित छः शिवों का भेदन कर देवी निष्कल या निर्गुण ब्रह्म पर पहुँचती हैं। जैसे-जैसे वे विभिन्न चक्रों पर पहुँचती हैं, वे उन-उन चक्रों के शुभ गुण और स्वभाव को अपने भिन्न-भिन्न स्वरूपों में समावेश करती जाती हैं और इस प्रकार प्रत्येक चक्र के शिव को अपने मनोहर रूप से मोहित कर तथा उनके साथ जो आनन्द से परिपूर्ण हैं, आनन्दोपभोग या रमण कर शाश्वत शिव के समीप पहुँचती हैं, जो इन सबसे भिन्न हैं, क्योंकि वे परा से विमोहित हैं।'

मायातन्त्र में उल्लेख है—

'भित्वा लिङ्गत्रयं देवी शक्तिमार्गेण गच्छति।
तत्तद्रूपेण चक्रेषु निष्कलं प्राप्य निर्वृता॥'

देवी तीनों लिङ्गों का भेदन कर शक्तिमार्ग से जाती हैं। चक्रों में जो ये लिङ्ग हैं, उनका भेदन विभिन्न स्वरूपों से करती हैं। सहस्रार में निष्कल के साथ समागम होने पर वे निवृत हो जाती हैं।

तत्तद्रूपेण—वैखरी, मध्यमा और पश्यन्ती का भाव है। कहा है—

'प्रथमे वैखरीभावो मध्यमा हृदये स्थिता।
भ्रूमध्ये पश्यन्तीभावः पराभावस्तु बिन्दुनि ॥'

'पहला भाव वैखरी है तथा मध्यमा हृदय में है तथा पश्यन्ती और परा भाव विन्दु में है।'

११वें श्लोक के अनुसार परा का स्थान मूलाधार है, पश्यन्ती स्वाधिष्ठान में और वैखरी मुख में है। यहाँ पर लय-क्रम वतलाया गया है। इसका अर्थ है कि परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी ये चारों शब्दोत्पादिका शक्तियाँ हैं, अर्थात् इनसे शब्दों का उत्पादन होता है। ये कुण्डलिनी की भेदरूपा हैं। अतः जब कुण्डलिनी सहस्रार की ओर गमन करती है तो प्रथम स्वयंभूलिङ्ग के समीप वैखरी रूप में स्वयंभूलिङ्ग को मोहित कर, हृदय में वाणलिङ्ग को मध्यमा भाव से तथा भ्रूमध्य में इतरलिङ्ग को पश्यन्ती भाव से मोहित कर परबिन्दु के निकट परा भाव को प्राप्त हो जाती है। चक्रभेद का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

चित्रिणीविवरे रक्तमेदपङ्कसमुद्भवान्।
सव्यदक्षपार्श्वयोश्च नालस्थान् वाहयेच्च तान् ॥
पद्मान् नाडीमध्यवर्त्मरोधितान् परमेश्वरि।
नालं वामं विशेत् पद्मं तेन भेदः प्रजायते ॥
यथा शिल्पवतीं रश्मिवाहीं लालयति प्रभुः।
भेदयित्वा तथा चक्रं षड् जीवेन नयेच्च ताम् ॥'

हे परमेश्वरी! साधक को चाहिए कि वह कुण्डलिनी के साथ उन पद्मों को भी लेता जाय जो चित्रिणी के विवर में स्थित हैं। इनका उदय रक्त तथा मज्जा से उसी प्रकार हुआ है, जैसे कमलों की उत्पत्ति सरोवर में कीचड़ से होती है [इस प्रक्रिया को कुण्डलिनीयोग कहते हैं अथवा यह भूतशुद्धि है, जैसा कि शंकर ने अपनी टिप्पणी में वतलाया है]। उसे बायीं ओर से नीचे से नाल में प्रवेश करना चाहिए और इस प्रकार से चक्र-भेदन हो जायेगा। इस प्रकार छः चक्रों का भेदन कर लेने पर कुण्डलिनी को जीव सहित ठीक उसी प्रकार आगे बढ़ाना चाहिए। अश्वारोही शिक्षित घोड़ी को वाग पकड़ कर आगे बढ़ाता है।'

यह भी कहा गया है—

'षट्चक्रसन्धिमार्गेण सुषुम्णावर्त्मना तथा ।
हंसेन मनुना देवीं सहस्रारं समानयेत् ॥'

'देवी को हंस मन्त्र के साथ आगे की ओर सहस्रार में बढ़ाया जाय या ले जाया जाय और सुषुम्णा नाड़ी में इन चक्रों के जो सन्धि-स्थल हैं, उनसे ही ले जाया जाय ।

सूक्ष्मधाम्नि प्रदीपे—प्रभा या द्युति-स्फुरण ही हंस है, जो परविन्दु का तेज है । यही सूक्ष्म धाम अर्थात् निर्वाणशक्त्यात्मक परविन्दु ही तेज रूप में हंस है, जो देदीप्यमान है । इससे परमशिव प्रदीप्त हैं ।

शुद्धसत्त्वम्—शरीरावच्छिन्न चैतन्य पाँच प्रकार का होता है—सत्त्व, अति सत्त्व, परम सत्त्व, शुद्ध सत्त्व और विशुद्ध सत्त्व । इनमें शुद्ध सत्त्व चौथी तुरीया अवस्था है । ब्रह्मनाड़ी का तात्पर्य चित्रिणी से है । छहों पद्म इस चित्रिणी नाड़ी में हैं ।

मोक्षानन्द की प्राप्ति किस प्रकार से होती है, यहाँ पर उसकी चर्चा की जा रही है । देवी कुण्डलिनी का परविन्दु में लय कर कुछ साधकों को मुक्ति प्रदान कर देती हैं । इसमें उन साधकों की ही गणना की जाती है, जिन्होंने विन्दु में शिव और आत्मा की ऐक्यता का ध्यान किया है । अन्य उन साधकों पर भी जिन्होंने इसी प्रकार शक्ति का चिन्तन किया है, उनका अनुग्रह हो जाता है । जिन साधकों ने विन्दु में परम पुरुषमय और शिवशक्तिसामरस्य का चिन्तन किया है, उन्हें भी देवी उपकृत कर देती हैं ।

मायातन्त्र का कथन है—

'ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदाः ।
शिवात्मनोरभेदेन प्रतिपत्तिं परे विदुः ॥
शक्त्यात्मकं तथा ज्ञानं जगुरागमवादिनः ।
पुराणपुरुषस्यान्ये ज्ञानमाहुर्विशारदाः ॥
शिवशक्त्योः सामरस्यात्मकं प्रकृतिनोऽपरे ॥'

योगविशारदों का कथन है कि यह जीव और आत्मा का ऐक्य है । शैवों के अनुसार यह शिव और आत्मा के ऐक्य की अनुभूति है । आगमवादियों की मान्यता है कि शक्ति का ज्ञान ही योग है । अन्य बड़े लोगों का कथन है कि पुराणपुरुष का ज्ञान योग है तथा अन्य प्रकृतिवादी कहते हैं कि शिव और शक्ति के मिलन का आनन्द ही योग है ।

सामरस्यात्मकं ज्ञानम्—तन्त्रातन्त्र के अनुसार सामरस्य ही कुलयोगी का चिन्तन है ।

जीव और आत्मा के मिलन का तात्पर्य समाधि से है। योग का अर्थ है परमात्मा के साथ ऐक्य। समाधि की चर्चा करने के उपरान्त अब ध्यान के विभिन्न योगों के रूप पर प्रकाश डाला गया है। शिव-शक्ति सामरस्यात्मक का अर्थ उसी से है जैसे स्त्री और पुरुष के समागम में सौख्य रूप में सामरस्य प्राप्त होता है। स्त्री और पुरुष के समागम के सौख्य की चर्चा एक प्रकार उदाहरण रूप में की गई है। कहा गया है—'स्त्रीपुंयोगे तु यत् सौख्यं सामरस्यं प्रकीर्तितम्।' इसका ध्यान या चिन्तन किस रूप में किया जाय, इस विषय में वृहत् श्रीक्रम का कथन है—

'कलां कलङ्करहितां चिदानन्दमुपेयुषीम्।
विम्वरूपनिदानं च शुद्धस्फटिकसन्निभम्॥
पराविराजिवामोरुमदालसवपुःस्त्रियम्।
नादोपरि महादेवं पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा॥'

'वे ज्ञान चक्षु से निष्कलंक कला को अर्थात् कुण्डलिनी को जो नाद पर चिदानन्द या परशिव के साथ संयुक्त हैं, देख लेते हैं। वे महादेव हैं, शुद्ध स्फटिक के समान शुक्ल और विम्ब रूप निदान हैं अथवा आदिकारण हैं और कुण्डलिनी परा हैं, सर्वांगसुन्दरी जिनके अवयव कोमल और कमनीय हैं। जानु प्रदेश का सौन्दर्य अतुलनीय है, इसी से उनके सौन्दर्य की कल्पना की जा सकती है। अत्यधिक मनोराग के कारण शरीर मूर्ति के सदृश दिखलाई दे रहा है।'

यहाँ पर कला से कुण्डलिनी का तात्पर्य है। चिदानन्द बिन्दु रूप परशिव का वाचक है। वामारु का प्रयोग उनके सम्पूर्ण शरीर के अवयवों के सौन्दर्य के प्रतीक रूप में किया गया है। वैसे वामारु का अर्थ है—सुन्दर जानु प्रदेश।

अन्यत्र भी उल्लेख है—

'शून्यरूपं परशिवं प्रापयित्वा तु कुण्डलीम्।
ततः सामरसीभूतां पाययित्वा परामृतम्।
पुनस्तेन पथा देवीं प्रापयेत् कुलगह्वरम्॥'

'कुण्डली को शून्य रूप परशिव से मिलाकर और इस प्रकार देवी को सामरस्य से उद्भूत अमृत का पान करा कर उन्हें पुनः उसी कुलगह्वर में वापिस लाना चाहिए, जहाँ से वे गयीं थीं।' कुलगह्वर का अर्थ है—मूलाधार।

इसी सन्दर्भ में एक और कथन भी है—

'साङ्गत्यं तु तयोः कृत्वा सामरस्यं विभाव्य च।
तदुद्भूतरसेनैव तर्पयेद् देहदेवताम्॥'

उनका समागम करा देने तथा सामरस्य का चिन्तन करने से देह देवता भी उस अद्भुत रस के तर्पण से परितुष्ट हो जाते हैं, जो उनके समागम के प्रतिफलस्वरूप प्रवाहित हुआ है ।

गन्धर्वमालिका का कथन है—

'सहस्रारं शिवपुरं रम्यं दुःखविवर्जितम् ।
सर्वतोऽलङ्कृतैर्दिव्यैर्नित्यपुष्पफलद्रुमैः ॥
सदाशिवपुरं रम्यं कल्पवृक्षसुशोभितम् ।
पञ्चभूतात्मकं वृक्षं गुणत्रयसमन्वितम् ॥
चतुर्वेदचतुःशाखं नित्यपुष्पसमन्वितम् ।
पीतं श्वेतं तथा कृष्णं रक्तपुष्पञ्च पार्वति ॥
हरितञ्च विचित्रञ्च नानापुष्पं मनोहरम् ।
एवं कल्पद्रुमं ध्यात्वा तदधो रत्नवेदिकाम् ॥
तत्रोपरि सुपर्यङ्कं नानावस्त्रोपशोभितम् ।
मन्दारपुष्पसहितं नानागन्धानुमोदितम् ॥
तत्रोपरि महादेवः सदा तिष्ठति सुन्दरि ।
ध्यायेत् सदाशिवं देवं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ॥
बद्धरत्नसमाकीर्णं दीर्घबाहुं मनोहरम् ।
सुखप्रसन्नवदनं स्मेरास्यं सततं प्रिये ॥
श्रवणे कुण्डलोपेतं रत्नहारेण शोभितम् ।
गले पद्मसहस्रेण मालया शोभितं वपुः ॥
अष्टबाहुं त्रिनयनं शिवं पद्मदलेक्षणम् ।
पादयोर्नूपुरं रम्यं शब्दब्रह्ममयं वपुः ॥
एवं स्थूलवपुस्तस्य भावयेत् कमलेक्षणे ।
पद्ममध्ये स्थितं देवं निरीहं शवरूपवत् ।
शवरूपो महादेवः कृत्यं नास्ति कदाचन ॥'

गन्धर्वमालिका में जो उक्त प्रक्रिया बतलाई गयी है, उसमें कुछ भिन्नता पाई जाती है । इसमें उल्लेख किया गया है—'सहस्रार सदाशिव का मनोहर, सुरम्य, अलंकृत और अत्यन्त शुभ स्थान है । वहाँ दुःख का स्पर्श नाममात्र के लिए भी नहीं है । वहाँ दिव्य सुन्दर वृक्ष है, जो सर्वदा फल-फूलों से लदे रहते हैं । सदाशिवपुर की शोभा कल्पवृक्ष से जो अतीव सुन्दर है, अतुलनीय हो रही है । इस वृक्ष में पञ्चभूतों का पूर्ण समावेश है और यह तीनों गुणों से समन्वित है । इसकी चार शाखाएँ चारों वेद के रूप में प्रभावान् हो रही

हैं। यह अम्लानि अर्थात् अक्षय पुष्पों से लदे हैं जो पीत, हरित्, श्वेत, श्याम और रक्ताभ वर्ण के हैं। हे पार्वती ! इसके अतिरिक्त और भी नाना प्रकार के विचित्र-विचित्र मनोहर एवं सुवासित पुष्पों की छटा छाई हुई है, जो मन को मुग्ध कर रहे हैं। कल्पवृक्ष का इस रूप में ध्यान करने के पश्चात् नीचे रखी हुई रत्नजटित वेदिका (चौकी) का ध्यान करे। हे सुन्दरी ! इस वेदिका पर एक पर्यङ्क (पलंग) है, जो नाना ढंग के अनेकानेक कौषेय वस्त्रों से अत्यन्त शोभायमान है। मन्दार पुष्प सहित अनेक प्रकार की सुवासित एवं सुरभित गन्ध मादकता में वृद्धि कर मुग्ध बना रही है। उस पर्यङ्क के ऊपर शुद्ध स्फटिक वर्ण के देव महादेव सदैव विराजमान रहते हैं। हे देवी ! उन सदाशिव का ध्यान करो। वे सभी प्रकार के रत्नजटित आभूषणों से सुसज्जित हैं तथा वे अजानवाहु हैं। उनके प्रफुल्लित मुख की शोभा का वर्णन करना शब्दों की शक्ति से बाहर है। उनमें अनन्त शक्ति का निवास है। वे करुणा-निधान हैं तथा उनके मुख पर सर्वदा स्मित हास्य की छटा है। उनके कानों में कुण्डल तथा रत्नों का हार है। उनके कण्ठ में सहस्र पद्मों की माला है, जो जानु तक है। इससे उनके शरीर की शोभा में और वृद्धि हो रही है। उनकी आठ भुजाएँ और तीन नेत्र हैं। जो कमल पुष्प के दल के समान हैं। पैरों में नूपुर हैं, जिनकी ध्वनि अतिरम्य और उनका देह शब्दब्रह्ममय है। हे कमलाक्षी ! उनके स्थूल शरीर का ध्यान करो। वे निर्विकार एवं निरीह महादेव शव-समान कमल के मध्य में हैं।'

शक्ति के विना शिवं है, जैसा कि देवीभागवत और आनन्दलहरी के प्रथम श्लोक में उल्लेख है—

'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरञ्चादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति ॥'

'शिव शक्ति से युक्त होकर ही सृष्टि करने को शक्तिमान होता है और यदि ऐसा न होता तो वह ईश्वर स्पन्दित होने के भी योग्य नहीं था, इस लिए तुझ हरिहर और ब्रह्मा आदि की भी आराध्या देवी को प्रणाम करने की सामर्थ्य किसी भी पुण्यहीन मनुष्य में कैसे हो सकती है।'

देवी के एक और ध्यान की भी चर्चा इस प्रकार की गई है—

'ध्यायेत् कुण्डलिनीं देवीं स्वयम्भूलिङ्गवेष्टिनीम्।
[illegible] देवीं सहस्रारं समानयेत् ॥

सदाशिवो महादेवो यत्रास्ते परमेश्वरि।
देवीं रूपवतीं कामसमुल्लासविहारिणीम् ॥
मुखारविन्दगन्धेन मोदितं परमं शिवम्।
प्रबोध्य परमेशानि तत्रैवोपविशेत् प्रिये ॥
शिवस्य मुखपद्मं हि चुचुम्बे कुण्डली शिवे।
सदाशिवेन देवेशि क्षणमात्रं रमेत् प्रिये ॥
अमृतं जायते देवि तत्क्षणात् परमेश्वरि।
तदुद्भवामृतं देवि लाक्षारससमायुतम् ॥
तेनामृतेन देवेशि तर्पयेत् परदेवताम्।
षट्चक्रदेवतास्तत्र सन्तर्प्यामृतधारया ॥
आनयेत् तेन मार्गेण मूलाधारं पुनः सुधीः।
यातायातक्रमेणैव तत्र कुर्यान्मिनोलयम् ॥
एवमभ्यस्यमानस्तु अहन्यहनि पार्वति।
जरामरणदुःखाद्यैर्मुच्यते भवबन्धनात् ॥'

'देवी कुण्डलिनी का ध्यान करो जो स्वयम्भूलिङ्ग को आवृत अथवा घेरे हुए हैं। हंस मंत्र के द्वारा देवी को सहस्रार में ले जाया जाय। हे परमेश्वरी! वहाँ परम देव सदाशिव हैं। वहाँ पर ले जाकर सुन्दरी कुण्डलिनी की जो अति आतुर हैं, स्थापना करो। हे प्रिये! कुण्डलिनी तब जाग्रत हो जाती हैं तथा शिव के मुखकमल का चुम्बन करती हैं। हे देवेशी! वे शिव सदाशिव के साथ अति अल्प समागम करती है, किन्तु हे परमेश्वरि! तत्काल ही वहाँ अमृत का स्राव हो जाता है। उनके सामरस्य के प्रतिफलस्वरूप जो अमृतस्राव निःसृत होता है, वह लाक्ष के वर्ण के सदृश है, अर्थात् लाल रंग का है, क्योंकि लाक्षा लाल रंग की ही होती है। रजोगुण भी रक्ताभवर्ण ही होता है। इस सुधा से हे देवेशी! परदेवता (कुण्डलिनी) का तर्पण करना चाहिए। इसी प्रकार षट्चक्रों के देवताओं को भी इस सुधा-सरिता के तर्पण से परितुष्ट किया जाय। सुधीजनों को चाहिए कि उसी प्रकार से उन्हें मूलाधार में वापिस लाना चाहिए, जिस प्रकार वे वहाँ से गईं थीं। इस आरोह और अवरोह की प्रक्रिया में मानस का लय कर दिया जाय। मानस का लय शिव-स्थान में करना चाहिए। हे पार्वती! जो जन इस योग का अभ्यास प्रतिदिन करते हैं, वे क्षय और मृत्यु से मुक्त हो जाते हैं तथा इस जगत् के बन्धनों से भी छुटकारा पा जाते हैं।'

अन्य तंत्र-ग्रन्थों में भी इसी प्रकार की प्रक्रियाएँ बतलाई गई है, जिनका अनुशीलन करना चाहिए।

समाधियोगस्वरूपम्

नीत्वा तां कुलकुण्डलीं लयवशाज्जीवेन सार्धं सुधी-
र्मोक्षे धामनि शुद्धपद्मसदने शैवे परे स्वामिनि।
ध्यायेदिष्टफलप्रदां भगवतीं चैतन्यरूपां परां
योगीन्द्रो गुरुपादपद्मयुगलालम्बी समाधौ यतः ॥ ५२ ॥

सुधी और श्रेष्ठ योगी जिसकी गुरु के चरण-कमलों में अगाध श्रद्धा और भक्ति है, कुलकुण्डली को जीवात्मा सहित लय करके उसके स्वामी परशिव के उस धाम तक ले जाय, जिसे मोक्षधाम कहते हैं, जो कि शुद्ध श्वेत पद्म में है। वहाँ उसका ध्यान करे जो चैतन्यरूपा भगवती समस्त मनोवांच्छित कामनाओं की पूर्ण प्रदाता हैं। वह जब इस प्रकार से कुलकुण्डली को सहस्रार में स्थित श्वेत पद्म में पहुँचा देता है तो उसे वहाँ सर्व का लय कर देना चाहिए। ये देवी सर्व चैतन्य रूप जीवों में चेतना स्वरूप में स्थित हैं।

व्याख्या—पहले कुण्डलिनी-ध्यानयोग की चर्चा की गई। उसके उपरान्त अब कुण्डलिनी समाधि योग का प्रसंग आरम्भ हो रहा है। इस श्लोक का सारांश यह है कि सुधी और उत्कृष्ट योगी जो समाधि प्राप्त करने का आकांक्षी उसे सर्वप्रथम कुण्डलिनी को जो जागृत हो चुकी है और जीवात्मा सहित ब्रह्मद्वार पर पहुँच चुकी है, आगे बढ़ाना चाहिए। वे जैसे-जैसे आगे बढ़ती हैं, वैसे-वैसे सबको अपने में लीन करती जाती हैं। यही लयक्रम कहलाता है। सर्वप्रथम कुलकुण्डली के साथ जीवात्मा का लय होता है। इसके पश्चात् लय-क्रम से सहस्रार के मध्य में परबिन्दु रूप शिवस्थान में स्वामी के निकट पहुँचती हैं, यही मोक्षधाम है। वे इष्टदेवता रूप में मनोवांच्छित फल प्रदान करती हैं। इष्टदेवता रूप में स्वामी रूप परबिन्दु के साथ ऐक्य को प्राप्त हो जाती हैं। यहाँ परबिन्दु स्वरूपा का ध्यान करना चाहिए। यह स्वरूप चैतन्यमय है। इसके अनन्तर सहस्रार के मध्य शून्यमध्य में परबिन्दु का लय चिदात्मा में करे और कुण्डलिनी का ध्यान शुद्ध चैतन्य रूप में करे। यही शुद्ध चित्त है। सोऽहं भाव से जीव और आत्मा के ऐक्य को जानकर तथा चित्त का लय कर अपने स्व में इस अनुभूति के होने से 'सोऽहं' अर्थात् 'मैं वही हूँ' योगी अपने को सर्वव्यापक सम्पूर्ण ज्ञान आत्मा के भाव स्थिरचित्त रहता है। इस विषय में श्रीमद् आचार्य का कथन है—

'मकारं कारणं प्राज्ञश्चिदात्मनि विलापयेत्।
चिदात्माहं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तसदद्वयः॥
परमानन्दसन्दोहो वासुदेवोऽहमोमिति।
ज्ञात्वा विवेचकं चित्तं तत्साक्षिणि विलापयेत्॥

चिदात्मनि विलीनं चेत् तच्चित्तं नैव चालयेत्।
पूर्णबोधात्मना तिष्ठेत् पूर्णाचलसमुद्रवत् ॥'

'ज्ञानी को चाहिए कि कारण मकार—बिन्दु मकार है और यही सबका कारण है—को चिदात्मा में लय कर यह अनुभूति करे कि 'मैं चिदात्मा हूँ। मैं अनादि हूँ, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त हूँ। मैं वह हूँ जो केवल सत् है, मेरे अतिरिक्त कोई अन्य नहीं है अर्थात् अद्वैत हूँ, मैं ही परमानन्द हूँ, जिसमें सम्पूर्ण आनन्द है और मैं ही वासुदेव हूँ, मैं ही ॐ हूँ।' यह अनुभूति हो जाने से कि चित्त संकल्पात्मक और विकल्पात्मक है, अतः वह उसका लय उसके साक्षी में कर देता है। चित्त को चिदात्मा में लय होने के पश्चात् उस चित्त को चलायमान न होने दे। साधक को अपने पूर्ण बोधात्मक स्वरूप में सागर के समान पूर्ण अचल रहना चाहिए।'

मकार—उनके लिए आया है, जो प्रणव के साधक हैं। बिन्दु ही मकार माना जाता है। यहाँ पर 'कारण' शब्द का तात्पर्य परबिन्दु से है। 'वासुदेवोऽहम्' ऐसा वैष्णव कहते हैं।

इस प्रकार उक्त कथन से यह स्पष्ट है कि कोई किसी भी देवता की उपासना करता हो, उसे यह स्वीकार करना चाहिए कि कुण्डलिनी और उपास्य में कोई अन्तर नहीं है। उदाहरणस्वरूप प्रणव आराधना में उपासक ओंकार के साथ तादात्म्य करता है। अन्य उपासना-पद्धतियों में वह कुण्डलिनी ही मन्त्रमय स्वरूपा है। तन्त्रान्तर का कथन—

'किरणस्थं तदग्निस्थं चन्द्रभास्करमध्यगम्।
महामूल्य(शून्य)मयं कृत्वा पूर्णस्तिष्ठति योगिराट् ॥'

'महान् योगी अपने मानस को उस महाशून्य का स्थल बनाकर ब्रह्मानन्द में पूर्णतया ओतप्रोत हो जाता है जो सूर्य, चन्द्र और अग्नि का प्रकाशक है।' इसको सहस्रार में बतलाया गया है। पादुकापञ्चक के चौथे श्लोक में इसका वर्णन आता है।

जीवेन सार्धं नीत्वा—जीवात्मा जो हंसरूप है, उसका आकार दीपकलिका के समान है। उसे हृदय से, जहाँ उसकी स्थिति बतलाई गई है, मूलाधार में लाकर फिर उसे कुण्डलिनी के साथ ही बढ़ाया जाय अथवा ले जाया जाय।

मोक्षे धामनि—यह 'शुद्धपद्म' की विशिष्टता का वाचक है। यहाँ पर मोक्ष की प्राप्ति होती है।

गुरुपादपद्मयुगलालम्बी—यह श्रेष्ठ योगी के गुण का परिचायक है। ग्रन्थकार की मान्यता है कि सिद्धि गुरु के आदेश के पालन पर ही प्राप्त होती है। अतः साधक को गुरु के चरण-कमलों का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिए।

समाधौ यतः—कुलार्णवतंत्र में समाधि की परिभाषा इस प्रकार बतलायी गयी है—समाधि एक प्रकार का ऐसा ध्यान है, जिसमें 'यदत्र नात्र' का भास नहीं रह जाता है। वह केवल प्रकाश है तथा सागर के समान निश्चल और स्वयमेव शून्य है—

'यदत्र नात्र निर्भासः स्तिमितोदधिवत्स्मृतम्।
स्वरूपशून्यं यद्धयानं तत् समधिर्विधीयते ॥'

एक अन्य स्थान पर उल्लेख है—

'समत्वभावना नित्यं जीवात्मपरमात्मनोः।
समाधिमाहुर्मुनयः प्रोक्तमष्टाङ्गलक्षणम् ॥'

'मुनियों का कथन है कि जीवात्मा और परमात्मा में नित्य समत्व की भावना अर्थात् उनमें किसी प्रकार की वेद-भावना न करना ही समाधि है। यह अष्टांगयोग के अष्ट अङ्गों में से एक है।'

पातञ्जलसूत्र में कहा गया है—'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।' अर्थात् चित्त की वृत्तियों पर नियंत्रण करना ही योग है।

यतः—जो निरन्तर एकाग्र मन से इसका अभ्यास करता है।

लयवशात् नीत्वा—जब यह कुलकुण्डलिनी का मार्गदर्शन करता है, तब उसे सर्व वस्तुओं का कुण्डलिनी में लय करना चाहिए। लयक्रम निम्न प्रकार से बतलाया गया है—

त्रिकोणाख्ये तु देवेशि लङ्कारं चिन्तयेत् ततः।
ब्रह्माणं तत्र सञ्चिन्त्य कामदेवञ्च चिन्तयेत् ॥
जीवं तत्रैव निश्चिन्त्य प्रणवोच्चारणेन च।
पदे च गमनं पत्यौ विसर्गनाशकामिनि ॥
प्राणं सञ्चिन्त्य देवेशि महेशि प्राणवल्लभे।
डाकिनीं परमाराध्यां शक्तिं च भावयेत् ततः।
एतानि गिरिजे मातः पृथ्वीं नीत्वा गणेश्वरि ॥'

हे देवेशि! त्रिकोण में स्थित ल-कार का ध्यान करना चाहिए। ब्रह्मा और कामदेव का भी वहाँ चिन्तन करे। वहाँ प्रणवमंत्र के जाप द्वारा जीव को भी स्थित किया जाय और फिर कुण्डलिनी का जो अपनी कामिता के मनस्ताप को दूर करने के लिए अति उत्कण्ठित हैं, उन्हें पति-स्थान में जाने के लिए, जो सहस्रार में विन्दुरूपा है, मार्ग-दर्शन दिया जाय। कुण्डलिनी को यहाँ विसर्गनाश-कामिनी बतलाया गया है। हे प्राणवल्लभे! सुरों की महाराज्ञी! महेशी! यहाँ पर साधक को घ्राण (पृथ्वी) का चिन्तन और

परमाराध्या शक्ति डाकिनी का ध्यान करना चाहिए। हे गिरिजे ! इन सबका लय पृथ्वी में कर लिया जाय।

ऐसा भी उल्लेख है—

ततश्च पृथिवीं धन्यां गन्धं नीत्वा महेश्वरि।
आकृष्य प्रणवेनैव जीवात्मानं नगेन्द्रजे॥
कुण्डलिन्या सह प्राणं गन्धमादाय साधकः।
सोऽहं तु मनुना देवि स्वाधिष्ठाने प्रवेशयेत्॥'

'हे महाराज्ञी ! इसके बाद पृथिवी को गन्ध में लय कर दे। हे शैलजा ! जीवात्मा को प्रणवमंत्र के द्वारा हृदय से आकर्षित कर लेना चाहिए तथा साधक को चाहिए कि प्राण, गन्ध, तन्मात्रा और कुण्डलिनी का स्वाधिष्ठान में प्रवेश हेतु मार्ग-दर्शन करे। 'सोहं' मंत्र के द्वारा ऐसा किया जाय।'

यह भी कथन है—

'तत्कर्णिकायां वरुणं तत्रापि भावयेद्धरिम्।
पुराणकारिणीं शक्तिं चिन्तयित्वा वरानने॥
एतानि गन्धश्च शिवे रसं नीत्वा वरानने।
जीवात्मानं कुण्डलिनीं रसश्च मणिपूरके॥'

'स्वाधिष्ठान की कर्णिकाओं में वरुण और हरि का चिन्तन करे। हरि का तात्पर्य विष्णु से है। हे सुन्दरि ! पुराणकारिणी (राकिनी) शक्ति का ध्यान कर इन सभी को तथा गन्ध को रस में लय करे तथा जीवात्मा, कुण्डलिनी और रस का मार्गदर्शन मणिपूर की ओर करे।'

तथा—

'तत्कर्णिकायां सुश्रोणि वह्निं सञ्चिन्त्य साधकः।
तत्र रुद्रः स्वयं कर्ता संहारे सकलस्य च॥
लाकिनीशक्तिसंयुक्तं भावयेत् तं मनोहरम्।
ततश्चक्षुरिन्द्रियं च ध्यात्वा तेजोमयं शिवे॥
एतद्रसानि सुभगे रूपं नीत्वा महाभगे।
जीवात्मानं कुण्डलिनीं रूपं चानाहते नयेत्॥'

'हे सुश्रोणि ! मणिपूर की कर्णिकाओं में साधक को वह्नि (अग्नि) रुद्र का चिन्तन करना चाहिए। रुद्र जो सर्व के संहारक हैं, यहाँ पर लाकिनी शक्ति के साथ स्थित हैं। लाकिनी देखने में अतीव सुन्दर हैं। हे शिवे ! साधक इसके उपरान्त चक्षु-इन्द्रिय का तथा तेज का ध्यान करे। तेज चक्षु की तन्मात्रा है। इन सभी का तथा रस का रूप में लय करे और यह करने के पश्चात्

जीवात्मा, कुण्डलिनी और रूप का मार्ग-दर्शन अनाहत की ओर करे, अर्थात् अनाहत में ले जाये।'

तथा—

'तत्कर्णिकायां वायुञ्च जीवस्थाननिवासिनम्।
तत्र योनिमण्डलञ्च बाणलिङ्गविराजितम्॥
शाकिनीशक्तिसंयुक्तं तत्र वायुं त्वगिन्द्रियम्॥
एतानि रूपं संयुज्य स्पर्शे त्वमलकारिणी।
जीवं कुण्डलिनीं स्पर्शं विशुद्धे स्थापयेत् ततः॥'

'अब साधक को अनाहत की कर्णिकाओं में वायु का ध्यान करना चाहिए। जीव के देश में ही वायु का स्थान तथा योनिमण्डल है। बाणलिङ्ग के भी इस देश में ही स्थित होने से योनिमण्डल के सौन्दर्य में और भी वृद्धि हो गई है। वायु यहाँ वायु के ईश के रूप में है। यहाँ साधक वायु का, जिसके साथ राकिनीशक्ति संयुक्त है तथा स्पर्श है (त्वगिन्द्रिय), चिन्तन करना चाहिए। हे शुद्धरूपिणी! यहाँ पर जीव, कुण्डलिनी और रूप को स्पर्श के साथ स्थापित कर दे और जीव, कुण्डलिनी और स्पर्श को विशुद्ध में स्थापित कर दे।'

तथा—

'तत्कर्णिकायामाकाशं शिवञ्च शाकिनीयुतम्।
वाचः श्रोत्रञ्च आकाशे संस्थाप्य नगनन्दिनि॥
एतानि स्पर्शं शब्दे वै नीत्वा शङ्करि मत्प्रिये।
जीवं कुण्डलिनीं शब्दञ्चाज्ञाचक्रे निधापयेत्॥'

'विशुद्ध की कर्णिकाओं में आकाश का तथा शिव का जिनके साथ शाकिनी शक्ति है, ध्यान करे। आकाश में वाक् ओर श्रोत्र का सामञ्जस्य स्थापित करे। हे पार्वती! इन सभी को तथा स्पर्श को शब्द के साथ स्थापित कर दे तथा जीव, कुण्डलिनी और स्पर्श को शब्द के आज्ञाचक्र में सायुज्य कर दे।

उपरोक्त सभी कथन कङ्कालमालिनी के हैं। इनमें जिस त्रिकोण की चर्चा है, वह मूलाधार स्थित त्रिकोण है। यहीं से चर्चा का आरम्भ किया गया था। लङ्कार का ध्यान इस त्रिकोण के आन्तर् में ही मान कर किया जाय। जीव का मार्गदर्शन प्रणव के द्वारा किया जाय, इस विषय में मतभेद है। 'विसर्गनाशकामिनीविसर्ग' का तात्पर्य अत्यधिक उत्कण्ठा से है जो अत्यधिक कामेच्छा से उद्भूत हुई है। इस शब्द का अर्थ कामोद्वेग है। इसको इस प्रकार प्रयुक्त किया गया है कि वे कामोद्वेग की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील हैं। जीव को हंसः मन्त्र के द्वारा [illegible] जाय। इसका अर्थ कुछ लोग इस प्रकार करते हैं—पत्यौ-

पदे। उनके पति का स्थान यह सहस्रदल कमल का बिन्दु जो शिवमय स्थान है, साधक को उनका मार्गदर्शन इसी स्थान के लिए करना है।

बीज लं, ब्रह्मा, कामदेव और डाकिनीशक्ति तथा घ्राणेन्द्रिय इन सबका लय पृथ्वी में और पृथ्वी का लय गन्धतत्त्व में किया गया। जीवात्मा, कुण्डलिनी और गन्ध तत्त्व को प्रणव के द्वारा ऊपर की ओर ले जाया गया तथा सोऽहम् मन्त्र से स्वाधिष्ठान में पहुँचा दिये गये। सर्वत्र ऐसा ही करना उपयुक्त है। जीव, कुण्डलिनी और शब्दतत्त्व को आज्ञाचक्र में लाकर शब्दतत्त्व को अहंकार में, अहंकार को महत्तत्त्व में तथा महत्तत्त्व को सूक्ष्म प्रकृतितत्त्व में जिसकी संज्ञा हिरण्यगर्भ है, और प्रकृतितत्त्व का परबिन्दु में लय किया जाय।

मन्त्रतन्त्रप्रकाश का कथन इस प्रकार है—

'अहङ्कारे हरेद् व्योम सशब्दं तन्महत्यपि।
महच्च सर्वशक्तीनामव्यक्ते कारणे परे॥
सच्चिदानन्दरूपं यद् वैष्णवं कारणं परम्।
पृथिव्यादिक्रमात् सर्वं तत्र लीनं विचिन्तयेत्॥

'व्योम का अहङ्कार में लय करे तथा अहङ्कार को शब्द सहित महत् में लीन करे और फिर महत् का लय अव्यक्त, पर, कारण में सर्व शक्तियों सहित कर दे।' साधक को पूर्ण रूप से यह ध्यान रखना अनिवार्य है कि ये सम्पूर्ण जिनका आरम्भ पृथ्वी से किया गया, विष्णु में किया गया, जो कारण के भी कारण हैं—सच्चिदानन्द।

मन्त्रतन्त्रप्रकाश के अनुसार विष्णु को ही निर्दिष्ट किया गया है, किन्तु यह और भी कोई अन्य देवता हो सकता है, जो साधक का इष्ट देवता हो।

महत् में सम्पूर्ण शक्तियाँ निहित हैं। अतः इसे सर्वशक्ति कहा गया है। इसका लय हिरण्यगर्भ में अर्थात् सूक्ष्म प्रकृति में किया जाय तथा सूक्ष्म प्रकृति को पर में लीन किया जाय, जिसका तात्पर्य परबिन्दुरूप कारण से है।

श्रीमद् आचार्य ने इस सन्दर्भ में एक सिद्धान्त बतलाया है कि स्थूल का लय सूक्ष्म में ही किया जाय—

'समाधिकालात् प्रागेवं विचिन्त्यातिप्रयत्नतः।
स्थूलसूक्ष्मक्रमात् सर्वं चिदात्मनि विलापयेत्॥'

'समाधिकाल में यही चिन्तन और अभ्यास किया जाय कि स्थूल का लय सूक्ष्म में और सर्व का लय चिदात्मा में होता है।'

पृथ्वी से आरम्भ होकर तथा अनाहत पर अन्त होने वाली सर्व वस्तुओं का लय इसी क्रम से हुआ है। अतः इसी क्रम से पृथ्वी के आश्रित पाद, घ्राणे-

न्द्रिय आदि पृथ्वी प्रपञ्च समुदाय का लय पृथ्वी स्थान में ही होता है। इसी प्रकार पाणि, रसनेन्द्रिय तथा जलप्रपञ्च का लय जलस्थान में होता है। गुदा, चक्षुरिन्द्रिय तथा वह्निप्रपञ्च का लय वह्निस्थान में होता है। जननेन्द्रिय, स्पर्श, तथा अन्य वायुप्रपञ्च का लय वायुस्थान में, वाक् श्रोत्रेन्द्रिय तथा आकाशप्रपञ्च का लय आकाशस्थान में, सूक्ष्म-महद् अहङ्कार आदि का लय इस क्रम के अनुसार कारण में होता है। वर्णमाला के अक्षर क्ष से अ पर्यन्त का विलोम रीति के अनुसार लय किया जाय। सर्व वस्तुओं का तात्पर्य 'विन्दु' 'वोधिनी' आदि से है, जिन्हें ऊपर कारण शरीर के रूप में स्पष्ट किया गया है। इनका लय भी विलोम ढंग से ही किया जाय। इस प्रकार इनका लय आदि-कारण-परबिन्दु में किया जाय। इस प्रकार केवल ब्रह्म ही शेष रहता है। इसका वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है—

'सङ्कल्प्यैवं ततो न्यासस्थानाद् वर्णांश्च संहरेत्।
प्रतिलोमे ले क्ष-लयो लकारस्य हकारके॥
ह-लयश्च सकारे च स-लयश्च षकारके।
क्रमेणैव-म-पर्यन्तं लयमुत्पाद्य यत्नतः॥'

'साधक इस प्रकार अपना संकल्प कर लेने के पश्चात् वर्णमाला के अक्षरों का संहार एवं विलयन न्यासस्थान में करे। न्यासस्थान वे स्थान हैं, जहाँ वर्ण मातृकान्यास में स्थापित किये गये हैं। 'क्ष' का विलयन 'ल' में और 'ल' का 'ह' में, 'ह' का 'स' में और 'स' का 'ष' में किया जाय। इस प्रकार यह क्रम 'अ' तक जाता है। इसको अत्यन्त सावधानी के साथ किया जाय।

तथा—

'तदर्णौ संहरेद् बिन्दौ कलायां तं नियोजयेत्।
तां नादेनान्तरं नादं नादान्ते संहरेत् पुनः॥
तमुन्मन्यां समायोज्य विष्णुवक्त्रे नयेच्च ताम्।
तां पुनर्गुरुवक्त्रे तु योजयेत् साधकोत्तमः।
ततश्च योजयेद्वर्णान् निलयेत् परमे शिवे॥

'दो वर्णों का विन्दु में विलयन करे तथा विन्दु का विलयन कला में करे; कला का विलयन नाद में और नाद का विलयन नादान्त में (नादान्त जो नाद के परे है) तथा नादान्त का उन्मनी में और उन्मनी का विलयन विष्णु वक्त्र में, जिसकी संज्ञा पुं-विन्दु भी है, किया जाय। विष्णुवक्त्र को गुरुवक्त्र में लीन करे। इसे शारदा और कुलार्णव में परविन्दु का मुख बतलाया गया है। श्रेष्ठ साधक को तब यह सिद्ध हो जाना चाहिए अथवा अनुभूति हो जानी चाहिए कि समस्त वर्णों का विलयन परमशिव में हो गया है।

विष्णुवक्त्र को पुं-विन्दु कहते हैं। सूर्यबिन्दु को मुख कहते हैं तथा नीचे के विन्दु चन्द्रमा और अग्नि हैं। बिन्दु पुं है तथा विसर्ग प्रकृति है। नित्याषोडशिका और कामकलाविलास का भी यही कथन है। अन्य आधिकारिक ग्रन्थों में भी इसे जहाँ विलयन होता है, उसे विष्णुमुख ही माना है। केशवाचार्य भी इसी कथन का समर्थन करते हैं। उनका कहना है—

'नीत्वा तां पुंसि बिन्द्वात्मनि तमथ परात्मन्यथो कालतत्त्वे।
तद्वै शक्तौ चिदात्मन्यपि च नयतु तां केवले धाम्नि शान्ते ॥'

'उन्मनी को पुं में ले जाये, जो विन्दु है; बिन्दु को परमात्मा में और परमात्मा को कालतत्त्व में, कालतत्त्व को शक्ति में तथा शक्ति को चिदात्मा में जो केवल शान्त और तेजोमय है।'

अब हमें यह पूर्णतया स्पष्ट ज्ञात हो गया कि प्रत्येक का अपने ही कारण में विलयन होता है। अर्थात् जन्य का लय जनक में ही हो जाता है। इस प्रकार नादान्त का विलय व्यापिकाशक्ति में हुआ। व्यापिकाशक्ति उन्मनी में समा गई और उन्मनी का लय समानी में हो गया। समानी विष्णुवक्त्र में लीन हो गयी। कुछ को इससे मतभेद है। उनकी मान्यता है कि उन्मनी शक्ति समानी से ऊपर है। इसी प्रकार वर्णों का जब संहार हो गया, तब षट्चक्र भी विलीन हो गये, क्योंकि कमलदल वर्णों के ही हैं। विश्वसार का भी यही कथन है—'आदिवर्णात्मकं पत्रं पद्मानां परिकीर्तितम्।' अर्थात् कमल दल वर्णमाला के अक्षर हैं जिनका आदि अक्षर 'अ' है।

सम्मोहनतन्त्र में वर्ण और पद्म के संहरण की चर्चा आती है। उसमें इस संहार-क्रम का वर्णन इस प्रकार बतलाया गया है—

'वादिसान्तान् दलस्थार्णान् संहरेत् कमलासने।
तं षट्पत्रमये पद्मे वादिलान्ताक्षरान्विते।
स्वाधिष्ठाने समायोज्य बोधयेदाज्ञया गुरोः ॥'

'व' से लेकर 'स' तक के वर्णों को जो कमलदल पर हैं, ब्रह्मा में लीन कर दे अथवा विलय कर दे। ब्रह्मा का विलय षट्दलकमल में करे जहाँ छः दलों पर ब से ल पर्यन्त वर्ण हैं। यह षट्दलकमल स्वाधिष्ठान है। यहाँ पर ब्रह्मा का स्थान मूलाधार में कमल पर बतलाया गया है तथा 'कमलासने' शब्द प्रयुक्त हुआ है। इसको गुरु के निर्देशन के अनुसार ही किया जाय।' इसका अन्त निम्नलिखित प्रकार से होता है—

द्विपत्रे हक्षलसिते योजयित्वा ततः सुधीः।
तदर्णो संहरेद् बिन्दौ तं कलायां नियोजयेत् ॥

'सुधीजन को विशुद्ध का लय द्वि-दलकमल में, जिन पर ह और क्ष अक्षर हैं, करना चाहिए और इन दोनों अक्षरों का विलय बिन्दु में और बिन्दु का विलय कला में किया जाय।'

आज्ञाचक्र के बिन्दु का विलय कुण्डलिनी में किया जाता है।

अब हम इस निर्णय पर पहुँच गये कि मूल कमल के चारों वर्णों का लय मूलाधार में और मूलाधार का विलय स्वाधिष्ठान में किया जाता है। इसी क्रमानुसार आज्ञाचक्र तक पहुँच कर अक्षर 'ह' और 'क्ष' जो वहाँ स्थित हैं, वहीं पर अर्थात् आज्ञा में ही लीन किये जाते हैं। ऐसा होने पर यह कमल स्वयं ही यहीं पर लीन हो जाता है। कमल का लय बिन्दु में हो गया और बिन्दु का लय बोधिनी में हुआ और इसी प्रकार पहले बतलाये गये क्रमानुसार सर्व वस्तुओं का विलयन परबिन्दु में हो गया। जब आज्ञाचक्र का विलय हो गया तो इसकी कर्णिकाओं में जो भी था, अर्थात् हाकिनी, इतरलिङ्ग और प्रणव आदि की स्थिति निराधार होने से संभव नहीं रह गई। अतः प्रकृति-पर्यन्त विलय के फलस्वरूप इनका विलय भी परबिन्दु में हो गया।

कुण्डलिन्या मूलाधारे प्रत्यावर्तनप्रकारः

लाक्षाभं परमामृतं परशिवात् पीत्वा पुनः कुण्डली
नित्यानन्दमहोदयात् कुलपथान्मूले विशेत् सुन्दरी।
तद्दिव्यामृतधारया स्थिरमतिः सन्तर्पयेद् दैवतं
योगी योगपरम्पराविदितया ब्रह्माण्डभाण्डस्थितम्॥ ५३॥

भाष्य—अपने स्थान पर वापिसी हो रही है। वे सुन्दरी कुण्डलिनी पर शिव से उद्भूत उत्कृष्ट अमृत का पान कर वहाँ से जहाँ परम नित्यानन्द का महान् उदय है, बहिर्भूत होकर पुनः कुलपथ से होती हुई मूलाधार पद्म में प्रवेश करती हैं। वे कैसी प्रतीत हो रही हैं? यौवन और सौन्दर्य से परिपूर्ण। अमृत कैसा है? लाक्षारस-सवर्णाभा लाख के द्रव्य के समान सोने की कान्ति-सा है, अर्थात् लाल वर्ण का है। शंकर का कथन है कि इसका ऐसा वर्ण इसलिये है, क्योंकि इसके साथ मासिक ऋतुमती या पुष्पवती का द्रव मिश्रित है, जो कामविषयक शक्ति का साङ्केतिक है। रजोगुण का वर्ण लाल है। योगी, जिसे अब मानसिक दृढ़ता प्राप्त हो चुकी है तथा ध्यान-परम्परा से उसे यह ज्ञान भी हो गया है कि दिव्य अमृतधारा ब्रह्माण्ड के भाण्ड में है, अपने इष्ट देवता तथा छः चक्रों में स्थित सर्व देवताओं और डाकिनी आदि को तर्पण देता है।

[भाण्ड का तात्पर्य कुण्डलिनी से है तथा कुल-पथ का आशय चित्रिणी नाड़ी से है।]

व्याख्या—विभिन्न प्रकार के योग की चर्चा यहाँ तक हो चुकी। इनको पूर्णतया समझ भी लिया गया होगा। अब यह कहा जा रहा है कि इस सभी के उपरान्त क्या किया जाय? प्रस्तुत श्लोक का अर्थ है—कुण्डलिनी सुन्दरी परशिव से उद्भूत परमामृत का पान कर परमानन्द से निकल कर कुलपथ अर्थात् चित्रिणी के मध्य ब्रह्मपथ से होती हुई पुनः मूलाधार में प्रवेश करती है। पूर्वोक्त ध्यान करने के उपरान्त शिवशक्ति के सामरस्य से निःसृत उस परमामृत से कुण्डलिनी का तर्पण करे।

कुण्डलिनी उस अमृत का पान करती है, जिससे उनका तर्पण किया गया है। एक महान् अधिकारी का कथन है—'साङ्गत्यं तु तयोः कृत्वा पाययित्वा परामृतम्।' अर्थात् 'उनका समागम करा कर और उन्हें अमृत पिला कर.....।' इससे यह सार निकलता है कि उन्हें इसका पान करने को विवश किया जाता है। यह अमृत लाक्षा की आभा के सदृश रक्ताभवर्ण का होता है।

कुलपथ—ब्रह्म का पथ। यह चित्रिणी नाड़ी के मध्य में है। इसे सृष्टिमार्ग भी बतलाया गया है, क्योंकि यह इसी मार्ग से मूलाधार में आता है जो सृष्टिक्रम है। सहस्रार में जाने को लयक्रम बतलाया गया है।

नित्यानन्दमहोदयात्—वे उस स्थान से वापिस आती हैं, जहाँ अनादि परमानन्द है। यही महाप्रकाश का भी स्थान है।

मूले विशेत्—जिस प्रकार से उनका आरोह कराया गया था, उसी प्रकार से उनका अवरोह कराया जाता है। कुण्डलिनी का जब आरोह हुआ तो वे चक्रभेद-क्रम से विभिन्न चक्रों और लिङ्गों से होती हुई गईं, अतः वापिसी में भी उन्हीं चक्रों तथा लिङ्गों से होती हुई मूलाधार में आईं।

अब पुनः उन्हें रस से सिञ्चित कर देने से वे सब व्यक्त और दृश्यमान हो जाते हैं। आरोहण का मार्ग लयक्रम था और उनकी वापसी सृष्टिक्रम कहलाती है। कहा गया है—

'ततः सा कुण्डली शक्तिर्मुद्राकारा सुरेश्वरी।
पुनस्तेन प्रकारेण गच्छत्याधारपङ्कजे॥'

'कुण्डलिनी जो अत्यन्त आह्लादित एवं सुरों की महाराज्ञी हैं, वह उसी प्रकार आधारकमल में पहुँचती है, जैसे वहाँ से उन्होंने आरोह किया था।' यहाँ पर मुद्राकारा शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिसका तात्पर्य है—आनन्दरूपिणी। मुद्रा को आनन्दरूपिणी बतलाया गया है। मुद्रा मुद धातु से बना है। मुद का अर्थ होता है आनन्द और राति अर्थात् देना। अतः मुद्रा का अर्थ हुआ जो आनन्द दे। षट्चक्र में जो देवता हैं, उन्हें भी सुर कहा गया है। कुण्डलिनी शरीर में स्थित देवों की अधिष्ठात्री होने से उनकी महाराज्ञी हुईं।

भूतशुद्धिप्रकरण में कहा गया है—

'परात्मनः पृथिव्यादि तद्वत्तत्त्वानि च क्रमात् ।
जीवं कुण्डलिनीं चापि स्वस्थानं प्रापयेत् क्रमात् ॥'

'पृथिवी आदि तत्त्वों को क्रम से तथा जीव और कुण्डलिनी को भी परमात्मा के स्थान से आगमन कराकर उन्हें उनके स्थानों पर स्थापित करे।' आगे उल्लेख है कि गमन के समय कुण्डलिनी प्रकाशमाना थीं और आगमन के समय उनका मुख अमृतमय है।

दिव्यामृतधारया—शिवशक्ति-सामरस्य के प्रतिफलस्वरूप जो परमामृत उत्पन्न हुआ, उससे ब्रह्मरन्ध्र से मूलाधार-पर्यन्त अमृत की धारा प्रवाहित हो रही है।

श्रीमत् शङ्करभगवत्पाद ने आनन्दलहरी के १०वें श्लोक में कहा है—

'सुधाधारासारैश्चरणयुगलान्तर्विगलितैः
प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमहसा ।
अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं
स्वात्मानं कृत्वा स्वपिषि कुलकुण्डे कुहरिणी ॥'

'अमृतधाराओं की वर्षा से, जो तेरे दोनों चरणों के बीच अर्थात् अँगूठे से टपकती है, प्रपञ्च को सींचती हुई, फिर छहों आम्नाओं से होती हुई अथवा छहों चक्रों द्वारा सींचती हुई अपनी भूमि पर उतरकर अपने आपको नागिन के सदृश साढ़े तीन कुण्डल डालकर, हे कुहरिणी ! तू कुलकुण्ड में सोती है।'

कुण्डलिनी मूलाधार में जाग्रत होकर सुषुम्णा मार्ग द्वारा जब हृदयस्थ सूर्य को उन्मुख करती हुई आज्ञाचक्र के ऊपर चन्द्रमण्डल में प्रवेश करती है, तब उसके दोनों चरणों के बीच से अमृत की धाराएँ नीचे बरसने लगती हैं। शक्ति के अवतरण के साथ सभी नाड़ियों का भिन्न-भिन्न चक्रों के द्वारा अमृत के प्रवाह से सम्पूर्ण शरीर में नखशिख-पर्यन्त सिञ्चन होता है। जिस मार्ग से शक्ति का आरोहण होता है, उसी मार्ग से अवतरण होकर वह फिर अपने स्थान पर सर्पाकार साढ़े तीन कुण्डल डालकर सो जाती है। सम्पूर्ण शक्ति ऊपर उठ जाती है और मूलाधार में शक्ति का कुण्डलिनी रूप में उसके उठने से अभाव हो जाता है और लौटने पर फिर वह सो जाती है।'

जैसे ही कुण्डलिनी मूलाधार में वापिस आती है, वह रस से उन सभी का सिञ्चन कर देती है, जिनका उसने आरोहण के समय अपने में समावेश कर लिया था। प्रकाशमान है उस स्थान का द्वार, जिसको अमृत से सिञ्चित किया गया है।

स्थिरमति: ...गी।

दैवतम्—इष्ट देवता। षट्चक्र में डाकिनी आदि जो देव हैं, उनका तर्पण करे। कहा गया है—

'तेनामृतेन देवेशि तर्पयेत् परदेवताम्।
षट्चक्रदेवतास्तत्र सन्तर्प्यामृतधारया॥'

'हे देवेशी! इस अमृत से परदेवताओं को तर्पण दिया जाय ओर इसके उपरान्त षट्चक्र के देवों को तर्पण दिया जाय।'

योगपरम्पराविदितया—योग-परम्परा गुरु के उपदेश पर आधारित है, क्योंकि गुरु को भी इसका उपदेश उनके गुरु से ही प्राप्त होता है। इससे यह गुरु-परम्परा है।

ब्रह्माण्डभाण्डस्थितम्—यह अमृत का गुणवाचक विशेषण है। ब्रह्माण्ड का आधारपात्र या भाण्ड जिस पर ब्रह्माण्ड आधारित है, कुण्डलिनी है। कुण्डलिनी ही भाण्ड है, क्योंकि वही सर्व की योनि है।

गोरक्षसंहिता में इसे स्पष्ट किया गया है—

'प्रबुद्धा वह्नियोगेन मनसा मरुता हुता।
सूचीव गुणमादाय व्रजत्यूर्ध्वं सुषुम्णया॥
स्वपन्ती भुजगाकारा पद्मतन्तुनिभा शुभा।
उद्घाटयेत् कवाटं तु यथा कुञ्चिकया दृढम्।
कुण्डलिन्या तथा योगी ब्रह्मद्वारं प्रभेदयेत्॥
कृत्वा सम्पुटितौ करौ दृढतरं वद्ध्वा तु पद्मासनं
गाढं वक्षसि सन्निधाय चिवुकं ध्यानञ्च तच्चेतसि।
वारं-वारमपानमूर्ध्वमनिशं प्रोत्सारयन् पूरयन्
प्राणं मुञ्चति मोक्षमेति शनकैः शक्तिप्रभावाद् यतः॥'

षट्चक्रयोगक्रमज्ञानफलम्

ज्ञात्वैतत् क्रममुत्तमं यतमना योगी यमाद्यैर्युतः
श्रीदीक्षागुरुपादपद्मयुगलामोदप्रवाहोदयात्।
संसारे न हि जन्यते न हि कदा सङ्क्षीयते सङ्क्षये
नित्यानन्दपरम्पराप्रमुदितः शान्तः सतामग्रणी॥ ५४॥

भाष्य—जिस संयत-मन योगी ने यम-नियम का अभ्यास कर इस उत्तम क्रम को अपने श्रीदीक्षागुरु के चरणकमलों से जो निरन्तर शुभ आमोद के प्रदाता हैं, प्राप्त कर लिया है अथवा इस ज्ञान का अर्जन कर लिया है, उसका फिर इस संसार में जन्म नहीं होता। प्रलय के समय भी उसका क्षय नहीं होता है। वह किस प्रकार रहता है? वह सदैव पूर्णानन्द में प्रमुदित रहता है। वह सदैव शान्तचित्त रहता है और उसकी गणना श्रेष्ठ योगी जनों में की जाती है।

एक अन्य स्थानपर इसका पाठ 'पूर्णानन्दपरम्पराप्रमुदितः स्वान्तः' भी है।

व्याख्या—यहाँ पर यह बतलाया गया है कि योगाभ्यास की प्रक्रिया को जानने से क्या लाभ होता है।

श्रीदीक्षागुरुपादपद्मयुगलामोदप्रवाहोदयात्—आमोद का अर्थ है आनन्द तथा प्रवाह का अर्थ है अविच्छिन्न उत्तरोत्तर सम्बन्ध। अतः आमोद-प्रवाह का अर्थ हुआ नित्यानन्द या अनादि आनन्द। यह आनन्द गुरु के चरणकमलों से ही उदित होता है और इसी से योगाभ्यास के ज्ञान की भी प्राप्ति होती है।

दीक्षागुरु प्रथम दीक्षित करते हैं, अतः उनका विशेष गौरव है। किन्तु उनकी अनुपस्थिति में अन्य गुरु का भी आश्रय लिया जा सकता है। अतः कहा गया है—

'मधुलुब्धो यथा भृङ्गः पुष्पात् पुष्पान्तरं व्रजेत्।
ज्ञानलुब्धस्तथा शिष्यो गुरोर्गुर्वन्तरं व्रजेत्॥'

'जैसे भृङ्ग (भ्रमर) मधु को प्राप्त करने के लिए एक फूल से दूसरे फूल पर जाता है, उसी प्रकार शिष्य को ज्ञानार्जन के लिए अन्य गुरु की सेवा में भी जाना चाहिए।' ऐसा निरुत्तरतंत्र का कथन है। कुलार्णवतंत्र में भी इसका अनुमोदन किया गया है।

नित्यानन्दपरम्पराप्रमुदितः—नित्यानन्द धारा रूप हर्ष से युक्त। जो अनादि आनन्दधारा से संयुक्त है।

सतामग्रणी—जो अच्छे योगी हैं, उनकी गणना में सबसे आगे।

षट्चक्रश्लोकाध्ययनफलम्

योऽधीते निशि सन्ध्ययोरथ दिवा योगी स्वभावस्थितो
मोक्षज्ञाननिदानमेतदमलं शुद्धञ्च गुप्तं परम्।
श्रीमच्छ्रीगुरुपादपद्मयुगलालम्बी यतान्तर्मना-
स्तस्यावश्यमभीष्टदैवतपदे चेतो नरीनृत्यते॥ ५५॥

भाष्य—वह योगी जिसकी गुरु के चरणकमलों में अगाध श्रद्धा और भक्ति है, स्थिर मन तथा एकाग्रचित्त से इस ग्रन्थ का पाठ करता है, जो मुक्तिज्ञान का अलभ्य प्रदाता है तथा त्रुटिहीन, शुद्ध और अत्यन्त गुह्य है तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि उसका चित्त सदैव अभीष्ट देवता के चरणकमलों में नर्तन करता रहता है।

श्रीपूर्णानन्दयति विरचित श्रीतत्त्वचिन्तामणि में
षट्चक्रनिरूपण के छठें अध्याय का
अष्टम प्रकरण समाप्त।

॥ श्रीः ॥

शिवोक्त-

पादुका-पञ्चकम्

ब्रह्मरन्ध्रसरसीरुहोदरे नित्यलग्नमवदातमद्भुतम् ।
कुण्डलीविवरकाण्डमण्डितं द्वादशार्णसरसीरुहं भजे ॥ १ ॥

भाष्य--मैं उस अद्भुत श्वेतकमल की वन्दना करता हूँ, जिसमें बारह अक्षर हैं और जो उसके उदर में हैं तथा उस कमल के बीजकोश से सदैव संलग्न हैं, जिसमें ब्रह्मरन्ध्र है और जो कुण्डली की नाल से सुशोभित है।

[द्वादशार्ण—बारह पंखुड़ियाँ। पद्म की पंखुड़ियाँ स्वतन्त्र नहीं हैं, वरन् उन्हीं पर वर्ण हैं। कमल चित्रिणीनाड़ी के ऊपर वाले अन्तिम सिरे पर आधारित है।]

व्याख्या—पादुकापञ्चक-स्तोत्र की रचना उन पञ्चमुखी शिव ने की है जो समस्त पाप, शोक, दुःख और सन्ताप का हरण करने वाले हैं। शिव के पाँच मुख हैं, जैसा लिङ्गार्चन में उल्लेख है। कहते हैं कि उनका एक छठा मुख भी है जो व्यक्त नहीं है। यह छठा मुख नीलकण्ठ कहा जाता है। कालीचरण ने अपनी टीका में इसका अत्यन्त भावात्मक वर्णन किया है।

तीनों लोकों के त्राता सदाशिव गुरुध्यान योग को एक स्तोत्र रूप में बतलाने के लिए उत्सुक थे। उन्होंने सर्वप्रथम गुरु के स्थान का वर्णन किया है। शिव स्वयं आराधना या उपासना करते हैं। उनका कथन है—'मैं स्वयं आराधना एवं उपासना करता हूँ।' इस कथन से उनका अभिप्राय इस बात पर बल देता है कि समस्त उपासक जो उन मन्त्रों की उपासना करते हैं, जिनका प्राकट्य उनसे हुआ है, इस अद्भुत द्वादश श्वेत कमल की उपासना करें। इस प्रकार वे अपनी आराधना की आवश्यकता को स्पष्ट करते हैं।

संक्षेप में इस श्लोक का अर्थ है—'मैं द्वादश दल कमल की, जो विशिष्ट है, आराधना करता हूँ, जो सहस्रार की कर्णिकाओं में है।'

इसे अद्भुत इसलिये कहा गया, क्योंकि यह ब्रह्म के तेज से व्यापक होने तथा अन्य कारणों से हमारे आश्चर्य को और भी उद्दीप्त कर देता है। शिव यह

कह कर कि मैं स्वयं इसकी आराधना करता हूँ, दूसरों को भी आराधना करने के कर्तव्य का बोध करा रहे हैं।

ब्रह्मरन्ध्र का स्थान कहाँ पर है ? इस विषय में कङ्कालमालिनीतन्त्र के अनुसार सहस्रदल पद्म में है। कहा गया है—

'तत्कर्णिकायां देवेशि अन्तरात्मा ततो गुरुः ।
सूर्यस्य मण्डलं तत्र चन्द्रमण्डलमेव च ।
ततो वायुर्महानामा ब्रह्मरन्ध्रं ततः स्मृतम् ॥'

'उस (सहस्रार) की कर्णिकाओं में हे देवेशि ! अन्तरात्मा है और ऊपर गुरु हैं और उनके ऊपर सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल तथा महावायु है। इसके और ऊपर ब्रह्मरन्ध्र है।'

कुछ लोगों का कथन है कि उस कमल के उदर में अर्थात् त्रिकोण के आन्तर् में जो कर्णिकाओं में स्थित है, उसमें ब्रह्मरन्ध्र है। किन्तु ऐसा प्रतीत नहीं होता। उदर शब्द का अर्थ मध्य है। पद्म के मध्य में उसकी कर्णिकाएँ प्रतीत होती हैं। किन्तु यहाँ पर कर्णिकाओं के मध्य त्रिकोण से उसके आन्तर् का भाव नहीं है, क्योंकि यहाँ पर त्रिकोण का उल्लेख नहीं है। श्यामासपर्या में इसको और भी अधिक स्पष्टरूप से बतलाया गया है—

'शिरः पद्मे सहस्रारे शुक्लवर्णे त्वधोमुखे ।
तरुणारुणकिञ्जल्के सर्ववर्णविभूषितम् ।
कर्णिकान्तःपुटे तत्र द्वादशार्णसरोरुहे ॥'

'द्वादश दल कमल या 'अक्षर' कमल, श्वेत सहस्रदल कमल की कर्णिकाओं में है और अधोमुखी है। इसके तन्तु नवोदित बालसूर्य के वर्ण के सदृश हैं। यह वर्णमाला के समस्त वर्णों से विभूषित या अलंकृत है।' यहाँ पर यह स्पष्ट कर दिया गया है कि कर्णिकाओं के अन्तःपुट का तात्पर्य कर्णिकाओं के मध्य या आन्तर् से है।

द्वादशार्ण सरसीरुहम्—वह कमल जिसमें बारह अक्षर हैं। तन्त्र के विशेषज्ञों के अनुसार ये बारह वर्ण वे हैं, जिनसे गुरुमन्त्र बनता है। इन वर्णों को इस प्रकार बतलाया गया है—स-ह-ख-फ्रें-ह-स-क्ष-म-ल-र-यू-म्। ये ही वे बारह वर्ण हैं जो इस विशिष्ट पद्म में गुरुमन्त्रात्मक रूप में हैं। कुछ लोगों का कथन है कि द्वादशार्ण का आशय बारहवें स्वर से है और यह बारहवाँ वर्ण वाग्भव बीज है जो सरस्वती का बीज है। किन्तु ऐसा नहीं है। कहा गया है—

'कर्णिकान्तःपुटे तत्र द्वादशार्णसरोरुहे ।

[illegible] कर्णिकान्तश्चन्द्रमण्डलमध्यगे ॥

अकथादित्रिरेखीये हलक्षत्रयभूषिते।
हंसपीठे मन्त्रमये स्वगुरुं शिवरूपिणम् ॥'

यदि ऐसा होता तो ऊपर जो कथन आया है, वह एक प्रकार से पुनरावृत्ति हो जाती।

अपने गुरु का ध्यान करो जो शिव हैं, क्योंकि कि वे तेजोमय हंसपीठ पर हैं। यह पीठ मन्त्रमय है और इसका भाव ही मन्त्र है। यह द्वादश दल या द्वादशवर्ण कमल की कर्णिकाओं में है तथा चन्द्रमण्डल के देश में कर्णिकाओं के सामीप्य में है। यह ह-ल-क्ष अक्षरों से सुशोभित है, जो अ-क-थ त्रिकोण के अन्दर हैं। द्वादश दल कमल सहस्रार कमल की कर्णिकाओं में है।

उपरोक्त कथन में मन्त्रमय पीठ का उल्लेख है। इस पीठ के मन्त्र का सार गुरुमन्त्र 'ऐं' है, जो वाग्भववीज के रूप में है। वाग्भववीज भी ऐं है। अतः यह एक ही मन्त्र की बार-बार पुनरावृति ही होगी, यदि हम इसका तात्पर्य यह समझें कि दोनों पीठ और कर्णिकाओं का शरीर ऐं है। द्वादशार्ण बहुव्रीहि समास से बना है, जिसका अभिप्राय है कि जिसमें द्वादश अर्ण हों। अर्ण का अर्थ है अक्षर। अतः इस कमल में बारह दल हैं जो कि बारह अक्षर हैं।

यह सत्य है कि यहाँ पर अक्षरों का अभिधान नहीं बतलाया गया है अर्थात् यह निश्चित नहीं किया गया वे किस स्थान पर हैं, किन्तु गुरुगीता में कहा गया है—

'हंसाभ्यां परिवृत्त पत्रकमले दिव्यैर्जगत्कारणै-
र्विश्वोत्तीर्णमनेकदेहनिलयं स्वच्छन्दमात्मेच्छया ॥'

अक्षर हं और स कमल को दल के रूप में आवृत्त किये हुए हैं। यहीं पर गुरु का ध्यान करना चाहिए। इससे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि अक्षर हं और स की छः बार पुनरावृत्ति की जाती है, जिससे संख्या योग बारह हो जाता है। इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि कमल के दल बारह हैं, क्योंकि प्रत्येक दल पर एक अक्षर है।

नित्यलग्नम्—यह सहस्रार से इस प्रकार संयुक्त है कि एक के बिना दूसरे का विचार हीं नहीं किया जा सकता। दोनों में अविनाभाव-सम्बन्ध है।

अवदातम्—शुक्लवर्ण।

कुण्डलीविवरकाण्डमण्डितम्—विवर वह है, जिससे कुण्डलिनी सहस्रार में शिव से मिलने जाती है। यह गमन-पथ ही विवर है। यह विवर चित्रिणी में है। चित्रिणी एक नाल है, जिसमें से गमन-पथ है। चित्रिणी शोभित करती है और इस कमल से अलंकृत हैं। कमल इस नाल पर है, अतः कमल इसके नाल से सुशोभित है।

तस्य कन्दलितकर्णिकापुटे क्लृप्तरेखमकथादिरेखया।
कोणलक्षितहलक्षमण्डलीभावलक्ष्यमबलालयं भजे ॥ २ ॥

भाष्य—उक्त पद्म की कर्णिकाओं में अ-क-थ त्रिकोण के मध्य गुरु का ध्यान बतलाया गया है। अतः इस ज्ञान के लिए यहाँ पर त्रिकोण का निरूपण किया जा रहा है।

'मैं उस स्थान की जहाँ दोनों की कर्णिकाएँ एक साथ हैं और जो शक्ति का निवास-स्थल है, वन्दना या आराधना करता हूँ। इसकी रचना अ-क-थ रेखाओं से हुई है तथा अक्षर ह-ल-क्ष जो इसके कोणों में व्यक्त हो रहे हैं, इसे मण्डल का आकार दे रहे हैं।'

व्याख्या—कन्दलितकर्णिकापुटे—कन्दल साधारणतः उस पारस्परिक वाग्विवाद को कहते है, जिसमें दोनों पक्ष एक-दूसरे पर शाब्दिक आक्रमण करते हैं। यहाँ पर इसका महत्त्व केवल यह दर्शाता है कि दोनों की कर्णिकाएँ आपस में एक-दूसरे से टकरा रही हैं। द्वादशदल कमल की कर्णिकाएँ सहस्रार कमलदल में ही हैं। इसीलिए उनमें परस्पर आक्रमण का भाव प्रतीत होता है।

पुट—आधार-स्थान। वह स्थान जहाँ पर 'त्रिकोण अ-क-थ रेखाओं से निर्मित होता है।'

क्लृप्तरेखमकथादिरेखया—सोलह स्वर जिनका आदि स्वर 'अ' है, वामा रेखा बनाते हैं। क से आरम्भ होने वाले सोलह अक्षर ज्येष्ठा और थ से आरम्भ होने वाले सोलह अक्षर रौद्री रेखा बनाते हैं। शक्ति का गृह इन तीन रेखाओं से निर्मित होता है।

अबलालयम्—अबला का तात्पर्य शक्ति से है। यहाँ पर शक्ति त्रिकोण स्वरूप में कामकला है। तीनों शक्ति वामा, ज्येष्ठा और रौद्री त्रिकोण की तीन रेखाएँ हैं। ये तीन रेखाएँ अथवा तीन शक्तियाँ तीन बिन्दुओं से प्रादुर्भूत होती हैं। कामकला ही शक्ति का आवास-स्थल है। यामल का कथन है—'अथ कामकलां वक्ष्ये तत्तदेवात्मरूपकम्।' अब मैं कामकला की चर्चा करूँगा। आगे चलकर इसी कथन में कहा गया है—'त्रिबिन्दु सा त्रिशक्तिः सा त्रिमूर्तिः सा सनातनी।' वह कामकला त्रिबिन्दु रूपा है, त्रि-शक्तिरूपा है और त्रिमूर्ति है और वह सनातन रूपा है अर्थात् अनादि है। आगे चलकर अबलालय (शक्ति आवास-स्थल) के गुण या उपाधियों की चर्चा की गई है। यह कामकला जैसा पहले बतलाया गया, त्रि-शक्ति स्वरूपा है।

कामकला का उल्लेख करते हुए बृहत् श्रीक्रम में कहा गया है—'बिन्दोरङ्कुरभावेन वर्णावयवरूपिणी।' बिन्दु के अंकुरण भाव से उसने वर्ण

का आकार ले लिया अर्थात् वर्ण-स्वरूपिणी हो गई। अंकुरण होने पर विन्दु अक्षरों (वर्णों) के रूप में प्रतीत होता है। अर्थात् बिन्दु से वर्ण अंकुरित हुए : ब्रह्माण्ड की निष्पत्ति या उदय विन्दु से हुआ।

कोणलक्षितहलक्षमण्डलीभावलक्ष्यम्—त्रिकोण के अन्दर के कोणों में जिस त्रिकोण की पहले चर्चा की गई। त्रिकोण के तीन कोण शिखर पर हैं— दक्षिण और वाम। वहाँ पर अक्षर ह ल क्ष दृष्यमान और प्रकाशमान हैं। ये ही इसे मण्डल का भाव प्रदान कर रहे हैं। मंडल—ऐसा यंत्र जहाँ देव का आह्वान कर उनकी आराधना की जाती है।

इस त्रिकोण के विशेष ज्ञान के बिना सम्यग् रूप में ध्यान नहीं हो सकता है। इसी कारण इसकी विस्तार से चर्चा की गई है तथा अन्य ग्रन्थों के उद्धरण भी दिये गये हैं। इस त्रिकोण को वामावर्त रूप में लिखना चाहिए। वामावर्त उसे कहते हैं कि यदि कोई इसकी परिक्रमा करे तो त्रिकोण उसके वाम में ही रहे। शाक्तानन्दतरङ्गिणी में भी कहा गया है—'वामावर्तेन विलिखेदकथादित्रिकोणम्।' अर्थात् 'त्रिकोण अ क थ को इस प्रकार लिखो कि यदि इसकी परिक्रमा बाहर से की जाय तो यह त्रिकोण वाम ओर ही रहे।'

काली-ऊर्ध्वाम्नाय का कथन है—

'त्रिविन्दुं परमं तत्त्वं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।
वर्णमयं त्रिकोणं तु जायते बिन्दुतत्त्वतः॥'

'त्रिविन्दु परमतत्त्व है तथा ब्रह्म, विष्णु और शिवात्मक है। वर्णों से जो त्रिकोण बना है, उसकी उत्पत्ति विन्दु से है।'

तन्त्रजीवन का कथन है—रजःसत्त्वतमोरेखा योनिमण्डलमण्डिता।' अर्थात् रजस्, सत्त्व और तमस् रेखा योनिमण्डल को आच्छादित किये हैं।

तथा—

'उपरिष्टात् सत्त्वरेखा रजोरेखा स्ववामतः।
तमोरेखा दक्षभागे रेखात्रयमुदाहृतम्॥'

सत्त्व रेखा ऊपर, रजो रेखा वाम में तथा तमस् रेखा दक्षिण में है।

तथा—

'अकारादिविसर्गान्ता ब्रह्मरेखा प्रजापति।
ककारादितकारान्ता विष्णुरेखा परात्परा।
थकारादिसकारान्ता शिवरेखा त्रिविन्दुतः॥'

'अ से विसर्ग तक के अक्षर ब्रह्मरेखा बनाते हैं, जो प्रजापति रेखा है। क से त तक के अक्षर विष्णु की परात्परा रेखा और थ से क्ष तक के अक्षर

शिवरेखा बनाते हैं। इन तीनों रेखाओं का उदय तीन बिन्दुओं से ही होता है।

तीन बिन्दुओं को पृथक् रूप में तीन और वैसे एक ही बिन्दु माना गया है।

स्वतन्त्रतन्त्र का कथन है—'अकथादित्रिपङ्क्त्या तु हलक्षं मध्यमण्डितम्।'

तीन रेखाएँ अ-क-थ तीन अक्षर ह-ल-क्ष को घेरे हुए हैं। अतः ह ल क्ष को त्रिकोण के अन्दर ही माना गया।

तत्पुटे पटुतडित्कडारिमस्पर्धमानमणिपाटलप्रभम्।
चिन्तयामि हृदि चिन्मयं वपुर्नादबिन्दुमणिपीठमण्डलम्॥ ३॥

उक्त त्रिकोण के मध्य में स्थित रत्नजटित वेदिका—मणिपीठ, नाद और बिन्दु का अपने मानस में चिन्तन करता हूँ। इस मणिपीठिका में जो रत्न-जटित हैं, उनकी पाटल प्रभा भी तुलना में विद्युत् प्रभा भी फीकी पड़ जाती है।

व्याख्या—त्रिलोक के मध्य मणिपीठ के ऊपर गुरु-स्थान है। यहाँ पर मणिपीठ का वर्णन किया जा रहा है।

चिन्तयामि हृदि—मानस में चिन्तन करता हूँ।

नाथबिन्दुमणिपीठमण्डलम्—इस समस्त पद को दो प्रकार से बनाया जा सकता है—'नादबिन्दुभ्यां सह मणिपीठमण्डलम् अथवा नादश्च, बिन्दुश्च मणिपीठमण्डलम्।' अर्थात् नादबिन्दु के साथ मणिपीठमण्डल अथवा नाद और बिन्दु और मणिपीडमण्डल (ये तीनों)। कुछ लोग इसे 'नादबिन्दुरूपमणिपीठमण्डल' भी कहते हैं और इसका अर्थ करते हैं—मण्डलमणिपीठ नाद और बिन्दु रूपा है। किन्तु ऐसा नहीं माना जा सकता, क्योंकि नाद का वर्ण शुक्ल, बिन्दु रक्ताभ वर्ण तथा मणिपीठ अपनी पीताभ लाल प्रभा से विद्युत्प्रभा को लज्जित कर रही है, किन्तु विद्युत् प्रभा न तो श्वेतवर्ण की होती है, न ही रक्ताभ होती है।

शारदातिलक का कथन है—

'परशक्तिमयः साक्षात् त्रिधासौ भिद्यते पुनः।
बिन्दुर्नादो बीजमिति तस्य भेदाः समीरिताः॥'

शारदातिलक के उक्त वचन के अनुसार बिन्दुः परशक्तिमय है (शिवशक्तिमय) और यही बिन्दु अपने को तीन भागों में विभक्त कर लेता है जो तीनों बीज, नाद और बिन्दु क्रमशः वह्नि (अग्नि), चन्द्र और सूर्य हैं। नाद चन्द्र होने से शुक्ल और बिन्दु सूर्य होने से रक्ताभ है। पूर्णानन्द ने षट्-

चक्रनिरूपण के ३५वें श्लोक में नाद की चर्चा करते हुए उसका वर्ण बलदेव के समान धवल बतलाया है।

बृहत्-श्रीक्रम का कथन है—'बालसूर्यप्रतीकाशमासीद् बिन्दुमदक्षरम्।' अर्थात् 'वहाँ पर बालसूर्य के रक्ताभ वर्ण के समान अविनाशी बिन्दु था।' स्पष्ट है कि एक श्वेत है और दूसरा रक्ताभ; अतः दोनों की मिलकर मणि की प्रभा पाटली होना सर्वथा असंभव है। अतः हमारा जो अर्थ है वही सही है। इसका समाधान इस प्रकार है कि नाद नीचे है, ऊपर बिन्दु है और मध्य में मणिपीठमण्डल है—इस प्रकार चिन्तन किया जाय। कङ्कालमालिनीतन्त्र में गुरुध्यान का वर्णन करते हुए कहा गया है—

'सहस्रदलपद्मस्थन्तरात्मानमुत्तमम् ।
तस्योपरि नादबिन्दोर्मध्ये सिंहासनोज्ज्वलम् ॥
तस्मिन्निजगुरुं नित्यं रजताचलसन्निभम् ॥'

श्रेष्ठ अन्तरात्मा का ध्यान करो जो सहस्रदल कमल में है। अन्तरात्मा के ऊपर नाद और बिन्दु के मध्य उज्ज्वल सिंहासन पर अपने अनादि गुरु का चिन्तन करो जो रजत पर्वत के समान श्वेत हैं।'

पटुतडित्कडारिमस्पर्धमानमणिपाटलप्रभम्—यह मणिपीठमण्डल का विशेषण है। पटु का अर्थ है—अपने कार्य को दक्षतापूर्वक सम्पादन करने की योग्यता से सम्पन्न। अब यहाँ पर तडित् (विद्युत्—बिजली) अपने प्रकाश कार्य का सम्पादन करना चाहती है। यहाँ पर भाव यह है कि पीठ में जो मणियाँ हैं, वे रक्ताभ पीतवर्ण की हैं। ये मणियाँ अपनी प्रभा से विद्युत् की प्रभा को जो पिङ्गल वर्ण की है, लज्जित कर रही हैं। अर्थात् उसकी स्पर्धा करने में असमर्थ है। मणिपीठ का सर्वांग मणियों से युक्त है। इनकी प्रभा पाटल वर्ण की है।

चिन्मयं वपुः—चिन्मय अथवा ज्ञानमय शरीर। नाद, बिन्दु और मणि-पीठ चिन्मय अथवा ज्ञानमय हैं। उनका तत्त्व शुद्धचित्त है, जो माया के संस्पर्श में नहीं है। अन्य लोग इसका अर्थ इस प्रकार भी करते हैं—'मैं बारहवें स्वर के 'चिन्मयं वपुः' का ध्यान करता हूँ, जो सरस्वती का बीज अथवा वाग्भव बीज ऐं है, जो गुरुमंत्र है।' किन्तु यह सही नहीं है। गुरु शुक्ल हैं और उनका बीज भी शुक्ल है। उसकी प्रभा को पीत-लाल बतलाना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता।

ऊर्ध्वमस्य हुतभुक्शिखात्रयं तद्विलासपरिबृंहणास्पदम्।
विश्वघस्मरमहोच्चिदोत्कटं व्यामृशामि युगमादिहंसयोः ॥ ४ ॥

हंसपीठ के ऊपर, नाद और विन्दु के मध्य त्रिकोण में गुरु का स्थान है। यहाँ पर हंस और त्रिकोण का वर्णन किया जा रहा है, जिससे इन दोनों का सम्यक् ज्ञान हो सके।

भाष्य—मैं अनन्यमनस्क हो, मणिपीठ के ऊपर तीन रेखाओं का जो अग्नि रेखा से आरम्भ होती है तथा अति दीप्तिमान मणिपीठ इन रेखाओं की ओजस्विता एवं तेज से और प्रकृष्टता को प्राप्त हो गया है, का चिन्तन करता हूँ। मैं आदि हंस का भी ध्यान करता हूँ जो सर्वशक्तिशाली महाप्रकाश है, जिसमें ब्रह्माण्ड का संहार होता है।

व्याख्या—उक्त श्लोक का संक्षेप से यह अर्थ है—मैं आदिहंस का ध्यान करता हूँ, तीन रेखाओं का भी ध्यान करता हूँ, जिनका प्रारम्भ अग्निरेखा से है, जो मणिपीठ के ऊपर है तथा मणिपीठ की भी अधिक तेजोमय और दीप्तिमान बनाती है, क्योंकि ये रेखाएँ अग्नि आदि की ज्योति से प्रकाशमान हैं—इस श्लोक में चिन्तन करता हूँ। 'व्यामृशामि' एक वार ही प्रयुक्त हुआ है, किन्तु यह क्रिया तीनों संज्ञा से सम्वन्धित है।

हुतभुक्शिखात्रयम्—तीन रेखाएँ जो अग्निरेखा से प्रारम्भ होती हैं। यह समस्त पद शाकपार्थिव नियम के अनुसार बनाया गया है, जिसके अनुसार शब्द 'आदि' जो दो शब्दों के बीच में आया है, छोड़ दिया गया है। हुतभुक् वह्नि को कहते हैं। अग्निरेखा वामा कहलाती है। यह दक्षिण की ओर वह्नि विन्दु से निकलती है, तथा उत्तर-पूर्व कोण की ओर जाती है। चन्द्ररेखा चन्द्र-विन्दु से निकलती है, जो उत्तर-पूर्व कोणमें है तथा उत्तर-पश्चिम के कोण की ओर चली जाती है। यह ज्येष्ठा रेखा है। सूर्य रेखा का उद्भव सूर्य विन्दु से है जो उत्तर-पश्चिम कोण में है तथा यह वह्नि विन्दु तक जाती है। यही रौद्री रेखा है। इन तीन रेखाओं से जो त्रिकोण निर्मित होता है तथा जिसमें तीनों रेखाएँ तीन बिन्दुओं को मिला देती हैं, वही कामकला है (कामकलारूपम्)।[१] वृहत्-श्रीक्रम में यह कथन इस प्रकार है—

'विन्दोरङ्कुरभावेन वर्णावयवरूपिणी।
विन्द्वग्रे कुटिलीभूता याम्यादीशानमागता॥
मनोरमा शक्तिरूपा सा शिखा चित्कला परा।
शक्तीशानगता रेखा प्रत्यगाग्नेयमात्रगा॥

१. ऊपर वह्नि विन्दु की चर्चा की गई है। यहाँ अग्नि को जीवन का मूल माना गया है। अतः यह ब्रह्मा से सम्बन्धित है और चन्द्रमा विष्णु से सम्बन्धित है। सूर्य बारह सूर्यों अर्थात् आदित्य से सम्बन्धित है, जिसका उदय प्रलय के समय ब्रह्माण्ड को दग्ध करने के लिए होता है।

ज्येष्ठा सा परमेशानी त्रिपुरा परमेश्वरी ।
व्यक्तीभूय पुनर्वामे प्रथमाङ्कुरसमागता ।
इच्छया नादसंलग्ना रौद्री शृङ्गाटमागता ॥'

'वे जो वर्णमयी हैं या वर्ण-स्वरूपिणी हैं, विन्दु में वृत्ताकार हैं और वे दक्षिण से उस वीज के रूप में वाहर निकलती हैं जिसमें अंकुरण हो रहा है। यहीं से (यस्मत्) वे ईषान कोण (उत्तर-पूर्व) पर जाती हैं। वे जो इस प्रकार जाती हैं, वे ही शक्ति वामा हैं। यही चित्कलापरा और अग्निरेखा है। वह शक्ति जो इस प्रकार ईषान कोण में गयी थी, एक सीधी रेखा के रूप में जाती है अर्थात् उत्तर-पश्चिम को चली जाती है। यही ज्येष्ठा रेखा है। हे परमेश्वरी ! यही त्रिपुरा है—महाराज्ञी। पुनः यह वाम ओर को घूमती है अर्थात् वक्र हो जाती है और यह उसी स्थान पर वापिस लौट आती है, जहाँ अंकुरण हुआ था; यही रौद्री है जो इच्छा और नाद से संयुक्त होकर शृंगाट बनाती है।'

एक अन्य पाठ के अनुसार इच्छा और ज्ञान के मिलन से रौद्री शृङ्गाट वनाती है। इससे यह ज्ञात होता है कि कामकला-कुण्डलिनी का अ-क-थ त्रिकोण से भी सूक्ष्म रूप है। आनन्दलहरी के श्लोक २१ में कुण्डलिनी के सूक्ष्म ध्यान का उल्लेख किया गया है।

माहेश्वरीसंहिता में कहा गया है—

'सूर्यश्चन्द्रस्तथा वह्निरिति विन्दुत्रयं भवेत् ।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा शम्भुरिति रेखात्रयं मतम् ॥'

'सूर्य, चन्द्र और वह्नि तीन विन्दु हैं और तीन रेखाएँ ब्रह्मा, विष्णु और शम्भु हैं।'

त्रिकोण के मध्य में गुरु की स्थिति को स्पष्ट करते हुए तथा सहस्रार का वर्णन करते हुए प्रेमयोगतरङ्गिणी में कहा गया है—

'तन्मध्ये तु त्रिकोणं तु विद्युदाकारमुत्तमम् ।
विन्दुद्वयं च तन्मध्ये विसर्गं रूपमव्ययम् ।
तन्मध्ये शून्यदेशे तु शिवः परमसंज्ञकः ॥'

इसके मध्य में त्रिकोणात्मक विद्युदाकार उत्कृष्ट ज्योति है। त्रिकोण के आन्तर् में दो अविनाशी विन्दु हैं जो विसर्गरूपा हैं। इसके भी आन्तर् में शून्य में शिव हैं, जिनकी संज्ञा परमशिव है।'

श्रीमद्भगवतपाद शंकराचार्य ने आनन्दलहरी में इसको स्पष्ट किया है। ललितारहस्य का भी कथन है—'विसर्गस्तु त्रिकोणोर्ध्ववर्तिचन्द्रसूर्यरूपविन्दु-

द्वयम्' अर्थात् गुरु विसर्ग पर आसीन हैं। विसर्ग सूर्य और चन्द्र दो विन्दु हैं जो अधोमुखी त्रिकोण के ऊपर के कोणों पर हैं।

आदिहंसयोर्युगम्—इसका तत्त्वतः अर्थ होगा—आदि हं और सः का मिलन। आदि परमहंस के लिए प्रयुक्त हुआ है, जिसे अन्तरात्मा भी कहते हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि यह जीवात्मा नहीं है, जो दीपकलिका के आकार में है। यहाँ पर हंस प्रकृति पुरुष का मिलित रूप है। आगमकल्पद्रुम की पञ्चम शाखा में उल्लेख है—

'हङ्कारो विन्दुरित्युक्तो विसर्गः स इति स्मृतः।
विन्दुः पुरुष इत्युक्तो विसर्गः प्रकृतिस्मृतः॥
पुंप्रकृत्यात्मको हंसस्तदात्मकमिदं जगत्॥'

'हङ्कार विन्दु है और विसर्ग सः है। विन्दु पुरुष और विसर्ग प्रकृति है। हंसः—पुं पुरुष और प्रकृति का मिलन है। प्रकृति स्त्रीवाचक है। ब्रह्माण्ड में हंसः सर्वव्यापक है।'

यही सृष्टि का आदि और अन्त भी है। परम का निश्वास हं ही सृष्टि-कर्ता ब्रह्मा का जीवनकाल है (तवायुर्मम निश्वासः) और सः अन्दर आने वाली श्वास है, जिससे सृष्टि प्रकृति में लौट आती है। ऐसा प्रपञ्चसार का कथन है।

कुछ लोग 'अस्य ऊर्ध्वं' का अर्थ मणिपीठ के ऊपर से लगाते हैं और कहते हैं कि इसका तात्पर्य है कि 'मणिपीठ के ऊपर जो आदि हंस हैं, उनके मिलन का मैं चिन्तन करता हूँ।' यह ठीक प्रतीत नहीं होता है। कङ्काल-मालिनीतन्त्र में उल्लेख है कि मणिपीठ हंस के ऊपर तथा नाद और बिन्दु के मध्य में है। अतः यह दोनों हंस के नीचे कैसे हो सकते हैं। यह असंभव है। इससे एक बात और ज्ञात होती है कि कुछ लोग हुतभुक्-शिखात्रयं के स्थान पर 'हुतभुक्-शिखासखम्' पाठ मानते हैं। यदि इस कथन को स्वीकार कर लिया जाय तब 'ऊर्ध्वम् अस्य' पद का कोई अर्थ ही नहीं रह जायेगा। ऊपर जो यह अर्थ लगाया गया कि 'मैं मिलन का चिन्तन' इसको इस प्रकार भी समझा जा सकता है। हमें यह ज्ञात है कि कङ्कालमालिनी के अनुसार मणिपीठ के नीचे हंस है और मणिपीठ नाद और बिन्दु के मध्य में हैं और ऊपर जो अर्थ लगाया गया, वह सर्वथा कङ्कालमालिनी की मान्यता के विरुद्ध है। किन्तु यदि हुतभुक्त्रयं को हंसः का विशेषण मान लिया जाय तो कठिनाई दूर हो जाती है। ऐसी स्थिति में अर्थ यह होगा—'मणिपीठ के नीचे हंस है और इसके ऊपर त्रिकोणात्मक कामकला है, जिसकी रचना हंस से हुई है।

'तस्य परिणतस्य'—सामान्यतः इससे ऐसा प्रतीत होता है कि तीन विन्दु और हंस नीचे है, किन्तु ऐसा है नहीं, वरन् वह त्रिकोण जो वे मिल कर वनाते हैं अथवा कामकला ऊपर है; अतः निश्चय ही इस दृष्टि से हंस ऊपर है और मणिपीठ के नीचे है।'

हुतभुक्शिखासखा का तात्पर्य पवन से है, क्योंकि वायु को अग्नि का मित्र वतलाया गया है। वायु अग्नि के प्रसार में सहायक होता है। किन्तु उक्त देश में वायु है ही नहीं। अतः वायु त्रिकोण के ऊपर या मणिपीठ के ऊपर हो ही नहीं सकता। अतः शुद्ध पाठ 'हुतभुक्शिखात्रयं' ही है। इसे 'शिखासखम्' कहना मात्र कल्पित पाठ है जो नहीं माना जा सकता।

विश्वघस्मरमहोच्चिदोत्कटम्—'भक्ष' और 'घस' का एक ही अर्थ होता है। धातु घस का अर्थ होता है भक्षण करना तथा 'देवि याचे, चिदि ह्लादे दीप्तौ च्युदकनुदिच्छिदि वा' इनका अर्थ होगा दीप्ति। महोच्चित का अर्थ है महाप्रकाश और घस्मर का अर्थ है भक्षण करना। अर्थात् समस्त का संहार या भक्षण करने वाला यह महोच्चित या महाप्रकाश है। यह महाप्रकाश 'उत्कट' वतलाया गया है। उत्कट का अर्थ है सर्वशक्तिशाली।

तत्र नाथचरणारविन्दयोः कुङ्कुमासवपरीमरन्दयोः।
द्वन्द्वमिन्दुमकरन्दशीतलं मानसं स्मरति मङ्गलास्पदम्॥ ५॥

भाष्य—मानस वहाँ दो पद्मों का चिन्तन करता है, जो श्रीनाथ (गुरुदेव) के चरण-कमल हैं और इनका लाल लाख सदृश वर्ण अमृत मधु है। ये दोनों चरणकमल चन्द्रमा के अमृत के तुल्य शीतल हैं और सर्वमंगल-प्रदाता हैं।

व्याख्या—पहले यह चर्चा की जा चुकी है कि गुरुचरण-कमलों का चिन्तन किस स्थान पर किया जाय। इसके उपरान्त यह उल्लेख किया जा रहा है कि साधक को ध्यान द्वारा उनके साथ अपने को तादात्म्य करना चाहिए। इस श्लोक में तथा इसके बाद के श्लोकों में इसका दिग्दर्शन कराया गया है।

तत्र—मणिपीठ-स्थित त्रिकोण के मध्य।

नाथचरणारविन्दयोः—गुरुदेव के चरण-कमलों का ध्यान मानस द्वारा किया जाय।

कुङ्कुमासवपरीमरन्दयोः—यह कमलों का विशेषण है। कुङ्कुम का आशय लाल से है। लाख का भी यही वर्ण होता है। उत्कृष्ट अमृत जिसका वर्ण लाख के सदृश है, गुरु के चरण-कमलों का मधु है। कुछ लोग 'परि' के स्थान पर 'झरी' का पाठ करते हैं। इस पाठ के अनुसार अर्थ होगा—झरण हो रहा है अथवा निःसरण हो रहा है।

इन्दुमकरन्दशीतलम्---वे शीतल हैं, जैसे चन्द्रमा की रश्मियाँ। अमृत किरणरूपा है, अतः उनके तुल्य शीतल है, जिससे उत्ताप नष्ट हो जाता है। दोनों चरण-कमलों की सेवा करने से दुःख और ताप शान्त होता है।

मङ्गलास्पदम्---यह वह स्थान है, जहाँ समस्त मनोकामनाएँ पूरी होती होती हैं और अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है।

निषक्तमणिपादुकानियमिताघकोलाहलं ।
स्फुरित् किसलयारुणं नखसमुल्लसच्चन्द्रकम् ॥
परामृतसरोवरोदितसरोजसद् रोचिषम् ।
भजामि शिरसि स्थितं गुरुपदारविन्दद्वयम् ॥ ६ ॥

भाष्य---मैं अपने शिर में स्थित पूर्वोक्त पीठ पर दोनों गुरुपदारविन्द का भजन करता हूँ। ये चरण-कमल जिस रत्नजटित वेदिका पर हैं, वह बड़े से बड़े पापसमूहों को नष्ट करने में सक्षम हैं। चरण-कमल नव पल्लवों के समान किसलय वर्ण के हैं। उनके नख अत्यन्त दीप्तिमान हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि चन्द्रमा अपनी पूर्ण प्रभा से प्रकाशमान है। वे इतने तेजोमय हैं, जैसे अमृत के सरोवर में कमल पुलकायमान हों।

व्याख्या---यहाँ पर कहा गया है कि मैं गुरु के चरण-कमलों का चिन्तन करता हूँ जो शिर में स्थित मणिपादुका पर विश्राम ले रहे हैं।

निषक्तमणिपादुकानियमिताघकोलाहलम्---पापों के समूह इस रत्नजटित पादुका का ध्यान करने से समूल रूप से नष्ट हो जाते हैं। अथवा इसका यह अर्थ भी किया जा सकता है---पादुका जो रत्नजटित है, अर्थात् मणिपीठ मण्डल जो पादुका है, सर्व पापों को दूर कर देता है। गुरु के चरण-कमलों का ध्यान जो पादुका पर रखे है, सभी पापों का क्षय कर देता है। इससे एक अर्थ और भी निकाला जाता है कि पञ्चपादुका जो रत्नों से सम्बन्धित है, पापों को नष्ट कर देती है, क्योंकि उस पर गुरु-चरण स्थित हैं। पहले पादुकापञ्चक का ध्यान किया जाय और इसके बाद गुरु के चरणों का, जो उस पर है, ध्यान किया जाय तो पाप दूर होते हैं। पापों का शमन पादुका-पञ्चक पर ध्यान करने से होता है, अतः पापों को दूर करने का कारणीभूत यही हुआ।

स्फुरत् किसलयारुणम्---गुरु के चरण-कमल नव पल्लवित किसलय वर्ण के हैं। यह अरुणवर्ण भी कहा गया है। आम्र की नव कोपलें प्रथम बार जब निकलती हैं, तो उनका रक्तवर्ण ही होता है, ऐसा देखने में आता है।

नखसमुल्लसच्चन्द्रकम्---पैरों के अँगूठों के नख उल्लसित चन्द्र के समान निर्मल रूप में प्रकाशमान हैं।

परामृतसरोवरोदितसरोजसद्रोचिषम्––उनका प्रकाश इतना स्पष्ट और स्वच्छ है कि मानों वे (कमल) परामृत के सरोवर में उदित हो रहे हैं। भाव यह है कि श्रीनाथ (गुरुदेव) के चरणों से निरन्तर परमामृत का निःसरण हो रहा है। पूर्णानन्द ने षट्चक्रनिरूपण (श्लोक ४३) में यही कहा है—

'सुधाधारासारं निरवधि विमुञ्चन्नतितरां
यतः स्वात्मज्ञानं दिशति भगवान्निर्मलमतेः।'

परामृत सुधा सरोवर-स्वरूप है, उसके ऊपर चरण कमल के समान प्रकाशित हो रहे हैं। उक्त दोनों कमल की कर्णिकाओं के पुट में गुरु की स्थिति वतलाई गई है। यहाँ पर यह प्रश्न किया जा सकता है कि ये द्वादश दल कमल के नीचे हैं या सहस्रदल कमल की कर्णिकाओं के ऊपर हैं। इस प्रश्न का समाधान करने के लिए अनेक ग्रन्थों के उद्धरण यहाँ पर दिये जा रहे है। वृहत्श्रीक्रम का कथन है—

'सर्वोपरि ततो ध्यायेत् पश्चिमाननपङ्कजम्।
स्रवन्तममृतं दिव्यं देव्यङ्के कमलान्तरे॥'

उस कमल' पर ध्यान किया जाय जो सर्वोपरि है तथा जिसका शिर अधोमुखी है। इससे गुरु की शक्ति पर, जो दूसरे कमल में है, सुधा का झरण हो रहा है।

यामल का कथन है—'छत्रं मूर्ध्नि सहस्रपत्रकमलं रक्तं सुधावर्षिणम्।' अर्थात् सहस्र दल कमल एक चन्दोवे के समान है, जिससे आभास होता है कि यह अत्यन्त श्रेष्ठ है। यह सबसे ऊपर है और इससे रक्ताभ सुधा क्षरित हो रही है।'

गुरुगीता में आलेख है—

'हंसाभ्यां परिवृत्तपत्रकमले दिव्यैर्जगत्कारणै-
र्विश्वोत्तीर्णमनेकदेहनिलयं स्वच्छन्दमात्मेच्छया।
तत्तद् योभ्यतया स्वदेशिकतनुं भावैकदीङ्कुरं
प्रत्यक्षाक्षरविग्रहं गुरुपदं ध्यायेत् द्विबाहुं गुरुम्॥'

अपने ही गुरु में परमगुरु की आराधना करो, जैसे उनके दोनों कर-कमलों में दलों पर अक्षर हं और सं हैं तथा सृष्टि के समस्त अवान्तर कारण शरीर–समस्त कारण उन्हें घेरे हुए हैं। यद्यपि वे सर्व में किसी न किसी अंश में व्याप्य हैं, किन्तु फिर भी लोक से पृथक् और लोकातीत हैं। उनकी इच्छा निःसीम है—'स्वच्छन्दं आत्मेच्छया।' उनसे मुक्ति का प्रकाश स्फुरित होता है। वे गुरुपद की साक्षात् मूर्ति हैं—'मन्त्राणां देवता प्रोक्ता देवता गुरुरूपिणी।'

कुलार्णवतन्त्र का कथन है कि गुरु में अनेक विशिष्ट गुण हैं, जो अनेक शुभफल प्रदाता हैं।

श्यामासपर्या का कथन है—

'शिरः पद्मे सहस्रारे शुक्लवर्णे त्वधोमुखे।
तरुणारुणकिञ्जल्के सर्ववर्णविभूषिते॥
कर्णिकान्तःपुटे तत्र द्वादशार्णसरोरुहे।
तेजोमये कर्णिकान्तश्चन्द्रमण्डलमध्यगे॥
अकथादि त्रिरेखीये हलक्षत्रयमण्डिते।
हंसपीठे मन्त्रमये स्वगुरुं शिवरूपिणम्॥'

'सहस्रार कमल अधोमुखी ओर श्वेतवर्ण का है। उसके तन्तु नवोदित सूर्य के वर्ण के सदृश अरुण वर्ण के हैं। वर्णमाला के समस्त वर्ण उसके दलों पर हैं। सहस्रार की कर्णिकाओं में चन्द्रमण्डल है और उसके नीचे द्विदश कमल है, जिसमें अ क थ त्रिकोण है, जो ह ल क्ष से मण्डित है। यहाँ पर अपने गुरु का, जो शिव हैं, ध्यान करो, जो हंसपीठ पर आसीन हैं। यह हंसपीठ मन्त्रमय है।'

उक्त वचन तथा इसी प्रकार के अन्य कथन यह प्रमाणित करते हैं कि गुरु का अधिष्ठान द्विदश कमल की कर्णिकाओं में है।

कङ्कालमालिनी तंत्र के अनुसार—

'सहस्रदलपद्मस्थमन्तरात्मानमुत्तमम्।
तस्योपरि नादबिन्दोर्मध्ये सिंहासनोज्ज्वलम्।
तस्मिन्निजगुरुं नित्यं रजताचलसन्निभम्॥'

'परम अन्तरात्मा का ध्यान सहस्रदल कमल में किया जाय अथवा सहस्रदल कमल के देश में। यह अन्तरात्मा एक प्रभावान् आसन पर है, जो नाद और बिन्दु के मध्य में है तथा गुरु का निरन्तर ध्यान सिंहासनासीन रूप में करो। वे रजत के पर्वत के समान प्रकाशमान हैं।'

यामल का कथन है—'सहस्रदल पङ्कजे सकलशीतरश्मिप्रभं वराभयकराम्बुजम्' इत्यादि। सहस्रदल कमल में अपने गुरु का ध्यान करो। उनका शीतल सौन्दर्य पूर्णचन्द्रमा की रश्मियों के समान है और उनके कर-कमल ऊपर उठे हैं, मानो वरदान और अभय प्रदान कर रहे हैं।'

पुरश्चरणरसोल्लास में महादेव कहते हैं—

'सहस्रारे ततो नित्ये पङ्कजे परमाद्भुते।
पद्मस्य वीजकोशे तु भावयेत् स्वगुरुं सदा॥'

सहस्रार कमल की कर्णिकाओं में सदैव अपने गुरु का ध्यान करो। यह कमल परम अद्भुत और अविनाशी है।

पार्वती उवाच—

'सहस्रारे महापद्मे सदा चाधोमुखे प्रभो।
गुरुस्थिति कथं देव सततं वद निश्चयम् ॥'

हे प्रभो! सहस्रार महापद्म सदा अधोमुखी रहता है। अतः गुरु वहाँ पर कैसे निरन्तर निवास करते हैं, यह बतलायें।

महादेव उवाच—

'शृणु प्रिये प्रवक्ष्यामि यदेतत् पृष्टमुत्तमम्।
सहस्रारं महापद्मं सहस्रदलसंयुतम् ॥
सदाशिवपुरं तत्तु नित्यानन्दमयं सदा।
नानागन्धयुतं पद्मं सहजानन्दमन्दिरम् ॥
सदा चाधोमुखं पद्मं बीजमूर्ध्वमुखं सदा।
त्रिकोणाकाररूपेण कुण्डलीसंयुतेन च ॥'

प्रिये! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया। अब मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे तुम ध्यान से सुनो। सहस्रार कमल में सहस्रदल हैं और यह सदा शिव का अधिष्ठान नित्य आनन्दमय है। यह कमल नाना प्रकार की गन्धों से युक्त है और सहजानन्द का मन्दिर ही है। यह कमल सदैव अधोमुखी रहता है, किन्तु इसका बीजकोश सदैव ऊर्ध्वमुखी रहता है तथा कुण्डलिनी के साथ त्रिकोणात्मक रूप में रहता है।

[यदि बीजकोश के इस भाग को जो कमल के साथ संलग्न है, इसका शिर मान लें तो स्पष्ट हो जाता है। त्रिकोण अ क थ हैं।]

बालाविलासतन्त्र में दक्षिणामूर्ति का कथन है—

'प्रातरुत्थाय धवले सहस्रारे गुरुं स्मरेत्।
अधोमुखे महापद्मे सर्ववर्णविभूषिते ॥
अकथादित्रिरेखाढ्यहलक्षत्रयभूषिते ।
तदन्तश्चन्द्रविवस्थहंसपीठे स्मिताननम् ॥'

'जैसे ही प्रातः सोकर उठें, अपने गुरु का ध्यान श्वेत सहस्रार दल कमल में करे। इस महापद्म का शिर अधोमुखी है तथा यह वर्णमाला के समस्त वर्णों से मण्डित है। इसके आन्तर् में अ क थ त्रिकोण है, जो अक्षर ह ल क्ष से मण्डित है या सुशोभित है। इसके अन्तस् में चन्द्रमण्डल है, जहाँ हंसपीठ पर वे प्रसन्न मुद्रा में आसीन हैं।'

पार्वती ने पुनः कहा—'अधोमुखे गुरुस्तत्र कथं तिष्ठति च प्रभो।' अर्थात् 'हे प्रभो ! जब उसका शिर अधोमुखी है तब वहाँ गुरु किस प्रकार से रहते हैं।'

उक्त प्रश्न के उत्तर में श्री दक्षिणामूर्ति बोले—

'अधोमुखस्य पद्मस्य कर्णिकामध्यसंस्थितम् ।
चन्द्रबिम्बं चोर्ध्ववक्त्रं तत्र हंसस्ततः स्थितिः ॥'

चन्द्रमण्डल सहस्रदल कमल की कर्णिकाओं में ऊर्ध्वमुखी है। हंस वही है तथा गुरु का अधिष्ठान वहीं पर है।'

उपरोक्त वचनों से यह स्पष्ट है कि गुरु का स्थान सहस्रदल कमल की कर्णिकाओं में है।

इस सम्बन्ध दो भिन्न विचारधाराएँ हैं, अतः अपने गुरु से ही मार्गदर्शन लेना उपयुक्त है और साधना में उसका अनुकरण करना ही उपयुक्त है। कुलार्णवतंत्र में स्पष्ट कहा गया है—

'पारम्पर्यागमाम्नायं मन्त्राचारादिकं प्रिये ।
सर्वं गुरुमुखाल्लब्धं सफलं स्यान्न चान्यथा ॥'

'हे प्रिये ! वेद और तंत्र हमें परम्परा का ज्ञान देते हैं। मन्त्रों का लाभ तभी होता है, जब वे हमें गुरुमुख से प्राप्त होते हैं।

पादुकापञ्चकस्तोत्रं पञ्चवक्त्राद् विनिर्गतम् ।
षडाम्नायफलप्राप्तं प्रपञ्चे चातिदुर्लभम् ॥ ७ ॥

(सत्यं वद धर्मं चर)

भाष्य—यह पादुकापञ्चक स्तोत्र पाँच मुखी शिव के मुख से निर्गत हुआ है। इसके गायन तथा श्रवण से वही फल मिलता है जो शिव-स्तुति के अन्य स्तोत्रों से मिलता है। अति परिश्रम और कठिनाई से इस संसार में इस फल की प्राप्ति अति दुर्लभ है।

व्याख्या—यहाँ पर स्तोत्र के गायन और श्रवण के फल पर प्रकाश डाला गया है।

पादुका का अर्थ है—पदरक्षणाधारः, अर्थात् जो पद की रक्षा करे, उसका पञ्चक। ये पाँच इस प्रकार हैं—(१) पद्म। (२) इसकी कर्णिकाओं में अ क थ त्रिकोण है। (३) इसके अन्तर् में नादबिन्दु और मणिपीठ मण्डल है। (४) इसके नीचे हंसः तथा (५) पीठ के ऊपर त्रिकोण है। इस स्तोत्र में पाँच श्लोक हैं। फलश्रुति सहित कुल सात श्लोक हैं। पञ्चवक्त्रा शिव के मुख से यह निर्गत हुआ है।

इस गणना को एक-दूसरे प्रकार से भी किया जा सकता है—(१) द्विदश दल पद्म, (२) त्रिकोण अ क थ, (३) नाद-विन्दु, (४) मणि-पीठ (५) हंस जो इसके ऊपर स्थित है। समष्टिरूप में यह कामकला त्रिकोण है।

दो प्रकार से जो गणना बतलाई गई, उसमें निम्नलिखित क्रम में कोई अन्तर नहीं आता है—द्वि-दश कमल के साथ अ क थ त्रिकोण जिसमें मणि-पीठ और नीचे नाद-विन्दु है। अब हंस और कामकला की स्थिति ही विचारणीय है, जिसकी वे रचना करते हैं। दोनों एक ही हैं और समान हैं। पहला तीन विन्दु है और दूसरा त्रिकोण है। ये कामकला का निर्माण करते हैं, जिससे नीचे के अ क थ त्रिकोण का उद्भव होता है। यह वर्णमय है। दूसरे प्रकार की गणना में तीन विन्दु त्रिकोण (कामकला) जिसकी वे रचना करते हैं, उसे एक ही माना गया है और मणिपीठ के ऊपर इसकी स्थिति बतलाई गई है। पहली गणना में कङ्कालमालिनीतंत्र को ध्यान में रखा गया है। श्लोक ४ के अनुसार हंस और त्रिकोण जिसकी वे रचना करते हैं, पृथक्-पृथक् माने गये हैं। एक को मणिपीठ के नीचे और दूसरे को मणिपीठ के ऊपर बतलाया गया है।

स्तोत्र को पञ्चवक्त्र शिव के मुख से निर्गत माना गया है। इसका समर्थन लिङ्गार्चन भी करता है—

'सद्योजातं पश्चिमे तु वामदेवं तथोत्तरे।
अघोरं दक्षिणे ज्ञेयं पूर्वे तत्पुरुषं स्मृतम्।
ईशानं मध्यतो ध्येयं चिन्तयेद् भक्तितत्परः॥'

पश्चिम में अर्थात् पीठ में सद्योजात, उत्तर में वामदेव, दक्षिण में अघोर तथा पूर्व में तत्पुरुष है। ईषान को मध्य में माना जाता है, उनका भक्ति-पूर्वक ध्यान करना चाहिए।

स्तोत्रम्—स्तोत्र उसे कहते हैं, जिसमें प्रशंसा रहती है। इसे स्तुति भी कहा जा सकता है।

षडाम्नायफलप्राप्तम्—छः मुखों से जो कुछ कहा गया, उससे फल की प्राप्ति। छः मुखों में पाँच ऊपर बतला दिये गये और छठा नीचे है, जो गुह्य है। इसकी संज्ञा तामस है। शिव-तंत्र में सद्योजात आदि षड्वक्त्रन्यास बतलाया गया है—'ॐ हं ह्रीं औं ह्रीं तामसाय स्वाहा। ध्यान में बतलाया गया है—'नीलकण्ठमधोवक्त्रं कालकूटस्वरूपिणम्' अर्थात् 'नीचे का मुख नीलकण्ठ उस वर्ण का है जो कालकूट विष का वर्ण है। सागर के मन्थन के अवसर पर शिव ने कालकूट का पान किया था।'

सडाम्नाय उसे कहते हैं जो छः मुखों से कहा जाय—शिव की स्तुति के स्तोत्र। फल का तात्पर्य यह बतलाया गया है कि स्तोत्र के गायन और श्रवण का वही लाभ प्राप्त होगा जो साधना से प्राप्त होता है। यही स्तोत्र का फल है।

प्रपञ्च—लिङ्ग आदि से लेकर ब्रह्म-पर्यन्त माया से प्रकट संसार है।

अतिदुर्लभम्—अति दुःख से प्राप्त होता है। पूर्व जन्मों में किये गये तप आदि सत्कार्यों को करने से ही यह लाभ प्राप्त होता है। तप करने में क्लेश मिलता ही है। इसी कारण इस फल की प्राप्ति दुर्लभ बतलायी गयी है, क्योंकि जब तक जन्म-जन्मान्तर से इसका अभ्यास नहीं किया जाता, तब तक इसके गायन और श्रवण का भाव ही नहीं आता।

श्रीकालीचरण कृत पादुकापञ्चक-स्तोत्र
की हिन्दी टीका समाप्त।

श्लोकानुक्रमणिका